Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका वर्ष 28; अंक : 432; अप्रैल, 1988

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

अतिथि संपादक :
लक्ष्मीचंद्र जैन
संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञान सिंह
प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

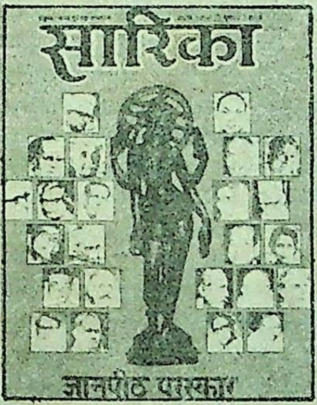

आवरण पारदर्शी : धर्मवीर जयनर
आवरण सज्जा : सुधीर गुप्ता
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

ज्ञानपीठ पुरस्कार विशेषांक : तीन

कहानियां

11 अंधारुआ :
सच्चिदानंद राउतराय
18 कंकू :
पन्नालाल पटेल
23 बाढ़ में :
तकषी शिवशंकर पिल्लै

उपन्यास/नाट्य रूपांतर

26 मृत्युंजय :
वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य
30 ययाति :
विष्णु सखाराम खांडेकर

उपन्यास-अंश

34 तीन पीढ़ी :
आशापूर्णा देवी
39 माटीमटाल :
गोपीनाथ महांती

कविताएं

14 निर्वाचन :
सच्चिदानंद राउतराय
15 कोणार्क :
सच्चिदानंद राउतराय
21 आत्मा के खंडहर :
उमाशंकर जोशी
63 शिव और पार्वती :
आक्टोवियो पॉज

साक्षात्कार

43 स्त्री का सबसे सुंदर हिस्सा देह नहीं, उसकी भावना है :
सुमित्रानंदन पंत से इंदु जैन की अंतरंग बातचीत
52 मैं जीवन का रस लेने के लिए लिखता हूं :
शिवराम कारंत से बी. आर. नारायण की बातचीत

विशिष्ट आलेख

46 फिराक की सृजनात्मक ऊर्जा :
बिशन टंडन
50 अलख अकेला :
फणीश्वरनाथ रेणु
70 विकट चुनौतियां : प्रयोग के साथी :
कुंथा जैन

स्वयंवद

55 साहित्य सृजन, पुरस्कार और मैं :
पुरस्कार विजेताओं के आत्मकथ्य
60 गीत मेरे! कर दे मेरे इश्क का कर्ज अदा :
अमृता प्रीतम
62 मेरी इस यात्रा का अविस्मरणीय क्षण :
मार्गरेट थैचर
63 यह समारोह कई अर्थों में अनूठा बन गया है :
आक्टोवियो पॉज

अन्य आकर्षण

64 ज्ञानपीठ पुरस्कार :
संस्थापकों, संचालकों के विचार और विनयांजलि
68 वाग्देवी के मंदिर के ये चिरंतन दीपाधार :
पुरस्कार विजेताओं की दिग्दर्शिका

स्थायी स्तंभ

6 आपकी बात
8 अपनी बात
9 अतिथि संपादकीय
76 कृतियां
80 नयी पौद
81 सारिका कथा पहेली

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911
विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेज़र रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88. महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1. तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326. स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

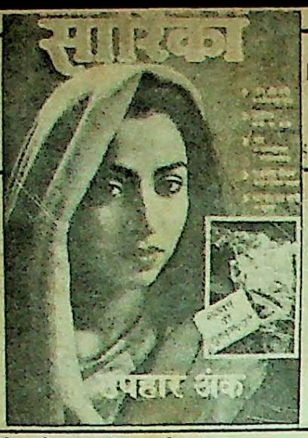

आपकी बात

लिखने से कहीं अधिक त्रासद रहा पढ़ना

संजय की कहानी 'भगदत्त का हाथी' नये वर्ष का महत्वपूर्ण उपहार है. लगता है सन् 88 में अच्छी कहानियों का अकाल नहीं रहेगा.

इस कहानी को लिखना जितना त्रासद अनुभव रहा होगा उससे कहीं ज्यादा त्रासद है इस कहानी को पढ़ने से गुजरना. संभवतः पहली बार किसी लेखक ने ऐसे सामाजिक विषय को अपनी कहानी का आधार बनाया है. एक तरह से यह कहानी की वापसी है. वरना पिछले वर्षों में तो तथाकथित क्रांतिकारी मुखौटा लिये अंधी गली में भटकती रही है. और कई अच्छे से अच्छे कथाकार तक अखबारों में 'खूनी संघर्ष' के समाचार ढूंढकर अनुभव और वस्तुस्थिति से परे 'अविश्वसनीय' कहानियां लिखने के लिए आकुल-व्याकुल रहे हैं.

'भगदत्त का हाथी' ऐसे कथाकारों के लिये भी चुनौती है. इतनी अच्छी कहानी के लिये संजय को बधाई.

□ रामदेव सिंह, मुगल सराय (वाराणसी)

यह दोष नहीं, सुझाव है

प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय की 'पार' एक मजबूर इंसान की कहानी हो सकती है लेकिन उसे किसी जाति-विशेष में बांधकर प्रदर्शित करना लेखक की कौन-सी प्रगतिशीलता का बोध कराता है, सिवाय बेहूदगी के.

"लेकिन उसे मालूम है, कहार कुल में कोई पैदा हो तो किस्मत को कोसने के अलावा करने को और कुछ रह नहीं जाता." इस के लेखक महोदय ने क्या आज के समस्त कहार जाति पर एक घिनौना आरोप नहीं लगाया है? क्या उनके कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि समस्त कहार जाति एक निरीह प्राणी-मात्र है?

'पार' का अंत सिवाय भटकाव के, एक प्रश्न के, कुछ नहीं दे पाता है. कहानी केवल समस्याओं से ही घिरी है, निष्कर्ष से भटकी हुयी.

अच्छा होता वंद्योपाध्याय इंसानों की, केवल इंसानों की कहानियां लिखते, किसी जाति विशेष को अपनी लेखनी से घिनौना प्रदर्शित न करते. यह मेरा रोष नहीं सुझाव है. अच्छा होता सारिका ने अन्य लेखकों की तरह वंद्योपाध्याय जी का भी पता प्रकाशित किया होता, तो मैं स्वयं उन्हीं से पूछ लेता.

केवल कागज भरने से कुछ नहीं होता, मेरे सीमित लेखन से ही लेखक समझ जायें तो अति सुंदर हो.

□ शिवशंकर प्रसाद सिंह, सिवान (बिहार)

यह उपहार ही है

अंक काफी सुंदर व उपयोगी बन पड़ा है. साथ ही ढेर सारी पठन-सामग्री है. वास्तव में यह अंक हम पाठकों के लिये उपहार ही है. हमें सारिका के नये स्तंभों का काफी बेसब्री से इंतजार था, हम नये स्तंभों का हार्दिक स्वागत करते हैं. 'नये हस्ताक्षर', 'नयी पौध', 'कथा पहेली' आदि स्तंभों के लिये विशेष साधुवाद. 'नये हस्ताक्षर' के अंतर्गत नवोदित रचनाकार संजय की कहानी 'भगदत्त का हाथी' बेहद पसंदीदा लगी. ग्रामीण परिवेश में आम बोल-चाल की भाषा में लिखी गयी यह कहानी काफी अंदर तक छू गयी. काफी दिनों से इस तरह की कहानी नहीं मिली थी. इस कहानी में सशक्त शब्दों में गांव की सड़ी-गली परंपराओं का चित्रण हुआ है. इसमें गांव की मिट्टी की महक मिलती है, लोक-व्यवहार के शब्द मिलते हैं. प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय की कहानी 'पार' भी हृदय में टीस भर देती है. किस विवशता से एक बेटा अपने बूढ़े बाप से छुटकारा पाता है, इसका अच्छा खाका खींचा है लेखक ने. 'पार' की परिणति काफी सशक्त रही. अन्य कहानियां भी अच्छी रहीं.

□ रमेश विद्यार्थी, नरकटियागंज (बिहार)

इतनी महंगी क्यों?

'सारिका' के उपहार अंक में 'खिले हुए गुलाब और मुरझाये चेहरे.....' शीर्षक से 'आपकी बात' पढ़ी व समझी. संपादकीय की छठी लाइन :

"महंगाई के बोझ से दबा घुटा आदमी उत्सव नहीं मना पाता." लेकिन आप क्या यह नहीं समझ पाये, वही आदमी साहित्य जगत की सबसे महंगी पत्रिका 'सारिका' को कैसे व किन-किन आवश्यकताओं को काट-छांटकर खरीदता होगा?

'सारिका' से सजधज में कहीं अच्छी अन्य पत्रिकायें चार-पांच रुपये में आ जाती हैं फिर 'सारिका' इतनी महंगी क्यों? क्या 'सारिका' का महंगा होना उसके पूरी तरह व्यावसायिक होने का परिचायक नहीं है? क्या इस तरह 'सारिका' अपने पाठकों का शोषण नहीं करती? और फिर 'सारिका' तो अपने शब्द में ही एक साज है, संगीत है, उत्कृष्ट रचनाओं से सजी संवरी रहती है. 'सारिका' के पाठक चाहते भी यही हैं.

मेरे ख्याल में अगर 'सारिका' के मुख्य-पृष्ठ पर किसी 'खूबसूरत युवती की तस्वीर खूबसूरती से' न छापकर कोई मार्डन आर्ट छापें तो शायद 'सारिका' अधिक सस्ती पड़ेगी. आशा है उक्त संबंध में प्रयास किया जायेगा.

□ फूल चंद जायसवाल, बस्ती

देखो कहानियां लिखी जा रही हैं

संजय की लंबी कहानी 'भगदत्त का हाथी' और रमाकांतजी की लघु कहानी 'मुक्ति' सारिका की ओर से हिंदी कथा जगत को सचमुच उत्कृष्ट उपहार है. रमाकांतजी तो खैर वरिष्ठ हैं, पर संजय नये कथाकार हैं. साहित्य के कुछ गुटबाज छुटभैया, बड़भैया जिनकी नजर और मगज में पूरा हाथी अटक नहीं पाता वे कभी पूंछ, कभी कान, कभी पांव, कभी सूंड पकड़कर क्रमशः रस्सी, पंख, पेड़ और निष्कर्ष का अर्क शोध कर मग्न रहते हैं, ऐसे में उन्हें भगदत्त का पूरा हाथी देखना पता नहीं कैसा लगेगा, पर महानगरीय कुंठा से ग्रस्त और टी.वी की चौंध की अंधी आंखों को यह दिखाना बेहद जरूरी था कि देखो कहानियां लिखी जा रही हैं.

□ संजीव, कुलटी

कहानियों पर परिचर्चा

'पोखर' (नवीन कुमार नैथानी) एक बहुत अच्छी कहानी 'सारिका' ने छापी. इसको लेकर एक चर्चा गोष्ठी में युवा रचनाकारों ने इस कहानी में आने वाली गालियों का पूरी तरह समर्थन किया. कुछ रचनाकारों ने इस प्रकार की गालियों के प्रयोग पर आपत्ति करते हुए कहा कि कहानियां 'नैतिकता' से परे और हमारे भारतीय संस्कारों के घेरे के बाहर हैं. लेकिन युवा रचनाकारों ने उस स्थितियों को लेकर खुलकर बात कि जब कोई पात्र कहानीकारों के माध्यम से गालियां देता है. यह जरूर है कि पात्रों से गालियां दिलवाना किसी लेखक का शौक होता है और न ही चौंकाना. यह गालियां (पोखर के संदर्भ में) स्थितियों को मूर्तरूप देने के लिये जरूरत है.

काफी समय बाद, यह कहानी, वाकई बधायी की हकदार है. अन्य कहानियों में 'माइनस सेवन' (मनमोहन चड्ढा की रचना) पर भी विस्तृत बात-चीत हुयी. कहानी में संवेदनाओं को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया गया. इस कहानी को लेकर कोई आपत्ति न होने का यह कारण बिलकुल नहीं था कि उसमें कोई चर्चा की गुंजाइश ही नहीं थी बल्कि इसलिये कि सभी का इस विषय में एक मत था कि कहानी पढ़कर संतुष्टि मिली है.

□ अतुल शर्मा, विश्वनाथ, देहरादून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम पुरस्कृत पत्र

निजी स्तर पर घटित आदर्शवाद

सारिका के जनवरी 88 अंक में 'रूमानी मुद्रा की त्रासदी' शीर्षक से सुधीश पचौरी ने दूरदर्शन की व्यावसायिक संस्कृति के अंतर्विरोधों पर कुछ टिप्पणियां की हैं जो उनकी इधर पिछले कुछ समय से चल रही लफ्फाजी की ताजा बानगी है. यह सच है कि दूरदर्शन में अधिकांश भ्रष्ट, कुत्सित और दोयम दर्जे की चीजें ही दिखायी जा रही हैं पर इस सबके बीच अगर कहीं कुछ अच्छा और प्रासंगिक है तो उसे चीन्हने और उसे समर्थन देने के लिये भी उतना ही नैतिक साहस होना चाहिये. एक सपाट सिनिसिज्म को लेकर आप कौन-सी लड़ाई लड़ना चाहते हैं?

'मनोरंजन' सीरियल के एक एपीसोड पर लिखते हुए सुधीश पचौरी फरमाते हैं कि इस सीरियल में साधनहीन कलाकारों को एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बहुत त्याग करते दिखाया गया है जो एक प्रकार की रूमानियत है. सुधीश पचौरी की समझ के अनुसार यदि ये साधनहीन कलाकार व्यावसायिक फिल्मों के माहौल में सारे भ्रष्टाचार से लड़ते हुए एक टीम बनाकर निजी स्तर पर बहुत बड़ी जिजीविषा, संकल्प और जुनून का उदाहरण दे रहे हैं तो यह बात व्यावहारिक नहीं है. और एक प्रकार का भावात्मक आदर्शवाद है. पचौरी आगे लिखते हैं कि यदि इस माहौल में एक कला फिल्म बन भी जाती है तो क्या उससे क्रांति हो जाती? अपनी 'सही' वामपंथी समझ के दंभ में टिप्पणियां करते हुए पचौरी साहब यह बताना भूल गये कि क्रांति आखिर किस चीज से आती है? वे बताते तो उनके क्रांति संबंधी दिव्य-ज्ञान का थोड़ा-सा लाभ 'सारिका' के बेचारे अज्ञानी पाठकों को मिल जाता.

सुधीश पचौरी क्रांति के रास्ते की व्यावहारिकता की दलील देते हुए व्यक्ति के निजी स्तर पर घटित होने वाले आदर्शवाद को जिस आसानी से नेगेट कर रहे हैं वह नया नहीं है. हमने ऐसी वामपंथी समझ के अनेक दिलचस्प उदाहरण पिछले कुछ वर्षों में इस देश में घटते हुए देखे हैं. क्रांति की इसी 'व्यवहारिक समझ' के चलते प्रगतिशील लेखक संघ के जलसे की अध्यक्षता राजनीतिज्ञ कर लेते हैं और क्रांति के संबंध में बुद्धिजीवियों को उपदेश पिला जाते हैं. सत्ता विरोधी लेखक संघों के अधिवेशनों के लिये सरकारी महकमों से विज्ञापन लिये जाते हैं. अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन की अध्यक्षता देश के किसी क्रांति-चेता बुजुर्ग लेखक से कराने की बजाय सत्ता की संस्कृति में गले तक पगे हुये एक राजनीतिज्ञ से करा ली जाती है. फोर्ड फाउंडेशन के पैसों पर पलते जिस भारत भवन और मध्य प्रदेश कला परिषद को ये वामपंथी लेखक दल कोसते नहीं थकते उन्हीं वामपंथी लेखकों के चरम आराध्य और परम प्रिय कवि त्रिलोचन या शमशेर बहादुर सिंह ठीक उसी समय से इन संस्कृति के अड्डों की पीठों पर आसीन रहते हैं. उनके वहां होने को लेकर इन लेखक संघों में कभी कोई बहस नहीं छिड़ती. आखिर ऐसी कौन-सी मजबूरी होती है कि जिस श्रीकांत वर्मा को ये लेखक संघ फासिस्ट और दमनकारी सत्ता का पिछलग्गू लेखक करार देते हैं उसी श्रीकांत वर्मा के निधन के बाद उसके नाम पर स्थापित पुरस्कार को एक जनवादी युवा कवि देश के उपराष्ट्रपति के हाथों स्वीकार कर धन्य हो जाता है. जो नागार्जुन इमरजेंसी और इंदिरा गांधी का विरोध करते हुए उन पर तीखी, कवितायें लिखते हैं, वे ही नागार्जुन कुछ बरसों बाद उसी इंदिरा गांधी से एक बड़ा पुरस्कार प्राप्त कर रहे होते हैं.

हम यह स्वीकार करते हैं कि आज जटिल समय में सत्ता और कलाकार के द्वंद्वात्मक संबंधों को बहुत सपाट या इकतरफा नहीं बनाया जा सकता और किसी भी लंबी लड़ाई में व्यावहारिक से कुछ तत्व अनिवार्य रूप से शामिल होंगे ही फिर भी सबसे विडंबनात्मक स्थिति यह है कि व्यावहारिकता के नाम पर लेखक-कलाकार अक्सर समझौते और अमन-चैन की एक ऐसी मुद्रा में नजर आते हैं जहां उनका सारा आक्रोश, सारी बेचैनी महज कागज पर घटित होती नजर आती है. कलाकार के निजी स्तर पर घटित होने वाले आदर्शवाद के बिना कोई भी क्रांतिकारी कर्म रूपायित होना मुश्किल है फिर चाहे इस आदर्शवाद का प्रारंभिक स्वरूप भावात्मक ही क्यों न हो.

☐ जितेंद्रकुमार मित्तल, बंबई

श्रद्धांजलि

सोहन लाल द्विवेदी

समरेश बसु

साहित्य-जगत की अपूर्णीय क्षति

लंबे समय तक हिंदी साहित्य-जगत की सेवा करते हुए राष्ट्रकवि का सम्मान पाने वाले सोहन लाल द्विवेदी कानपुर के हृदयरोग संस्थान में 1 मार्च, को 83 वर्ष की अवस्था में दिवंगत हो गये. साहित्य जगत की यह एक अपूर्णीय क्षति है. सन् 1905 में जन्मे पं. सोहन लाल द्विवेदी की रचनायें ही नहीं, उनकी हिंदी-सेवा की भावना भी हमारे लिये प्रेरणा-स्रोत बनी रहेगी.

11 दिसंबर 1924 को फरीदपुर में एक बेहद निर्धन परिवार में जन्मे समरेश बसु ने जिंदगी की समर अपने बाल्यकाल से ही लड़नी शुरू कर दी थी. समय की धारा के विपरीत समरेश की निष्ठा और लगन का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कक्षा आठ के बाद स्कूली पढ़ाई से अलग हो जाने वाले समरेश शरत् बाबू का समूचा कथा-साहित्य पढ़ चुके थे...और 12 मार्च, 1988 को कलकत्ता से जब हम यह समाचार पाते हैं कि समरेश बसु नहीं रहे, तब बंगला के लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार, रवींद्रनाथ ठाकुर के बाद बंगला के सबसे बड़े गद्यकार के निधन के रूप में उनके न होने को रेखांकित करते दीखते हैं.

'नयनपुरेर माटी', 'उत्तरंग', 'सौदागर', 'गंगा', 'स्वीकारोक्ति', 'संकट', 'जुग-जुग जीये', 'महाकालेर खोर घोड़ा', 'तीन पुरुष', 'विवट', 'अश्लील', 'पातक', 'प्रजापति' सरीखे इनके सवा सौ से भी अधिक उपन्यासों और तीन सौ से भी अधिक कहानियों में से अधिकांश या तो हिंदी में अनूदित हो चुके हैं या हो रहे हैं. इस रूप में वे हिंदी कथा-पाठकों के चहेते रचनाकार रहे हैं.

अपने चौंसठ वर्षीय जीवन में जन्म से अंत तक जिन विविधताओं को समरेश ने जिया...वह अपने आप में एक ऐसी गाथा है जो अविस्मरणीय तो है ही, आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा-स्रोत भी बनेगी. जरूरत इस बात की है कि तमाम भारतीय भाषाओं में इस संघर्षजीवी रचनाकार की रचनाओं के अनुवाद की व्यवस्था की जाये...ताकि तमाम भाषा-भाषी पाठक उनके रचना-संसार से परिचित हो सकें. हिंदी में 'लघु पत्रिका आंदोलन' को बल देने वाली लघुपत्रिका 'लहर' के यशस्वी संपादक प्रकाश जैन के 13 मार्च 1988 को निधन का दुखद समाचार अभी-अभी मिला है. साहित्य-जगत की, इन विभूतियों के निधन से अपूर्णीय क्षति हुई है. सारिका-परिवार की ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि... ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

राष्ट्रीय चिंतन के अंतर्संबंधों का अंतर्सूत्र

जनवरी, 1985 में ज्ञानपीठ पुरस्कारों पर हमने 'सारिका' के दो विशेषांक निकाले थे. उन अंकों के बाद भी हमें लगातार यह लगता रहा था कि अब भी कई बातें ऐसी हैं जो पाठकों के सामने आनी चाहिये थीं लेकिन आ नहीं पायीं. इस बीच तीन रचनाकारों को ज्ञानपीठ पुरस्कार और मिल चुका है—तकषी शिवशंकर पिल्लै, पन्नालाल पटेल और सची राउतराय. जब पिछले विशेषांक हमने निकाले थे तो हमारा ज्यादातर ध्यान पुरस्कार की शरीर-संरचना पर रहा था. हमने अपनी बात में कहा भी था—''हमने ज्ञानपीठ पुरस्कार की शरीर संरचना से संबद्ध बातें मुख्य रूप से कीं...कि यह पुरस्कार कैसे शुरू हुआ, इसकी प्रक्रिया क्या है आदि. लेकिन इस पुरस्कार शरीर की एक धड़कन भी है. इसमें एक विशाल और ज्योतिर्मय आत्मा भी है. और वही आत्मा, वही धड़कन सबसे महत्वपूर्ण है. इसे हम राष्ट्रीय धड़कन और राष्ट्रीय आत्मा भी कह सकते हैं. यह पुरस्कार मात्र एक 'व्यक्ति' का ही सम्मान नहीं अपितु उस समूची भाषा का भी सम्मान है और उस अंचल या प्रदेश का भी, जिसके कृतिकार को यह दिया जाता है. जब भी हम किसी पुरस्कार विजेता की चर्चा करेंगे तो उस भाषा को भी रेखांकित करना पड़ेगा. उस भाषा की समृद्धि, उसकी साहित्यिक परंपरा, उसका इतिहास, उसकी प्रवृत्तियों और उसकी उपलब्धियों पर भी नजर अपने आप चली जायेगी. ये पुरस्कारजयी रचनाएं या रचनाकार देश की नब्ज का भी संकेत देते हैं. राष्ट्रीय चेतना की अंतर्धाराओं, राष्ट्रीय जनमानस और राष्ट्रीय चिंतन के अंतर्संबंधों का अंतर्सूत्र भी कहीं न कहीं और किसी न किसी सीमा तक हमारी पकड़ में आता है. यही एक सबसे महत्वपूर्ण बात है.

इसी महत्वपूर्ण बात को अधिक स्पष्ट करने और रेखांकित करने के लिए हमने इस तीसरे विशेषांक की योजना बनायी और यह चाहा कि इस काम के लिए ज्ञानपीठ से जुड़े किसी वरिष्ठ व्यक्ति को ही चुना जाये. इसी संदर्भ में हमने आदरणीय लक्ष्मीचंद्रजी से अनुरोध किया और उन्होंने कृपापूर्वक हमारे अनुरोध को स्वीकार लिया. हम उनके आभारी हैं. इस अंक के लिए लक्ष्मीचंद्रजी को विशेष सहयोग हमारे साथी वीरेंद्र जैन ने दिया है. यों हमारे सभी साथियों की इसके संयोजन में हिस्सेदारी है.

हमें पता चला है कि ज्ञानपीठ पुरस्कार को लेकर अन्य भारतीय भाषाओं की कुछ पत्रिकाओं ने अपने अंक निकाले हैं. अभी हाल ही में मराठी की लघु पत्रिका 'आलोचना' का ज्ञानपीठ पुरस्कार अंक हमें देखने को मिला. यह पत्रिका त्रैमासिक है और इसका यह विशेषांक 1987 में प्रकाशित हुआ था. मराठी की इसी पत्रिका ने 1976 में भी ज्ञानपीठ पर एक अंक निकाला था. यह सही है कि इस पत्रिका में अधिकांश लेख पुरस्कार-विजेता रचनाकारों के परिचय पर ही आधारित हैं, दो-एक लेख ऐसे भी हैं जिनमें विजेताओं के स्तर की आलोचना की गयी है और उन्हें उस भाषा का दोयम दर्जे का लेखक मानते हुए विवाद खड़े किये हैं. विशेष रूप से डॉ. आर. श्रीनिवासन ने अखिलन और उनके साहित्य की इसी ढंग से समीक्षा की है. मराठी और गुजराती के रचनाकारों की भी दबी जुबान से कुछ-कुछ ऐसी ही टिप्पणियां हैं. साहित्य जगत के लिए इस तरह के विवाद और ऐसी बातें कुछ नयी नहीं हैं. बुद्धिजीवियों की जमात में निर्विवाद और एकमत जैसी कोई बात नहीं होती. यदि संदर्भ किसी बहुत बड़े पुरस्कार का हो तब तो इस निर्विवादिता की कल्पना भी संभव नहीं रहती.

साहित्य पर नोबेल पुरस्कार और ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवृत्तियों को एक साथ देखने से कुछ तथ्य सामने आये हैं जिनकी ओर मैं संकेत करना चाहता हूं. किसी भी कहानीकार को कहानीकार के रूप में न तो आज तक नोबेल पुरस्कार दिया गया है और न ही ज्ञानपीठ पुरस्कार. ये बात और है कि जिन रचनाकारों को उपन्यासकार के रूप में पुरस्कृत किया गया है वे कहानीकार भी हैं. विश्व के नाटककारों को नोबेल पुरस्कार दिया गया है लेकिन भारतीय नाटककारों को नाटककार के रूप में ज्ञानपीठ पुरस्कार अभी तक नहीं मिल सका. जबकि कहानी और नाटक दोनों ही साहित्य की स्थापित सर्वमान्य और महत्वपूर्ण विधायें हैं. भारतीय भाषाओं के किसी भी कहानीकार और नाटककारों के नाम भी ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए विचारणीय होने चाहिये. हमें यह भी मात्र संयोग ही लगता है कि हिंदी के चारों पुरस्कृत रचनाकार कवि हैं या उनके कवि रूप को ही पुरस्कृत किया गया है, जबकि अन्य भारतीय भाषाओं में कवि रूप में पुरस्कृत रचनाकारों की संख्या से अधिक संख्या उपन्यासकार के रूप में पुरस्कृत रचनाकारों की है. अन्य भाषाओं से नौ कवि पुरस्कृत हुए हैं जबकि उपन्यासकार ग्यारह पुरस्कृत हुए हैं. इसे देखते हुए क्या ऐसा नहीं लगता कि हमें हिंदी के समकालीन समस्त उपन्यास साहित्य के पुनरालोचन और पुनर्मूल्यांकन की जरूरत है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुति

आज से ठीक पच्चीस वर्ष पहले, 16 मार्च, 1963 को भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा स्थापित एक लाख रुपये राशि के वार्षिक पुरस्कार के संचालन के लिए गठित प्रवर परिषद की पहली बैठक प्रवर परिषद के प्रथम अध्यक्ष देशरत्न डा. राजेंद्रप्रसाद के निर्णय के अनुसार दिल्ली में आमंत्रित की गयी थी. उन दिनों राजेंद्र बाबू भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति-पद के दायित्व से मुक्त होकर पटना में सदाकत आश्रम में रह रहे थे. जब उन्होंने ज्ञानपीठ की अध्यक्षा श्रीमती रमा जैन को अपने 27 फरवरी, 1963 के पत्र द्वारा संपुष्टि दी थी कि वह बैठक के लिए एक दिन पहले दिल्ली पहुंच जायेंगे तब उन्हें क्या पता था कि उनके जीवन का यही अंतिम पत्र होगा. उनके सचिव श्री बाल्मीकि चौधरी ने उस पत्र को अपने पत्र के साथ संलग्न करते हुए रमाजी को इस तथ्य से सूचित किया था. 28 फरवरी को अचानक उनके हृदय की गति बंद होने से श्रद्धेय राजेंद्र बाबू का निधन हो गया. यह एक बज्रपात था जिसे सारे राष्ट्र ने दम साधकर झेला. क्या प्रवर परिषद की बैठक स्थगित की जाये? ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शांतिप्रसाद जैन ने अपने सहयोगी ट्रस्टियों से परामर्श किया. जिस प्रवर परिषद के सदस्यों की नियुक्ति स्वयं राजेंद्र बाबू के परामर्श और उनके अंतिम निर्णय के आधार पर हुई थी उन सदस्यों की व्याकुलता स्पष्ट थी, वेदना संप्रेषित थी. पुरस्कार-योजना को राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू का आशीर्वाद 24 नवंबर, 1961 को प्राप्त हो चुका था, जब राष्ट्रपति भवन में इस योजना का लक्ष्य और प्रक्रिया की स्थूल रूपरेखा उनके सामने पहली बार रखी गयी थी. योजना की सफलता के लिये वह स्वयं भी कृत-संकल्प थे, और अपनी भावना व्यक्त कर चुके थे कि इसके कार्यान्वयन में विलंब नहीं होना चाहिए. उनके निर्णय को शिरोधार्य मानकर प्रवर परिषद की बैठक स्थगित नहीं की गयी. वह उनके प्रति ज्ञानपीठ की और राष्ट्र की विनम्र श्रद्धांजलि थी.

गठन के समय अध्यक्ष के अतिरिक्त प्रथम प्रवर परिषद के अन्य सदस्य थे. डा. पातंजलि शास्त्री (भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश), डा. संपूर्णानंद, काका कालेलकर, डा. रंगनाथ आर. दिवाकर, डा. गोपाल रेड्डी, डा. हरे कृष्ण मेहताब, डा. नीहाररंजन रे, प्रोफेसर मोहम्मद मुजीब, डा. वी. राघवन, डा. कर्णसिंह.

श्रीमती रमा जैन, अध्यक्ष और मैं (लक्ष्मीचंद्र जैन) मंत्री प्रवर परिषद में भारतीय ज्ञानपीठ के प्रतिनिधि थे. श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित को भी भारतीय ज्ञानपीठ के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित किया गया था.

यहां यह उल्लेखनीय है कि भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना, पुरस्कार-योजना प्रारंभ करने से लगभग 20 वर्ष पहले हो चुकी थी. अतः पुरस्कार की प्रामाणिकता को सहज रूप से उस प्रतिष्ठा का संबल प्राप्त हो गया जो ज्ञानपीठ ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल आदि के प्राचीन साहित्य की शोध-खोज और उसके आधुनिक पद्धति के संपादन-प्रकाशन की अभूतपूर्व प्रवृत्तियों द्वारा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में अर्जित की थी. ज्ञानपीठ ने आधुनिक भारतीय साहित्य को, विशेषकर पारदर्शी प्रतिभा की झलक देने वाले नये लेखन को केंद्र में रखकर लोकोदय ग्रंथमाला और 'ज्ञानोदय' तथा 'ज्ञानपीठ पत्रिका' के माध्यम से साहित्य के नये क्षितिजों को उजागर किया था. साहित्यिक चेतना के संचार का हलचलों-भरा वह अनूठा स्फूर्तिदायक युग था.

यहां तक तो ठीक था, किंतु समग्र भारतीय साहित्य की संविधान-सम्मत चौदह भाषाओं में से प्रतिवर्ष एक पुस्तक को चुनकर उसके सर्जक को एक लाख रुपये की राशि से सम्मानित करने का संकल्प अनेक समीक्षकों और हितैषियों को इतना विकट, दुःसाहसिक और जोखमभरा लगा कि उन्होंने बहुत सद्भावना-पूर्वक सचेत किया. ज्ञानपीठ के संस्थापक श्री साहू शांतिप्रसाद जैन औद्योगिक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावसायिक महत्वाकांक्षी योजनाओं को हाथ में लेकर सफल बनाने की कला में दक्ष थे—वह बहुत दूरदर्शी थे. किंतु यह क्षेत्र साहित्य का था, वह भी भारत के ऊंचे-से-ऊंचे बौद्धिक वर्ग की साधना के मूल्यांकन का. उन्होंने उचित समझा कि उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा जैन इस चुनौती-भरे दायित्व को ज्ञानपीठ की अध्यक्षा होने के नाते स्वीकार करें. यह रमाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व की चमत्कारी संभावनाओं के प्रस्फुटन का क्षण था. पुरस्कार योजना किस प्रकार रूपायित हुई, वह किस प्रकार परवान चढ़ी, किस प्रकार राष्ट्र की साहित्यिक प्रतिभा के सामूहिक योगदान ने इसे सफल बनाया, इसकी रोमांचक कथा 'सारिका' के जनवरी, 1985 के दो पाक्षिक विशेषांकों में दी जा चुकी है.

'सारिका' को श्रेय जाता है कि अप्रैल, 1988 के इस तीसरे विशेषांक द्वारा वह लगभग पच्चीस वर्षों की पुरस्कार कथा-यात्रा के तीसरे चरण में अब तक के बाईस पुरस्कारों की अद्यतन साहित्यिक उपलब्धियों को संकेतित करने का प्रयत्न कर रही है.

यह अंक उस समय प्रकाशित हो रहा है जब उड़िया साहित्य में नये युग के पुरोधाओं में अग्रणी साहित्य-शिल्पी श्री सच्चिदानंद राउतराय को ज्ञानपीठ पुरस्कार (28 मार्च, 1988 को दिल्ली में) समर्पित हो रहा है. सन् 1965 के पहले पुरस्कार से लेकर सन् 1986 के बाईसवें पुरस्कार तक साहित्य का जो स्वरूप निखरकर सामने आया है वह भाषा-गत होते हुए भी सच्चे अर्थों में 'भारतीय साहित्य' है. यह साहित्य पुरस्कृत न होता तब भी वह भारतीय साहित्य तो था ही किंतु भाषा और क्षेत्र की सीमाओं को लांघकर उसकी पहचान भारतीय साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में ज्ञानपीठ पुरस्कार का महत्वपूर्ण योगदान है. शंकर कुरुप से लेकर सची राउत राय तक सब लेखक जो अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारतीय लेखक थे वे अब राष्ट्रीय क्षेत्र में भी 'भारतीय' हैं. यह कहना विचित्र लगता है किंतु इस अभिधा की प्रतीति का एक ऐतिहासिक महत्व है.

इन विशेषांकों की सार्थकता इस बात में है कि हमारे लेखक और पाठक इन चौबीस पुरस्कार विजेताओं के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हों. कन्नड़ और हिंदी के चार-चार लेखक, बांग्ला और मलयालम के तीन-तीन, गुजराती और उड़िया के दो-दो तथा तेलुगु, मराठी, तमिल, पंजाबी, असमिया और उर्दू के एक-एक लेखक पुरस्कृत हुए हैं. इनमें तेरह मुख्यतः कवि हैं और ग्यारह उपन्यास-कहानीकार. पुरस्कार को सार्थकता देने वाले कैसे-कैसे दिग्गज हमारे बीच से उठ गये—शंकर कुरुप, ताराशंकर, सुमित्रानंदन पंत, फिराक, विश्वनाथ सत्यनारायण, विष्णु दे, दिनकर, बेंद्रे, खांडेकर, अखिलन, वात्स्यायन, महादेवी, मास्ति और पोट्टेक्काट. चौबीस में से चौदह! सभी यशःकाय और चिरंतन!

पुरस्कार समारोह साक्षी रहे हैं कि किस प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ ने साहित्य के साथ कला को संयोजित करने का प्रयत्न किया है. अभिनय, संगीत, नृत्य और चित्रपट से संबंध रखनेवाले उच्च कोटि के कलाकारों ने प्रत्येक वर्ष पुरस्कृत कृति के कथ्य और भाव को मंच पर प्रस्तुत करने में अपने कृतित्व की सार्थकता मानी है. एक विशेष लेख में पहली बार इस पक्ष को उभारा गया है. ज्ञानपीठ पुरस्कारों से संबंधित प्रश्न परीक्षाओं और प्रतियोगिताओं के आवश्यक अंग बन गये हैं.

प्रयत्न किया गया है कि यह अंक पुरस्कार विजेताओं की प्रेरणाओं का फलक भी प्रस्तुत करे. भारतीय साहित्य और संस्कृति की विरासत की उत्तराधिकारी तरुण पीढ़ी को ये तीनों अंक विशेष रूप से समर्पित हैं.

16 मार्च, 1988

लक्ष्मीचंद्र जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

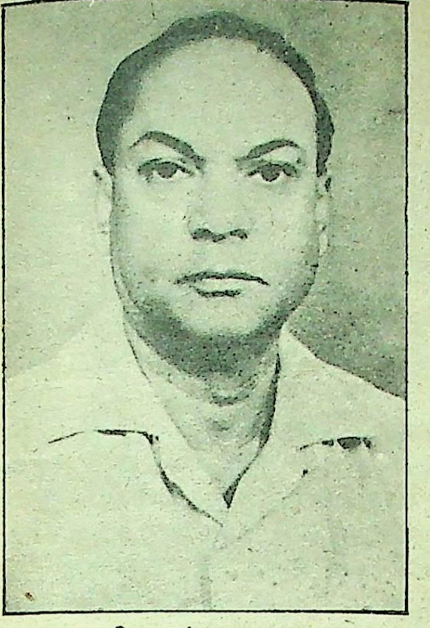

सच्चिदानंद राउतराय

1916 में जन्में और 1985 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित उड़िया रचनाकर सच्चिदानंद राउतराय ने अपनी पहली कविता तब लिखी थी जब वे स्कूली छात्र थे और उनका पहला कविता संकलन 1932 में प्रकाशित हुआ था जब उनकी आयु केवल 16 वर्ष थी. एक वर्ष बाद उनका एक काव्य नाटक प्रकाशित हुआ तथा 1937 में उनका दूसरा काव्य संकलन. उसके बाद से उनका सर्जनात्मक लेखन निरंतर जारी है और अब तक उनके 18 काव्य संकलन, चार कहानी संग्रह, एक उपन्यास, एक काव्य नाटक, साहित्य समीक्षा की तीन पुस्तकें तथा साहित्यिक मूल्यों पर एक महत्वपूर्ण अनुसंधान-कार्य प्रकाश में आ चुके हैं. लेखन के साथ ही उनके कृतित्व को मान्यता भी मिलती गयी. 1985का ज्ञानपीठ पुरस्कार पाने से पूर्व राउतराय पद्मश्री (1962), केंद्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार (1964), सोवियत लैंड पुरस्कार (1965), आंध्र विश्वविद्यालय (1977) तथा बरहमपुर विश्वविद्यालय (1978) से मानद डाक्टरेट प्राप्त कर चुके हैं. वे अखिल भारतीय कवि सम्मेलन (कलकत्ता-1968) तथा उड़ीसा साहित्य अकादमी (1978-1981) के अध्यक्ष भी रहे. उन्होंने फिल्म सेंसर बोर्ड को अपनी सेवाएं दीं तथा संसार के विभिन्न देशों में आयोजित साहित्यिक संगोष्ठियों में भाग लिया. उड़िया की एक साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका के वे संपादक हैं तथा उड़िया कला-कृति संग्रहालय के संस्थापक हैं.

अंधारुआ

सच्चिदानंद राउतराय

गाले में हाड़. दांत में तिनका. जीभ रहते-रहते तुतलाना पड़ा पहली प्रधान को. घर-घर ठीकरा लिये फिरना पड़ा.

काले स्याह अंधेरे में अपनी मोटी-सोंटी बाह ऊपर उठा गांव के छोरवाली दुकान के पास बैठ पहली सबसे अपने मन की बात कहने की चेष्टा करता. तरह-तरह के दरदीले बोल निकाल गाहकों की जेब से पैसा-धेला झड़ाने का उपाय करता. कोई देता, कोई मुंह मोड़ चला जाता. अधिकांश उसकी ओर दांत निपोर हंस पड़ते, चिढ़ाते. पहली माटी में लोटता. बाल बिखेरे, हाथ पसार बहुत कुछ कहता. सब कहते, ''तमाशा कर रहा है.''

स्याह देह, गंदे कपड़े, धंसी चौड़ी छाती, काली रात में मिलकर अलग से पहचान में ही न आती.

ज़िद्दी बच्चा दूध न पीये तो मां डराती है, ''देख-देख वो अंधारुआ आया. गांव के नाके पर बैठा जीभ लपलप कर रहा है.''

पहली पुरस्तम (जगन्नाथ पुरी का ही एक नाम) जायेगा. राह में सांझ होने पर उस ओर के गांव में टिक जायेगा. सूरज डूबने से पहले दो-चार दाने मुंह में डाल किसी के बरामदे में दो टुकड़े पुवाल बिछाकर पांव पसार देगा. वह जिस गांव जाता, उस गांव में 'अंधारुआ आया, अंधारुआ आया' चारों ओर शोर मच जाता. उसके पीछे छोकरे ताली पीटते, दौड़ते. आवारा कुत्ते भी हाउ-हाउ कर भौंकते, फिर सूं-सां करते पावों में दुबकते, उसे सूंघते.

अंधारुआ रोज दिन भर चलता. और फिर सांझ ढले भीख मांगता.

अंधेरी रात. थुल-थुल पेट किसी औरत की तरह काला पड़ झूल आया है. उसी में चलते-फिरते अंधेरे की तरह लाठी लिये अंधारुआ चलता रहा...

कभी-कभी अंधारुआ सपना देखता—

पके खेत में लहरा रहा है धान. चोखे-चोखे धान के पौधे बेशुमार! क्यारी की रेख से सांप, बिच्छू और तिलचट्टों का मेला लगा है. चारों ओर आमिषी गंध पाकर चील भी झुंड के झुंड उड़ रही हैं.

उसी घने अंधेरे में मचान बनाकर खेत के बीच एक जगह आग जलाएं पहली रखवाली कर रहा है.

धान की जड़ों में जमा है ढेर की ढेर खाद, खाद नहीं हाड़ हैं. पहली के हाड़—उसकी स्त्री गेली के हाड़..

पहली को याद आता है—घोर ठंड के दिनों में भी कैसे खूब तड़के अंधेरे-अंधेरे केवटों के घर चिवड़ा कूटने की आवाज सुनते-न-सुनते गेली बहू थरथराती गली, रास्ते, कुरी, अमराई, नाले तक घूम-फिर टोकरी भरकर गोबर चुग लाती और पिछवाड़े में ढेर कर देती... और पहली अपना खून-पसीना बहाकर खाद को कूट-कूटकर चूरा करता, ले जाकर खेत में बिछा आता...

इतना ही नहीं, पत्थर-सी सख्त खेत की माटी में हल पकड़ चलाता तो कितना कष्ट होता, याद आने पर पहली के भीतर गहरे तक सिहरन दौड़ जाती. सिर पर आग के लौंदे की तरह सूरज, नीचे तपती-जलती माटी—दोनों पैर जलकर परत-दर-परत छिलके उतरते...

पहली की इतनी हाड़तोड़ खून-सनी मिहनत को सार्थक कर जिस दिन पके खेत में बेशुमार धान के पौधे लहराकर हवा में आंख-मिचौनी खेलने लगे, उस दिन पहली के जीवन में बड़ा महोत्सव होता. सब-कुछ भूलकर वह देखता रहा अधपकी क्यारियों की ओर...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस के बाद, एक दिन...

पहली सोच रहा था—

स्याह अंधेरा. मंगसिर की सिरसिराती हवा कलेजे को थर्रा रही है. पहली मचान पर एक कंथा ओढ़े चित्त लेटे बटुए से चूना और तंमाखू का पत्ता हथेली पर मल रहा है. खेत में कोई चबर-चबर आवाज आयी, पानी की कीच में धान के पौधे रौंदता कोई चारों ओर मानो फिर रहा है. पहली ने सोचा, कोई वराह या भालू होगा!

गुस्से में लाठी थामकर खड़ा हो गया.

धान के पौधों की सांवली-सी कतार को चीरती पानी की लकीरें चमचमाती दिख रही हैं, घने अंधेरे में पहली की आंखों में पड़ गया खूब बड़ा काला-कलूटा जंतु! नासा से उंचास पवन निकल रहे हैं.

पहली उसके पीछे-पीछे दौड़ा. मगर वह काली छाया धान के पौधों को कूदती-रौंदती, दौड़कर भाग गयी.

धान का एक भी पौधा रौंदा जाता तो पहली की देह का अंजुरी भर खून सूख जाता.

आगे है एक गड्ढा. वह और आगे न जा सका, मुंह फिराकर लौट आया. पहली की लाठी जा लगी उसके सिर पर—ठीक बीचों-बीच.

पहली ने बिजली की चमक में देखा—दो बड़े-बड़े पैने सींग ऊपर की ओर सीधे चले गये हैं.

पूंछ उठाकर फनफनाता जंतु एकदम घबराकर भाग छूटा. पहली ने देखा, वह कुछ दूर जाकर कांटों के झुरमुटे में धड़ाम से गिर पड़ा. और फिर कीचगारे से उठ ही नहीं सका.

पहली मचान पर आ चैन से सो रहा. रात में लेटे-लेटे सपना देखा—कोई विशालकाय कंकाल...उसे गीध-कौए घेरे हुए हैं. एक गीध उसकी नाभि में, उस लाश के चोंच धंसा रहा है. उस लाश के चारों खुर किसी ने काट डाले हैं, कुल्हाड़ी से.

पुरोहितजी ने पोथी देख बताया, ''तीन पाद कोष लगा है! पुरस्तम(पुरी) जाकर मुक्तिमंडप की सभा के आगे प्रासचित किये बिना पातक नहीं छूटेगा. प्रासचित न होने तक मुंह में तिनका रखोगे, किसी से बात नहीं करना!''

गांव भर में फुसफुसाहट चली—पहली को मुसकिल है! गोहत्या कर डाली!

उस दिन का पहली. आज का अंधारुवा! कितना फरक है!

पहली सोचता—उस दिन पदमपुरान बांचकर पुरोहितजी महाराज निधी मिस्सरजी ने क्या-कुछ बताया! डर से चेहरा फीका पड़ गया. आंखों के आगे तैर गया—जलती आग का चूल्हा—बड़े-बड़े हंडे, तेल उबल रहा है! इधर-उधर देखा. थर्रा गया. फिर आंखों में तैर गए भैंसों के मुंह-जैसे दो जमदूत! उन्हीं का चित्र तो पंडितजी महाराज दया कर पुरान से टिमटिमाते दीप के उजाले में दिखा रहे थे. तीन-रंगी वह फोटो याद आयी. कितनी बड़ी-बड़ी आंखें, कैसे सींग, हाथ मानो बंदर की तरह रोंयेदार, नाखून पैने-पैने! वह बच्चों की तरह नींद में बिलबिला उठा, ''आया...वो...आया...लो..''

कभी-कभी राह-चलते सूनी दोपहर में थककर पेड़ के नीचे बैठ जाता. चारों ओर सुनसान. उसे याद आयी नीचे वाले गांव के रामा गौड़ की बात. गौ मारकर छुपा दी, पर मरा तब जीभ में घाव ही घाव हो गए, कीड़े पड़ गए, मुंह में कुलबुलाने लगे. कितना गू-मूत, खून-मवाद होकर सड़-सड़कर मरा! फिर भी क्या प्राण गये?

आखिर बस्तीवालों ने पूछा—क्यों रामा, क्या किया है? बोल दे! वरना सहज ही परान नहीं छूटेंगे!

रामा मान गया. गाय मारी थी! हिचकी उठी. तीन बार गाय की तरह रंभाया और प्राणवायु उड़ गयी...

इसके आगे पहली सोच नहीं पाता. उसे सुनाई पड़ता, कोई मरखनी गाय खूब दूर पर रंभा रही है. डरकर वह पेड़ को कसकर बाहों में भर लेता. शायद पास ही दो-एक गायें चर रही हैं. धौरी, कजरी, मटियाली और उनकी बछियां कूदती चारों ओर फिर रही हैं. पहली को लगा, सींग उठाये उसे ही मारने आ रही हैं. लाठी लेकर उतर पड़ा...घबराई आंखों से इधर-उधर देखा.

कभी-कभी पहली सपना देखता—कोई मरी काली गाय पेट फुलाए आंगन में पड़ी है, पेट में छोटी-सी बछिया है. गेली बहू चौंतरा के पास बैठी चुपचाप रो रही है, और उसका मरा बच्चा फिर जी गया है. वह बापू-बापू किलकता उसे पुकार रहा है. पहली की नींद झप से टूट जाती. उठ बैठता. उसे लगता, जैसे दूर सूं-सां करता कोई चर रहा है.

कभी कभी राह-चलते पहली थककर खड़ा रह जाता. उसे लगता, पीछे से कोई आवाज दे रहा है. पैने-पैने सींग—हाथ में फांस बनी रस्सी! उसे याद आता रामा गौड़ का चेहरा. खून-मवाद और पुछल्ले कीड़े! मन को समझाता—फिर अपनी राह चल पड़ता. दस बार दस-दस नाम ठाकुरजी के, जगदीसजी के लेता.

पुरी बड़ दांड (मंदिर के आगे का प्रशस्त चौड़ा पथ). सैंकड़ों कोढ़ियों के बीच पहली भी हंडी का टुकड़ा लिये भीख मांग रहा है. बड़ देवल (जगन्नाथ मंदिर) पर ठाकुरजी की लंबी तीन मोड़ की ध्वजा फहरा रही है. पहली एकटक उधर ही देख रहा है. उसके मन में, बड़ दांड पर पैर रखा उस दिन से, थोड़ा साहस आया है. अब वह पहले की तरह न बड़बड़ाता है, न भयंकर सपना देख चौंकता है. पास लेटी कोढ़ के रोगवाली औरत पूछती, ''तू कितने दिन हाड़ रखेगा बाबा?''

पहली अंगुली पर गिन, अंगुली दिखाकर बताता, ''सात दिन!''

सात दिन बाद वह गांव लौट आया, गेली की मां के सिलवर के बने हाथ के कड़े, बरतन-भांडे बेच-बाचकर पांच रुपये अंटी में रख पुरस्तम गया था वह. घर भर की चीजें बेच, अब पुरस्तम में पातक छुड़ा आया.

एक महीना इक्कीस दिन पूरे हुए. पंचगव्य लेकर, बाम्हन भोजन करवाया; मुक्तिमंडप के महापुरुषों को कुछ-कुछ दे-दिलाकर उनकी चरन-धूल और आशीर्वाद लेकर घर लौटा था. आया तब गेली बहू के लिए महापरसाद का कुड़वा (पके चावल की छोटी एक हंडी और सूखे निर्माल्य-महाप्रसाद का भात सुखाकर उसकी छोटी-छोटी पोटली बनायी जाती हैं) की पोटली भी लाना जरा-सा न भूला था. लौटते समय उसके पांव जमीन पर टिकते ही न थे, मन खुशी में उछल रहा था.

उतरती सांझ के नीम अंधेरे में गांव पर हलका झीना परदा पड़ रहा था कोई. गांव के सिरे पर महुए के पेड़ पर मधुमक्खियों की सांझ की सभा चल रही थी. गेली बहू अपना भूखा मुंह साड़ी के आंचल में ढांपे तुलसी-चौरे के पास संझादीप जला सिर झुका रही थी. पीछे से पहली ने आवाज दी, ''घर में सब ठीक-ठाक तो है गेली बहू?''

गेली की मां ने जो जवाब दिया, पहली का तो हलक सूख गया! घर लौटते समय की हंसी-खुशी पलक झपकते ही कहीं उड़ गयी.

''घर में एक पखवाड़ा हुआ चावल नहीं, मांडिया छेरी खा गई. तीन दिन हुए...जो शीत के दिनों वाली झड़ी शुरू हुई...उस में रसोई की भीत ढह गयी. और जो खेत में धान पैदा हुआ...जमींदार जी महाराज, पुरस्तम जब तुम गये, पीछे से उसे अगले बरस लगान के बाबत जब्त कर लिया...अब पिछले बरस का लगान महीने भर में दाखल न किया तो फिर घर-बार कुड़क कर देने की धमक दे गये हैं.''

सिर पर हाथ दिए वह सब सुन गया. कुछ नहीं कहा. पुरी से लाया प्रसाद लेकर रात दोनों ने किसी तरह काट दी.

सुबह देखा, चूल्हे पर चढ़ाने के लिए चावल नहीं, साग-तरकारी की बात तो दूर. रसोईघर की भीत ढेर हुई पड़ी है. एक कोने में दीमक की बाबी खूब बड़ी हो गई है. हांडी-कुंडी दो-चार जो थीं, सब भीत के गिरने से चूर-चूर हो गई हैं. घर में ठीकरे पड़े हैं. पहली दो महीने पुरस्तम में पड़ा रहा—घर में छदाम-कौड़ी भी नहीं रही. गिरवी रखने के लिए जो दो-चार बरतन-भांडे थे—सब बेच-बाच पुरी से गोहत्या का पातक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुड़ाने गया था. बाकी रहा क्या जिधर हाथ बढ़ाये? [illegible] बस शंखा (सुहाग की चूड़ी) एक-एक है—वो भी दिनों-दिन ढीली होती जा रही हैं.

सुवह पहली को देख गांव के वाम्हन दौड़े—भोज देना होगा! गांव के वाम्हन शुद्ध न करें तव तक भला पातक छूट सकता है? जमींदार का प्यादा आकर दुआरे वैठ गया. पिछले वरस का लगान दो, नहीं तो सामंतजी मुकदमा करेंगे. जात-भाइयों ने पकड़ा—जात-विरादरी को खिलाये विना शुद्ध कैसे होगे?

पहली निकला मजूरी करने. मगर पौष का महीना, धान कटाई के वाद काम कहां से आयेगा? फिर उसने देखा—गांववाले उसे देख नाक-भौंह सिकोड़ लेते हैं. एक ने तो उसे सुनाकर कह दिया, "गो-मारक को छूने में ही पाप लगेगा." तव से पहली सरककर रहने लगा. किसी से आगे वढ़ मेल-जोल नहीं करता.

जात-विरादरी को भोज दिया नहीं. पहली को जाति से वाहर कर दिया. वाम्हन गुसाईं लोग अड़ गए. धोवी, नाई, आग-पानी सव वंद! पहली को अकेला कर दिया.

सागवान-सी कद्दावर देह देखते ही देखते आकर कांटा हो गई. गेली वहू भी फूंक दो तो गिर पड़े. वस हाड़ों का ढांचा भर दिखता है. स्त्री को उसने उसके पीछे पीहर भेज दिया.

पहली के यहां एक दिन चूल्हा जलता दो दिन सीधा उपवास! दुकानदार, धोवी, साहूकार सवने देन-लेन वंद कर दिया. पहली को कुछ नहीं सूझता.

दुख, अभाव, ग्लानि वगैरह सहते-सहते पहली का मगज विगड़ गया. पुरस्तम क्षेत्र में इतने पैसे खरचकर जो काला दाग मन से मिटा आया था, फिर से उभरकर मन में रेख खींच रहा है.

पहले की तरह फिर वे ही भयंकर सपने...कभी-कभी चौंक उठता वह. उसे लगता जैसे काला-कलूटा कोई जंतु सूं-सां करता उसके चारों ओर चरता फिर रहा है. वह रातों में सपना देखता—कोई मरखना वैल मानो सींग घोंपने के लिए पूंछ उठाये उधर ही आ रहा है. सपने में चीख उठता— "वो...वो...आया घोंपा... भागो, सींग घोंप देगा...

पहली का सव-कुछ जाकर वचा था टूटा-फूटा यह घर. वह भी लगान न देने पर नीलाम में उठ गया. इतनी वड़ी दुनिया में सिर छुपाने को कहीं दो गज धरती नहीं रही. घर नीलाम होते समय वह टिमटिमाती निगाह [illegible] नहीं रह गये. जव वता दिया गया उसे कि अव वह इस घर में नहीं रह सकता, चुपचाप उठकर खड़ा हो गया. एक सव्वल उठायी और पिछवाड़े के कमरे को खोद, मरी हुई गेली के जनम के समय की छठ-पूजा वाली सामग्री ले आया. रसोई में पूर्वजों की पूजा-वेदी को भी खोद लाया. धीरे-धीरे घर छोड़ वाहर निकल आया. वस, उस दिन से दुवारा वहां नहीं लौटा.

वाप-दादों के जमाने का घर चला गया—पहली के मन की हालत खराव हो गई. इस वक्त यहां, उस वक्त वहां... इसी तरह दिन कटने लगे.

घर के वीच खड़े सहिजन के पेड़ से पहली को वहुत प्यार था, ढेर की ढेर राख उसकी जड़ में उंडेली है उसने. सहिजन में गुच्छे-गुच्छे फली होतीं, दो-एक तोड़ पखाल भात के साथ खाने के लिए सहज ही उसका हाथ नहीं उठता— चाहे नीचे गिर जातीं वे. इसी की छाया में वैठ कितनी चांदनी रातें कटी हैं! वाहर खड़े होकर कभी-कभी पहली उस पेड़ की ओर देखता—उसके तले जाने का वहुत मन करता, पर वह लौट आता. जमींदार का चौकीदार उसे देख हंसी करता, "क्यों रे गोहत्यारे, पहली!"

पहली को याद आता—घर की पिछवाड़ी में खूव-खूव कनसिरि (एक तरह की हरी सब्जी) फैल गई होगी. कुएं की वगल में वह सदावहार का गाछ और गोड़ीवाण (एक तरह का फूलों का पेड़) फूलों से लद गए होंगे. मन कहता—चल, जरा एक वार जी भर देख तो आयें!

टूटी छाती में कोह उठता. उसका मन किरच-किरच हो जाता. देखते-देखते पता नहीं कितने भयावने सपने देख जाता. हड़वड़ा जाता. उसे लगता, इसी वीच वह पता नहीं कव मर चुका है.

घर नीलाम होने को महीना भर ही हुआ होगा, वस्ती वाले वतिया रहे थे—पहली प्रधान पागल हो गया है. गू-मूत भरा इधर-उधर फिरता रहता है. आदमी को देखकर कहता है, "आया रे आया...घोंप देगा, घोंप देगा...होशियार!"

डूंगर की ओर ईंधन चुगने कुछेक वावरानी छोकरी गयी थीं. वे सांझ-ढले धोवी साहू की दुकान के पास वतिया रही थीं—पहली वैठा है डूंगर पर! वस, वैल की तरह चीख रहा है, कहता रहता है, "वो आया...आया...कैसे सींग हैं! सूं-सां कर रहा है! मैं तो मर गया! मिट गया महाराज!"

सव कुछ सुन निधि जी मिस्सर वोले, "उसका पाप उसे देखेगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेगा कहां? शुद्ध हुए बिना भी कहीं गोहत्या का पाप छूटता है? हजार कहा—हमारी वात तो उसे सड़ी हुई लगी, दस-पांच रुपये खरचने की ही तो वात थी—बाम्हन भोज करा देता—शुद्ध-पूत हो जाता. आज वह चैन से बैठा होता. धर्म कहीं उठ गया है?''

परीक्षित ब्रह्मा ने कहा, ''आजकल कोई सास्तर-पुरान की बात मानता है मिस्सरजी? देखो तो, मरते समय कैसे गौ की तरह चीख रहा है! उसका अब समय आ गया. पाप खड़ा उसे दिखाई दे रहा है सामने.''

उस उजाड़ पहाड़ पर पहली का कंकाल. किसी भयंकर कल्पना की प्रेतात्मा उसके मन पर लंबी-लंबी छाया फैलाकर दवोचे है! उससे उद्धार कहां? उसके साथ जुट गई है दिनों की भूख, प्यास, अभाव, दुख-दर्द और अपमान. सब मिल उसके मन को चूर-चूरकर पीसे डाल रहे हैं.

पहली देख रहा है—उसके आगे घर-बार, स्त्री-परिवार, जान-पहचान के कोई नहीं. सिर्फ खाली सूना-सूना... और कोई बड़ी भरकम पोथी—पन्नों पर उसके छपी है बड़े-बड़े यमदूतों की फोटो—काली-काली आंखें, पैने-पैने सींग. उस पोथी के अक्षर एक-एक घर्राती चक्की...

पहली को लगता है—मैंने गो-हत्या नहीं की है. मैंने खुद अपने गले पर छुरी चलायी है...

पहली के अचल-स्तब्ध मन में और कोई हलचल नहीं. चारों ओर से कोई रौंदता-रौंदता लगता है. चारों ओर उजाड़ लग रहा है...

बेंत के झुरमुटे से ढीठ कौआ कांव-कांव करता जा रहा है. वन-जंगल, डूंगर की चोटी—सब उसे मानो जिंदा आदमी की तरह बार-बार कानों में पुकार रहे हैं—आ-आ-आ...

पहली ने देखा, निचले गांव वाले रामा गौड़ (गाय चराने वाले) की लाश. उसके मरे चेहरे पर ताजा हंसी दिख रही थी उसे.

और दूर पर सूं-सां करता कुछ चर रहा है!

पहली डरकर चीखता-सा बेहोश! एक नुकीले पत्थर पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा.

अगले दिन पतर बीननेवाली छोकरियों ने गांव में जाकर बताया, ''पहली हांफ-हाफ कर थूक में लथपथ पड़ा है! अभी या कुछ देर में बस...''

बकरी चरानेवाला नोका बस्ती में जाकर कहने लगा, ''पहली को घेरे दो जमदूत बैठे हैं. उनका मुंह एकदम बैल की तरह है! पछाड़ खायी...वे लौट गये!''

गांव के दो-चार गावदी जवान पहुंचे वहां. जाकर देखा—एक पत्थर के बीच सिर छुपाये पड़ा है. खोपड़ी का एक हिस्सा उड़ गया है—दही वह गया.

खबर पाकर गेली की मां उसी रात लौटी. अपने घरवाले को शुद्ध करने, गोहत्या छुड़ाने की खातिर पीहर से कुछ रुपये-पैसे लेकर आयी थी. उसी रात पहली के पास लिवा जाने के लिए कुछ लोगों से उसने निहोरे किये. मगर इतने बड़े गांव में कोई भी आधी रात गए डूंगर की ओर जाने को राजी नहीं हुआ.

भोर तड़के गेली की मां उधर चली. बावरानी छोकरियों से खबर मिली—पहली मर चुका है. मुंह झाग से भरा है. आंखें धंस गई हैं...कान के पास खोपड़ी का टुकड़ा किरच-किरच हो गया है.

उसकी आंख के आंसू मर गए. बस टिमटिमाती उधर देखती रही वह बिना शुद्ध किया हुआ मुरदार!

कैसे कोई उठाएगा? गांव में तरक-बितरक चला जोरों से.

गेली की मां ने अपने घर वाले को शुद्ध करने के लिए पीहर से लाये रुपये पल्लू से निकालकर गांव के मुखियों के हाथ में बढ़ा दिए—लंबी पसरकर सब के पांवों में पड़ गई.

बाम्हन गुसाईंजी महाराज और जात-बिरादरी के लोग सब खुश होकर पहली की लाश को ढेर-की-ढेर आशीष दे रहे हैं. □

सच्चिदानंद राउतराय की कविताएं

निर्वाचन

दीवारों से मालूम होता है—
आया है वह महान दिन.
जब वर्णाशुद्धि पूर्ण
पोस्टरों और इश्तहारों से पट जाएंगे गली-मोहल्ले.
वाक्यों के तूफान से गूंजते हैं जब
शहर, कस्बे, खेत, खलिहान, मठ, खदान,
खाई और बखरे
पार्क, सिनेमा, और श्मशान.
जब अनेक चिह्न, अनेक नामावली
रामानंदी से घी का दीपक, चर्खा और दुधारू—
गाय, सूर्य, तारे, छाता, कलम, लालटेन.
फूस का घर, हंसुआ और हथौड़ी, तराजू, हल,
धान की बाली, मुचुकंद फूल
सब घोषणा करते हैं आ गए वे दिन.
अहिंसा और सत्य के त्यौहार.
जब समाधि से गांधीजी की हड्डियां खोदी जाकर
फिर एक बार साफ की जाएंगी
और उनका दर्शन तथा तीन बंदर
(एक जो आंखें मूंदे रहता है, एक कान, और एक
अधरों को दोनों हथेलियों से दबाए रहता है.)
आया है वह दिन आज भी.
जब प्रेत आते हैं स्वर्ग से
ट्रकों में भरकर.
(मार्क्स-लेनिन, गांधी, हो-ची-मिन्ह, चे जैसे)
स्कूली बच्चों और ठेकेदारों के स्वरों में.
जब वायदे बन जाते हैं ताड़ के पेड़.
जो था कल 'देखूंगा', 'पूछूंगा' या आनाकानी
आज वह है, 'जरूर होगा'.
बात नहीं मानती वोल्गा
तोड़ सारे बायरे और वर्ग छूना चाहती है आसमान.
आज वही मौसम, आज वही दिन है
जब भिखारी से भीख मांगी जाती है.
जब पोंछने को गरीब का मुंह
इस्त्री किया रुमाल दौड़ता है.
और सभी हिंजड़ों के मुंह से
बिना व्यय के जय-जयकार व हर्षध्वनि करवाई जाती है.
शब्द आज पल्लवित हैं, बाढ़ी होते हैं अर्थ,
वाक्य बांधते हैं पगड़ियां, खोंस उसमें कुछ यमक.
अर्द्धविराम, विराम ने इकट्ठी छुट्टी ली है एक माह की,
जिसे देख-सुन
असहाय वानर तीनों
एक वह जिसने आंखें बंद की थी, एक ने कान,
होंठ एक और ने,
तीनों एक साथ मिलकर सबके सामने
नंगई नाच शुरू कर देते हैं.
आया है वह दिन
छह महीने के बच्चे जैसा एकाकी असमय. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोणार्क

तुमने देखा तो है शिलाओं पर
उसकी रम्य कला का रूप,
मैंने देखा है उसमें करोड़ों कंकालों के
भग्न हृदय का स्तूप.

तुमने देखा है खिली है किस तरह
कला के जादू से,
रात्रि की काली यवनिका पर
स्वर्ण उषा की छवि.

देखा है, कैसे खिली है कविता
पत्थरों के मूक बदन पर,
तंद्रामग्न अलसाये सपनों में
डूबी है अति स्नेह से.

तुमने चखा है रस का झरना
चारु मंदिर तले
अंजुलि भर-भर पिया है पीयूष
मिटाकर तृष्णा की ज्वाला.
मैं लौटा हूं हाय दीन अरसिक
उसी के सिंह द्वार से,
पुंजित व्यथा के अवसाद से
बोझिल है यह हृदय
मजदूरों की नजरों से
देखा है मैंने उस मंदिर का रूप
व्यथा की आरती ले.
देखे हैं मैंने उस शिला की कब्र में
कई कारीगरों के सीने,
तिल-तिलकर, हाय, पाई है समाधि,
सह यातनाओं की ज्वाला.
मजदूरों ने पशुओं की तरह
ढोया है शिलाओं का बोझ,
झुकाए अपना मेरुदंड.
है कोई हिसाब उसका?
कई हथौड़ें, छेनियां, मुद्गर,
राजा का हुक्म मान,
अपने काले पत्थर जैसे शरीर से
बहाया खून पानी-सा.

न जाने कितने बढ़ईयों, कारीगरों, लुहारों का
खून घुल-मिल गया,
सागर का खारा पानी उसे
नमक की तरह निगल गया.

देखा दुनिया ने विशाल मंदिर!
राजा का जय-जयकार किया.
पंडित तो कहता है, इसमें
लिखा है देश का परिचय.

कोई रसिक कहता है, सुंदरी नटी का
लीलायित नीवी बंध,
स्वतः श्लथ उसकी कंचुकी के नीचे
पद्म कली का छंद.

कोई देखता है नाग कन्या के गले में
रतिच्युत बनमाला,
यक्ष-वधू के जूड़े में
शत रात्रि की ज्वाला
अनुभव करता है कोई निरंतर,

क्या किसी ने जानना चाहा
इतिहास आदमी का?
पूछेगा कौन, कितना जीवन
उसके लिए हुआ है क्षय,
कितने बसूले, आरियां, कुल्हाड़ियां
हुए हैं पराजित.

कितने क्षुधातुर लोगों ने खाई है
मिट्टी उन दिनों भूख से
रम्य कला के दरबार में उसकी
कोई नहीं परिपाटी!
नहीं है उसकी चरण लिपि.
है शिल्प वहां, नहीं है कलाकार या शिल्पी,
धन्य है हमारा शिल्प चातुर्य.
धन्य है ललित कला.

राजा का सुनाम प्रचार करने को
कोटि शरीरों में बिंधती सलाखें
अमर होगा कालांतर में
चूंकि एक व्यक्ति का नाम
लाखों अनाम जीवनों को लेकर
बनाया गया है श्मशान.
यह भावुक जाति
अब भी देख उनकी कब्र
गर्व से तानती है अपना सीना.
कोटि-कोटि बिशु महाराना
और शिबेई सामंत अनेक
इस मंदिर के नीचे सोए हैं,
कला की फसल के खेत में.
गढ़ने को यह मंदिर
किया श्रमिकों ने रक्त-दान,
कृषकों ने दिए अपने कनक शस्य
राजा के कोष में बेहिसाब!
हालांकि कला के दरबार में नहीं
उनकी व्यथा का स्थान—
हंसी, या रुलाई, या
फसल कटाई का कोई गीत.
तोरण-तोरण में नंदन श्री,
यक्ष पुरी की लताएं,
कहां है धरती का शस्य?
धान की बिजली छटा?

आभिजात्य के आदेश से वहां
सामंती रुचि के सांचे में,
नग्न नटी के कोमल चरण
चपल ताल में थिरकते हैं.
हैं वहां सिर्फ फूलों की फसलें
सपनों की नीली लहरें,
हीरे का सूर्य भिनसारे ही
धरती का प्रणाम लेते हुए
कह जाता है उस के कानों में:
जीवन के सारे आघात, अपमान
गाये नहीं कभी किसी ने गीतों में.
रम्य कला की लीला!

कुछ भी तो नहीं कहा मनुष्य के बारे में,
जो था कहना. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'देखो मैंने क्या पाया...''

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ालिस वर्ष पहले अपने बचपन मे, माता-पिता के साथ सागर तट पर छुट्टियाँ बिताते हुये रणवीर खोसला को
-बिरंगी सीपी ने मोह लिया था। मोह का वह सिलसिला अब तक जारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि सुखद है

आज रणवीर खोसला भारतीय नौसेना के भूतपूर्व कमाण्डर हैं और उन्हें इस बात का गर्व है कि वे नेत्र-दान का संकल्प कर चुके हैं।

"मैंने उसे रेत से खोद निकाला था और तब मैं यह नहीं जानता था कि मैं अपनी समूची जिन्दगी के लिये प्रेरणा बटोर रहा हूं। उस बहुरंगी, धारीदार सागर सीपी ने मेरा मन कौतूहल से भर दिया... मैं खड़ा देखता रहा ऊंची लहरें जो आहिस्ता फिल्म की तरह चलती हुई तट की चट्टानों से टकराती और फिर धवल फुहारों के बादल छा जाते।

बाद में महाविद्यालय में पढ़ने पर यह जाना कि वह सीपी तो नॉटिलस नाम के एक जीव की होती है जो लगभग 20 करोड़ वर्षों से अपरिवर्तित है और जो संभवतः किसी अदृश्य प्रेरणा से वर्षों पहले उस सागर तट पर मेरे पाँवों तक बह कर आयी थी।

बाद के वर्षों में महासागरों के वक्ष पर बिताये जहाजी जीवन के दौरान सागर से मेरा संबंध और भी अन्तरंग होता चला गया — उसमें रहने वाले जीवन के असंख्य रूप, सौन्दर्य से भरे सूर्योदय, चांदनी रात में प्रेत-सरीखे सुदूर हिम-खण्ड। और अक्सर अपने जहाज के डैक पर चहल कदमी करते हुये, मेरा मन एक निस्तब्धता और एक आशा से भर गया। मेरी आँखों के सामने गुजरते हुये सौन्दर्य से प्रेरित निस्तब्धता और आशा उनके लिये जो देख नहीं सकते — दृष्टिहीन।

मैं नहीं जानता कि यह विचार कब से मेरे मस्तिष्क में था, पर कुछ वर्ष पहले भूमध्य सागर पर ढलती हुई एक शाम को वह पूरी तरह प्रज्वलित हो उठा।

मैंने तुरंत अपनी पत्नी को पत्र लिखा जिसमें जीवनोपरांत अपने नेत्रों को दान करने की इच्छा प्रकट की — कमाण्डर रणवीर खोसला कहते हैं।

परिवार के लिये गर्व का विषय :

उनका कहना है : घर लौटने पर मुझे बहुत खुशी हुई यह जानकर कि नेत्र-दान के विषय में पत्नी का उत्साह मेरे समान है। इसलिये यह स्वाभाविक था कि जब हमने परिवार का संकल्प पत्र भरा तो हमारे दोनों बेटे भी हमारे साथ हो लिये।

वह तो कार्निया-प्रत्यारोपण के विषय में और भी जानकारी चाहते थे ताकि वे अपने मित्रों को बता सकें और उन्हें भी नेत्र-दान का संकल्प करने के लिये राजी करें।

मैंने उन्हें बताया कि कार्निया नेत्र की सबसे बाहरी पारदर्शी परत है। प्रत्यारोपण द्वारा किसी दृष्टिहीन व्यक्ति के नेत्र खराब कार्निया के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दान किये हुए स्वस्थ कार्निया को लगा दिया जाता है।

हमारे बेटों ने हमसे वादा किया कि जब हमारे नेत्रदान का समय आयेगा तो वे हमारी कामना पूरी करने के लिये निकटतम नेत्र बैंक को फोन पर सूचित करके गर्व का अनुभव करेंगें।

नेत्र-दान का संकल्प कीजिये :

दृष्टि, अन्य सभी इन्द्रियों से बढ़कर, अत्यन्त ज्ञानवर्धक अनुभव है।

और कमाण्डर खोसला की तरह, वह चमत्कार कर दिखाने का सामर्थ्य आपमें है। नेत्र-दान का संकल्प कीजिये। इसके लिए केवल आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है।

और एक दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए किसी दिन देखने की सामर्थ्य पा लेना, एक चमत्कार से कम नहीं है।

नेत्र-दान के विषय में कुछ आधारभूत तथ्य :

1. किसी भी उम्र का, लगभग कोई भी व्यक्ति नेत्र-दान कर सकता है, यदि नेत्र-दाता चश्मा पहनता हो, उसे मोतियाबिन्द हो या आँखों का सफल ऑपरेशन हो चुका हो, तो भी नेत्र-दान सम्भव है।
2. मृत्यु के उपरान्त 6 घन्टों के अन्दर-अन्दर आँखों को निकाल लेना चाहिये। अतः निकटतम नेत्र-बैंक को तुरन्त सूचित करना आवश्यक है।
3. नेत्रों को निकालने में केवल 10-15 मिनिट लगते हैं और उससे कोई निशान या विकृति उत्पन्न नहीं होती।
4. आपके नेत्र-दान से दो दृष्टिहीन व्यक्तियों को दृष्टि मिलती है, एक दृष्टिहीन व्यक्ति को एक नेत्र प्रदान किया जाता है।
5. कानून में यह प्रावधान है कि आप किसी मृत सम्बन्धी के नेत्र दान कर सकते हैं — यदि उसने कभी नेत्र-दान के विरुद्ध अपना मत व्यक्त न किया हो तो।

कृपया अपने परिवार के साथ इस विषय पर चर्चा करें। नीचे दिया गया प्रपत्र भरें। और टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को डाक द्वारा भेज दें। हम आपको एक नेत्र-दाता के रूप में पंजीयन कर लेंगे और आपको नेत्र-दाता कार्ड और प्रमाण पत्र भेजेंगे जिसमें आपके निकटतम नेत्र-बैंक का नाम, पता व टेलीफोन नम्बर, अंकित होगा।

राष्ट्र को नेत्र-दान करने की घोषणा

मैं/हम, अधोहस्ताक्षरीगण, एतद्द्वारा संयुक्त रूप से/पृथक-पृथक राष्ट्र को अपने नेत्र दान करने का संकल्प लेता हूँ/लेते हैं तथा एक दूसरे पर दायित्व डालते हैं कि हममें से किसी की भी मृत्युपरांत नेत्र-चिकित्सक को बुला कर, प्रत्यारोपण के उद्देश्य से हमारे नेत्र निकाल कर हमारी इच्छा पूर्ण की जाए।

1. श्री/श्रीमति ________ आयु ___ हस्ताक्षर ________
2. श्री/श्रीमति ________ आयु ___ हस्ताक्षर ________
3. श्री/श्रीमति ________ आयु ___ हस्ताक्षर ________

पता ________ पिनकोड ________ राज्य ________ तिथि ________

साक्षी की आवश्यकता है जब केवल एक या परिवार के 3 से कम सदस्य नेत्रदाता हों.

1. श्री/श्रीमति ________ 2. श्री/श्रीमति ________
रिश्ता ________ रिश्ता ________
हस्ताक्षर ________ हस्ताक्षर ________
पता ________ पता ________

दृष्टि — टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन
टाइम्स ऑफ इंडिया, 10, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002.

ओ.बी.एम. (टी.ई.आर.एफ. 2)

दृष्टि के आनन्द को बांटिये. नेत्र-दान का संकल्प कीजिये.

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को दी जाने वाली वित्तीय सहायता आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80(जी) के अंतर्गत कर रहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंकू

पन्नालाल पटेल

पन्नालाल पटेल

जन्म : 7 मई 1912, गुजरात-राजस्थान सीमा पर स्थित मांडली गांव में. प्रारंभिक जीवन अस्तव्यस्त. विधिवत शिक्षा केवल आठवीं कक्षा तक. स्कूल छोड़ने के बाद कुछ वर्षों तक एक साधु की संगति. गांव-गांव भटकते हुये जीवन का भरपूर अनुभव. अपने सहपाठी उमाशंकर जोशी से आकस्मिक भेंट और उनकी प्रेरणा से लेखन में प्रवृत.

साहित्यिक जीवन का प्रारंभ कविताओं से. शीघ्र ही कहानियों की ओर झुकाव. आरंभिक असफलताओं के उपरांत कहानी 'शेठनी शारदा' एक उच्चस्तरीय साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित होकर चर्चित. 1940 में लघु-उपन्यास 'वलामणा' का प्रकाशन. 1941 में बहुप्रशंसित उपन्यास 'मलेला जीव' प्रकाशित.

1947 में प्रकाशित उपन्यास 'मानवीनी भवाई' गुजराती साहित्य की सर्वाधिक उल्लेखनीय कृतियों में परिगणित. इसी श्रृंखला में दो और उपन्यास– 'भांग्यानां भेरू' तथा 'घम्मर वलोणु' भी.

गत वर्षों में पौराणिक आख्यानों पर आधारित अनेक उपन्यास-श्रृंखलाएं. कुछ समय पूर्व प्रकाशित पौराणिक उपन्यास 'पार्थने कहो चढ़ावे बाण' (पांच खंड) विशेष उल्लेखनीय.

अब तक लगभग 60 उपन्यास, 28 कहानी-संग्रह, 2 नाटक, आत्मकथा एवं कई बाल-साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित.

शैली के अनूठे प्रयोग और जीवन की गहन अनुभूतियों के चित्रण के लिये विशेष रूप से प्रख्यात.

वर्ष 1985 के ज्ञानपीठ पुरस्कार के विजेता.

"न करे नारायण पर यदि मैं मर जाऊं तो तू अपना जीवन मत बिगाड़ना...किसी अच्छे आदमी का घर ढूंढ़ लेना..." जीवन के किनारे खड़े खुमा ने अंदर धंसी आंखों से खाट के पास बैठी पत्नी की ओर देखने की कोशिश करते हुए कहा. वह कोहनी के सहारे ज़रा उठा. कंकू की गोद में खेल रहे चार-पांच मास के बालक को देखने का प्रयत्न करने लगा. "और हीरिया...वह तो तेरी गोद में ही है...मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं..." दोनों स्वजनों पर नजर डालते हुए खुमा की आत्मा पच्चीस वर्ष पहले जिस तरह आयी थी, कुछ वैसे ही चली गयी.

कंकू का रुदन राह से जानेवाले को रुला दे, ऐसा था. ज्वान-ज्वान खुमा की मौत दुश्मन को भी रुला देती. सभी ने सांत्वना देकर कंकू की आंखों को और सुजाया.

घर का सब कुछ लगाकर और कर्जा लेकर कंकू ने खुमा की तेरहवीं की. सब ओर कंकू का नाम हो गया. उसके बाद तो वह रोया ही करती. कुएं का पानी सूख सकता था परंतु कंकू के आंसू नहीं सूख सकते. लेकिन अब उसे घर की दरिद्रता आने वाले संकट का आभास देने लगी. बड़े-बूढ़े कहते भी, "इस तरह रो-रोकर नूर खो देगी, तो बच्चा क्या पियेगा?" परंतु बच्चे की खातिर कंकू ने इस दुःख के पहाड़ को अपने छोटे किंतु बलवान दिल में दबा लिया.

कंकू और खुमा की जोड़ी पूरे गांव में बेजोड़ थी. जब कंकू ससुराल आयी तब खुमा पर कर्ज का पहाड़ था. दोनों ने तनतोड़ मेहनत करके काफी कर्ज चुकता कर दिया था, तभी बुड्ढे-बुढ़िया के क्रिया-कर्म के खर्च से उतना ही चढ़ गया. परंतु जवान खुमा की मेहनत और कंकू की होशियारी देखकर मलकचंद सेठ और उधार देने को तैयार था. वही खुमा दगा दे गया. मलकचंद का गणित उल्टा होता जान पड़ा.

सगे-संबंधियों ने कंकू को किसी इज्जतदार का घर बसाने का सुझाव दिया, परंतु कंकू नहीं मानी. विधुरों को तो जाने दो, एक पत्नी होते हुए भी अनेक युवकों ने उसे सोने से लादने और घर की रानी बनाने के प्रलोभन दिये, परंतु कंकू न मानी तो न ही मानी. वह इतना ही कहती, "भगवान ने राजकुंवर जैसा बेटा दिया है, फिर किसी की दया की रोटी खाने की क्या जरूरत?" और बच्चे का चुंबन लेकर कह उठती, "कल बड़ा होगा और तुम्हारे आंगे से खेलकर घर आयेगा." आने वाले अपना-सा मुंह लेकर वापस चले जाते.

कोई उसके हाथ का खाना खाने तो कोई मीठी नजर पाने, कोई दया से तो कोई सहानुभूति से उसके खेतों को बो देते और कंकू बच्चे की तरह खेतों की देखभाल करके अपने दिल काटती.

खुमा के साथ जो काम पलक झपकते हो जाता था, वह अब उसे मुश्किल लगता. गोड़ते-गोड़ते कई बार उसकी आंखें भीग जातीं और वह घास की जगह धान के पौधे को उखाड़ डालती. जब कंकू के लिए खुमा का दो-चार दिन को बाहर जाना असहच हो उठता था, तो यह जीवन-भर की तन्हाई कैसे सहन होती? गांव के युवकों में वह रंगीला जवान गिना जाता. उसके फेंटे की नजाकत देख युवतियां स्वयं को कमनसीब गिनतीं और जवान ईर्ष्या करते. इस पर उसे कंकू जैसी छबीली सहचरी मिली.

कंकू खुमा को भी मात दे, ऐसी थी. उसकी जवानी पर गांव के युवक पागल थे. अधेड़ जवान होने की कोशिश करते जबकि वृद्ध अपनी जवानी याद करते. खुमा को अपने फेंटे के ऊंचे छोर की चिंता नहीं हुई थी, परंतु उसने कभी कंकू की चोली के रेशमी गोटों का रंग फीका नहीं होने दिया था. पागल खुमा को कंकू में रोज कुछ-न-कुछ नया दिखायी देता. कभी उसके गले में लहराते मोतियों के हार को देखता रहता. किसी दिन पीठ पर झूल रहे फुंदने के मोती गिनता तो कभी पांव के कड़ों से खेलता रहता. खुमा के इस पागलपन ने कंकू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को और भी पागल कर दिया था. पागलपन भरे उन वर्षों के प्रसंगों को याद करके कंकू आज सब कुछ भूलकर हंस पड़ती तो कभी फूट-फूटकर रो पड़ती. जिस प्रकार भरी दुपहरी में रेगिस्तान में चलने वाला पथिक दूरी पर छाया देखकर जल्दी-जल्दी पैर उठाने लगता है, उसी प्रकार अपने बेटे की ओर देखकर कंकू में हिम्मत आ जाती. 'कल बड़ा होगा और ये दुख के दिन सुख में बदल जायेंगे.' कंकू सोचती.

सेठ मलकचंद गांव में आते तो कंकू की खबर लेना नहीं भूलते. उसे हिम्मत बंधाते हुए कहते, "धन्य है कंकू, धन्य हैं तेरे माता-पिता! तूने ससुराल और पीहर दोनों की इज्जत बढ़ायी. जिस जाति में विधवा स्त्री दूसरा घर कर लेती है, वहां कौन बनिया-ब्राह्मणों की तरह विधवा जीवन स्वीकार करता है. जो चाहिए सो ले जाना, कल हीरिया बड़ा हो जायेगा. सुख-दुःख का चक्कर तो चलता ही रहता है."

"मलकचंद काका, तुम तो देवता आदमी हो, नहीं तो इतने कर्ज के बाद कौन औरत-जात को और कर्ज देता है?" कंकू रुंधे गले से बोली.

इतने दुःखों में भी कंकू पहले ही तरह हंसती परंतु पहले का हास्य रोते को हंसाता और अब हंसते हुए को रुला देता. बाघ जैसे पति के जीवित रहते जो जवान मजाक करने की हिम्मत रखते थे, वे आज ऊंची आंख भी नहीं कर पाते. हर कोई डरता—कंकू से नहीं, कंकू की त्यागमूर्ति से.

बरसाती झरने की तरह बहनेवाला समय कंकू के लिए तो शंकर की जटाधारा के समान था. परंतु वह भी उसने धैर्य और हिम्मत से पूरा किया. दस वर्ष गुजार दिये.

एक बार कंकू सेठ के यहां पैसा लेने गयी. उन्हें खुश देखकर बात निकली, "मलकचंद काका! बैलों के लिए दो तो अगले वर्ष हल बसाना है?"

"तो मना किसने किया है? तुझसे ज्यादा तो मुझे जल्दी है कि मेरे ग्राहक का घर सब लोगों के बराबर आ जाये." और हंसने का प्रयत्न करते हुए जोड़ा, "आज बसाना हो तो अभी दे दूं?" कुछ देने का अभिनय करते हुए फट्ठे से हवा खाने लगे.

कंकू उपकार जतानेवाली नजरों से देखती हुई बोल पड़ी, "तुम्हारी तो पूरी मेहरबानी रही है."

"पर तुम लोगों को इसकी कहां फिकर है!" सेठ मुस्कराते हुए कंकू की ओर ताकने लगे. कंकू की नजर मिलते ही दूसरी ओर देखने लगे. फट्ठे से हवा खाने लगे परंतु कान कंकू की ओर ही लगे रहे.

"तुम्हारी फिकर नहीं करें, ऐसा होता होगा, मलकचंद काका! तुमने तो बुरे समय में हमारी लाज रखी है." कंकू बोली.

"अब लाज-वाज तो ठीक है. सब मीठे के लालच में जूठा खाते हैं." कंकू के द्वारा बार-बार 'लाज' शब्द का प्रयोग सेठ को अच्छा नहीं लगा.

कंकू को सेठ छोटे होते हुए महसूस हुए. वह बोली, "तुम कुछ भी कहो परंतु मैं तुम्हारा उपकार भला भूल सकती हूं?"

सेठ कुछ बोलने वाले ही थे कि सामने की दूकान से कपड़े की पोटरी बांधते हुए एक आदमी ने आवाज दी, "कंकू बहन, गांव चल रही हो?"

कंकू ने हकार में जवाब देते हुए पोटरी उठायी और, "चलती हूं, मलकचंद काका!" कहकर सीढ़ियां उतरने लगी. सेठ कुछ बड़बड़ाये परंतु कंकू ने उधर ध्यान नहीं दिया. रास्ते में विचार करते हुए कंकू को आज सेठ का व्यवहार अजीब लगा. 'नहीं-नहीं, ऐसा आदमी तो नहीं है...हो तो भी मुझे क्या है?' इस तरह सेठ को भूलने की कोशिश में उन्हीं विचारों में उलझी घर आ गयी.

सेठ की उम्र तो चालीस की थी, परंतु वे दीखते पैंतालीस के थे. तोंद के अलावा स्वभाव भी वृद्धत्व की ओर जा रहा था. उनकी उम्र के ग्राहक उन्हें 'काका' ही कहते. गांव की गरीब बस्ती को चूस-चूसकर दस-दस हजार खर्च करके उन्होंने दो बार शादी की. परंतु पहली दो वर्ष और दूसरी चार वर्ष बाद मलकचंद को अकेला छोड़ गयीं. मानो अपना कर्ज लेने आयी हो. दूसरी ओर जाति में बात फैल गयी कि मलकचंद पत्नीखोर है. ऐसा फैल जाने पर बीस हज़ार खर्च करने पर भी कौन अपनी लड़की देता? मलकचंद ने भी यह विचार मन से निकाल दिया. उनकी पैंसठ वर्ष की मां भी बहू की आशा छोड़कर काम करते हुए मौत की प्रतीक्षा करने लगी.

दूसरे वर्ष कंकू ने हल बसा लिया. हल चलाने के सिवा वह सब काम बड़े उत्साह से करती. दो वर्ष में तो उसने दस वर्ष के वैधव्य काल का कर्ज चुकता कर दिया. सेठ दूसरों को कंकू का उदाहरण देते, "देखो, कंकू ने दो वर्ष में एक सौ बीस रुपये चुका दिये. तुम तो हुक्का गुड़गुड़ाते रहो, तुम से कुछ नहीं हो सकता."

कंकू को लड़के के हाथ पीले करने की लगन लग गयी. एक दिन तड़के ही सेठ के गांव पहुंच गयी और यह बात कही.

किसानों के जीवन-व्यवहार के संचालक साहूकार नहीं होते तो किसान वर्ग की जाने क्या दशा होती? सेठ मलकचंद खुश हुआ, "वाह! फिर तो कंकू खाट पर बैठकर बहू पर राज चलायेगी." सेठ हंसे परंतु इस हास्य में मिठास की जगह कसैलापन था. उन्हें अपने जीनव का कसैलापन याद आ गया.

"तुम्हारी कृपा हो तभी ऐसा हो सकता है." आशा भरी नजरों में कंकू ताकती रही.

"कितने देने होंगे?" अपने विचारों में खोये हुए सेठ ने पूछने की खातिर पूछ लिया.

"तुम्हें क्या पता नहीं है! कल सुबह तो गला डामोर के लड़के का विवाह करवाया है."

"फिर भी?" सेठ ने पूछा और गहरी सांस लेकर कंकू की ओर ताकने लगे.

"एक मन गुड़ और एक सौ बीस नकद. धान तो घर निकल आयेगा, घी उधार मिल जायेगा, ...पर कपड़े..."

सेठ बीच में बोल पड़े, "कोई बात नहीं, एक मन गुड़ तीस-चालीस के कपड़े और एक सौ बीस नकद, बस इतना ही तो? और घी के लिए दूसरी जगह जाने की क्या जरूरत है? ...पर एक बार तू हीरिया की सगाई तो कर. ऐसा हो सकता है कि कंकू के लड़के की सगाई हो और मैं उधार नहीं दूं?" कहकर जैसे पहली बार देख रहे हों वैसे कंकू के मुंह की ओर ताकने लगे और कुछ देर बाद थोड़े नीचे नजरें गड़ा दीं.

नजरें कहां लगी हैं यह जानकर कंकू विह्वल हो गयी और साड़ी के पल्लू को ठीक कर लिया. सेठ शरमा गये. तकिये पर ढला हुआ शरीर सीधा किया और मुंह से कृष्ण-कृष्ण बोलने लगे. "अच्छा, ले जाना," कहकर सेठ खड़े हो गये. इतने में दूसरा ग्राहक आया और उन्हें फिर से बैठना पड़ा.

कंकू ने अपनी पोटरी उठायी परंतु उस ग्राहक ने थोड़ा रुककर साथ ही निकलने को कहा. कंकू रुकी तो सही पर दूकान के बाहर दालान पर बैठ गयी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घंटे भर में तो उस आदमी की खरीदी पूरी हो पायी. कंकू खड़ी हुई तो सेठ कहे बिना नहीं रह सके, "कंकू, खाने का समय हो गया है, खाकर ही जा."

कंकू ने मन का क्षोभ छुपाकर कहा, "नहीं, मलकचंद काका! पास तक का साथ मिला है, दोपहर तक तो घर भी पहुंच जाऊंगी.

"घर जाकर तो खाओगी ही परंतु यह घर लेकर क्यों बैठे हैं?" जवानी के किनारे खड़े उस आदमी ने कहा और सेठ की ओर देखकर बोला, "वह हमारे यहां खा लेगी, गांव से निकलेगी तो कहीं भूखी जाने देंगे?" और अपना सामान उठाकर चल दिया.

सेठ चौखट पकड़कर टोले में से अलग दीखती कंकू को ताकते रहे. कंकू मुड़ गयी और सेठ की निराधार नजरें सामने की दीवार से जा टकरायीं. एकाएक उन्हें होश आया और दूकान की ओर मुड़कर कृष्ण-कृष्ण बोलने लगे.

रास्ते भर कंकू भी अस्वस्थ रही. साथ वाले सेठ की प्रशंसा किये जा रहे थे, "कंकू बाई! चाहे कुछ भी हो परंतु मलकचंद काका ने तुम्हारी बड़ी लाज रखी है."

दूसरा बोलने लगा, "हां! ऐसे समय में तो खास सगे भी उधार नहीं देते." वह अपने सगों के कड़वे अनुभव का उदाहरण दे, उससे पहले तीसरे ने कहा, "अरे भाई! मलकचंद तो देवता आदमी है. भगवान के भरोसे काम करता है." फिर वह बूढ़ा इन पचास वर्षों में बदले अनके साहूकारों के उदाहरण देने लगा, "वह हरगोवन! अरे उसका ब्याज तो राजाजी के घोड़े से भी तेज़ चलता है."

इन बातों में कंकू को कोई रस नहीं पड़ा, उल्टे शंका हुई कि उसके आगे सेठ की प्रशंसा करने का कहीं दूसरा अर्थ तो नहीं. उसका मन सेठ के व्यवहार का विश्लेषण करने लगा. 'सेठ वैसे लुच्चा लगता है...नहीं-नहीं, उसने मेरा क्या बिगाड़ा है? उल्टा बिना देखे उधार दिये जा रहा है...नहीं तो उसे क्या लाज? लड़का कुंआरा है तो मेरा है, उसका तो नहीं है.' कंकू ने एक गहरी सांस ली. बेचारे ने दो बार शादी की तो भी रोटी का दुःख वैसा का वैसा है. उस पर भी बनिये की जाति! और दुःख सहन हो सकते हैं परंतु रोटी का नहीं. कहीं उसकी तरह अपनी जाति में भी कन्या का यह प्रश्न रहता तो हम जैसों के लड़कों को कौन पूछता! इस तरह के विचार करती हुई कंकू खाने के लिए उस गांव में न रुककर सीधे अपने घर आ गयी.

कंकू की अपनी जाति में बहुत इज्जत थी. विधवा थी, घर में कोई कमाने वाला नहीं था फिर भी सबके बराबर सभी कामों में हिस्सा देती. मेहमानों की सेवा-चाकरी में उसने जरा भी फेर नहीं पड़ने दिया था. इसलिए लड़के की सगाई में कोई मुश्किल नहीं पड़ी.

कंकू के आनंद का कोई ठिकाना नहीं था. हीरिया की बहू को अपने कड़े दूंगी. उसने दस-बारह वर्ष पहले साड़ी में बांधकर रखी माला, अंगूठी, चूड़ी वगैरह गहने और मोती-जड़ी चोली-फरिया बहू के लिए निकाल लिये थे. 'आयेगी तो चूल्हा उसे ही सौंपूंगी! बहुत दिन मजूरी की. अब तो ये दोनों अपना संभालें.' और आज से अठारह वर्ष पहले खुद बहू बनकर आयी थी, उस जगह हीरिया की बहू को बैठाकर उमंग में स्वयं को भूल गयी.

कंकू विवाह का इंतजाम करने सेठ के यहां जाने वाली थी, लेकिन उधार वसूल करने निकले सेठ तो उसके घर ही आ पहुंचे. उन्होंने कंकू से गहने और अन्य खर्चों के बारे में वैसे ही पूछा जैसे सभी ग्राहकों से पूछते थे, लेकिन इस भाव में थोड़ा अंतर था. वैसे गांव वाले सेठ की उदारता पर मुग्ध हो गये. किसी-किसी को इस स्त्री की व्यवहार-कुशलता पर ईर्ष्या आयी. कंकू एहसान के बोझ से दबती हुई बोली, "मलकचंद काका! मैं तो तुम्हारे दम पर ही लड़के को ब्याहने निकली हूं."

"सेठ का तो एक नया ग्राहक बनेगा. ऐसे समय पर मदद लेने के लिए ही तो बड़ा सेठ देखा जाता है. इनके बाप मेरी बारात में आये थे, वह तो मुझे अभी भी याद है. लड़के तो मलकचंद काका के ही हैं." गला डामोर ने ताने में आते हुए कहा.

"गलत क्यों बोलें, कंकू बहू की बुरी घड़ी में इन्होंने बहुत सहारा दिया है." कंकू के कुटुंब का एक बूढ़ा बोला.

"कंकू ने भी बराबर अदायगी की है. वायदा निभाया है. मुझसे मना कैसे हो!" सेठ ने भौंहें खींचते हुए कहा और कोई प्रशंसा में कुछ कहे इससे पहले घोड़ी पर सवार होकर बोले, "रुपये तो बारात के एक दिन पहले ले जाना और गुड़-घी जब आयेगी, तौल दूंगा." इतना कहकर मान की घोड़ी की लगाम खींच दी.

सेठ को विदा करने के लिए आंगन में खड़े लोग अभी भी सेठ की प्रशंसा कर रहे थे, जबकि कंकू को यह प्रशंसा सुनकर संकोच हो रहा था इसलिए वह घर में चली गयी.

दो दिन बाद कंकू गुड़, घी और कपड़ा लेने गयी. सेठ ने उसकी पसंद के कपड़े निकाल दिये और कंकू के लिए साड़ी तो उसके मना करने पर महंगी बांध दी. "गिनती किये बिना ले जा चुपचाप! तेज लग रही हो तो खरीदी के भाव दे देना और मेरी ओर से पहनेगी तो समझूंगा कि नकद पर आधे आने का ही ब्याज लिया था." सेठ के मुंह से यह आवेश में निकल गया था. वे एकदम उठ खड़े हुए. "गोदाम से गुड़ तोल दूं. दूकान की सांकल लगा आना." चाबी लेकर नीचे उतरते हुए बोले.

गोदाम का ताला खोलते हुए सेठ का हाथ कांप रहा था. बिच्छू के पूंछ की आकार की लंबी चाबी कंकू को देते हुए बोले, "ले खोल तो सही, और सामने कोने में से गुड़ की भेली तराजू में चढ़ाना; मैं तब तक पानी पी आऊं." कहकर जैसे भयस्थान से छूटे हों, इस तरह बगल के अपने घर की ओर चले.

कंकू अंधेरे गोदाम में घुसी. अंदर के कोने में गुड़ की भेलियों की थप्पी के पास गयी. दो भेलियों को नीचे तो गिराया लेकिन न तो अलग कर सकी और न उठाकर तराजू के पास ला सकी. कोशिश कर रही थी इतने में सेठ आ गये. "क्या कर रही है अब तक?"

"ये तो उखड़ती ही नहीं." कंकू ने खीझकर कहा.

"अरे तेरा खाया-पीया बेकार गया." कहकर सेठ ने कीले से दो बार से भेलियों को अलग कर दिया. सीधे खड़े होकर कंकू को विजयपूर्ण नज़र से देखा.

"मर्द की बात और है." कहकर कंकू भेली उठाने झुकी. थोड़ा प्रयत्न करने पर बोली, 'ये तो नहीं चढ़ता." सेठ ने मदद की. उनका हाथ कंकू के कंधे से छुआ. सेठ को पसीना आ गया. भेली मुश्किल से उतरवायी. सीधे दरवाजे की चौखट पर आ बैठे. "कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण!...शरीर अकड़ गया...." और धोती का सिरा पकड़कर मन की विवशता को दूर करने का प्रयत्न करने लगे.

कंकू ने दूसरे पलड़े में बांट चढ़ाये और दोनों पलड़े बराबर हो गये तो बोली, "देखो, मलकचंद काका!"

सेठ ने बांटों का दो-तीन बार जोड़ किया तब कहीं सही तौल लिख पाये. परंतु उसके बाद न तो उन्होंने बारदान को हटाया और न पैसे ही गिने. वे तो बांट उतारती कंकू को एकटक देखते रहे.

"कंकू! एक बात पूछूं?" कंकू ने सेठ की आंखों में देखा. उसे मना का मन हुआ परंतु मना करने की हिम्मत नहीं हुई, "क्या?" पूछकर वह भेली पर चिपके फूस को उखाड़ने लगी.

"तूने दूसरा घर क्यों नहीं किया!" सेठ की आवाज गंभीरता और भावुकता से भरी थी. बिजली के झपकारे की तरह कंकू को अपना सौभाग्यपूर्ण जीवन याद आया और चला गया. स्वस्थ होकर बोली, "हीरिया को छोड़ने का मन नहीं हुआ."

"अब तो वह अपना संभाल सकता है? मेरी मान तो तू दूसरा घर कर ले. अभी भी क्या बिगड़ गया है!" आखिरी वाक्य बोलते हुए सेठ की नज़र कंकू पर अटक गयी. मानो कहती हो : पंद्रह वर्ष पहले जैसी थी वैसी तू अभी भी है. इस जवानी को तू कैसे दबाती है!

"कहीं पागल तो नहीं हुए हो! अब कितने समय के लिए यह सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करू? लो उठवाओ, दिन तो छिपने को हुआ."

सेठ गहरी निःश्वास छोड़कर खड़े हुए. एक क्षण उसे देखते रहे. परंतु कंकू उनके मन के भाव जान गयी. नीचे झुककर भेली उठाते हुए कहा, "लो उठवाओ!" सेठ को झुकना पड़ा. भेली उठाकर बाहर निकलती कंकू की लचकती कमर ने तो उन्हें बेहाल कर दिया. दिल धड़कने लगा. कान सुर्ख हो गये और पूरा शरीर पसीने से तर हो गया. उन्होंने इस हालत में ही गोदाम का ताला लगाया.

कंकू गांव से आयी गाड़ी में गुड़ की भेली रखकर कपड़े की पोटरी लेने आयी. गद्दी पर बैठे सेठ का फीका पड़ा मुंह उससे छिपा नहीं रहा. परंतु उधर ध्यान न दे, पोटरी बगल में दबाकर बोली, "आज से पांचवें दिन रुपये लेने आऊंगी, मलकचंद काका!"

मलकचंद ने अपने असली लहजे में कहा, "अच्छा, चाहिए तब ले जाना." और आंख बंद कर पांच-दस मिनट पहले आये भयंकर तूफान से बचा लेने के लिए श्रीकृष्ण का बहुत उपकार मानने लगे.

सिर पर पोटरी रखे कंकू के मन में आज रास्ते में अनेक विचार आने लगे. पांच दिन बाद पेट का जाया लड़का पराया हो जायेगा. जितना बहू का होगा उतना मां का थोड़ा ही रहेगा! और रहेगा भी तो कितने समय? जाने क्यों आज पहली बार कंकू को अकेलेपन का एहसास हुआ! जैसे स्वयं अपना कर्तव्य पूरा करके निष्क्रिय हो गयी हो.

लड़के की शादी पर देवता का आह्वान किया गया. इस प्रसंग के आनंद के अतिरेक से या अन्य किसी कारण से कंकू और दिनों से आज ज्यादा गंभीर थी. दूल्हे के वेश में सजे हीरिया को वह निहारती रही—वे ब्याहने आये थे तब ऐसे ही लगते थे, जैसे एक को उठाकर दूसरे को बैठा दो. वह हीरिया के लाल साफे का छोर ठीक करने लगी. इस साफे में भी उसने खुमा की नजाकत को ही देखा.

गांव वालों ने भी आनंद में भाग लिया. जवान लड़कियों ने आंगन में बैठकर गाने गाये. वर्षों से सूना पड़ा आंगन चहल-पहल से भर गया. सभी को गुड़-धनिया दिये गये. गीत गाकर उठी स्त्रियों ने हर्षविभोर कंकू को स्वागत की याद दिलायी, "पागल कंकू! पानी का घड़ा भर ला, प्यासी मर रही हैं..." कंकू हाथ में पानी का घड़ा और आंखों में प्रेम की सरिता बहाती बाहर आयी. बराबर की स्त्रियों ने उसको फिर उलाहना दिया, "ज़रा धीरे से पैर रख...धीरे..."

बारात जाने से एक दिन पहले कंकू रुपये लेने गयी. सेठ ने दूसरे ग्राहकों को सुलझाया. कंकू के खाते में एक सौ बीस रुपये नकद साढ़े सात आढ़त के लिखकर कंकू का अंगूठा लिया. साक्षी की तरह दो ग्राहकों के अंगूठे लगवा लिये. और बही-खाता बंद करके बोले, "चल, घर से रुपये दूं."

घर में बूढ़ी मां बासनों को इकट्ठा करके रसोईघर साफ कर रही थी. कंकू ने बिना कहे ही बासन मांज दिये.

"कंकू, अस्सी रुपये से नहीं चलेगा? थोड़े कम पड़ते हैं." कमरे से बाहर आते हुए सेठ ने कहा.

"मलकचंद काका! मुझे कहां पांच-सात लड़के ब्याहने हैं? अकेला है उसमें भी कसर रखूं तो लोग क्या कहेंगे! वैसे तो इससे कम में चल जाये..."

मलकचंद बीच में ही बोलने लगे, "तुझे मना कौन करता है! यह तो पूछ रहा हूं. जरा हरगोवन के यहां होकर आता हूं." और बाहर निकल गये. बूढ़ी मां और कंकू बतियाने लगे. बूढ़ी ने अपने बेटे के दुःख से दुःखी होकर कहा, "देख, तेरा राजकुंवर की तरह लड़का तो है. मेरा पैसा किस काम का? तुझसे कुछ छिपा है. इस मलकचंद का दो बार तो ब्याह किया पर एक भी काम रास नहीं आया. ऐसी घड़ी देखने से तो भगवान मौत दे दे तो अच्छा है." बुढ़िया की अंदर धंसी आंखों के गड्ढे झलक आये.

कंकू को भी दुःख हुआ, "अरे अम्मा! यह सब कहां अपने हाथ की बात है! भगवान की मर्ज़ी के यहां किसकी चलती है! अब आंसू मत बहाओ. यह सब किस काम का है?"

गुजराती के मूर्धन्य कवि और ज्ञानपीठ के तीसरे पुरस्कार के सहविजेता उमाशंकर जोशी की कविता 'आत्मा के खंडहर' का सत्रहवां सोनेट

यथार्थ ही सुपथ्य एक

नहीं बिनती, न फरियाद, न फिक्र, नहीं बेकरारी,
या नहीं किसी प्रबल सत्व से शक्ति की याचना.
रम्य भ्रांति के असत्यचक्र जगाकर भटकानेवाली
गगनचुंबी आदर्श की पागल लगन भी नहीं.
जग से दुरित-लोप की अशक्य अभीप्सा भी नहीं,
सृष्टि के सकल तत्वविमर्श की उत्सुकता भी नहीं.
पग-पग बढ़ाती वजन काल की शृंखला,
सांस-सांस निकट आती यामिनी शाश्वती.
शांति के लिए, चित-सौख्य के लिए
मंथन में नहीं ढंढोलना जग को,
यदि उमड़ती हो चारों ओर उल्लास से अशांति.
असुख नहीं दमते मुझे जितने कि वितथ सौख्य चुभते,
नहीं रुचते सुख, जैसे रुचते हैं समझ में उतरे दुःख.
यथार्थ ही सुपथ्य एक, समझते रहना यथाशक्य.
अनजान रमना क्या! यातना के मोल भी समझना ही इष्ट.

इतने में मलकचंद अंदर आये. लगता था कि किसी असमंजस में हैं. बोले, "क्या सालग निकले हैं, जहां देखो वहां रुपयों की खेंच!"

कंकू उदास हो गयी, "मलकचंद काका! चाहे कुछ करो, मेरी लाज तुम्हारे हाथ में है. तुम्हारा उपकार नहीं भूलूंगी. तुम्हारे रुपये सोने के हैं." कंकू ने पैर से जमीन कुरेदते हुए कहा, "एक-एक पाई चुका दूंगी." उसे मलकचंद बहानेबाजी करते मालूम पड़े.

"घर में से निकाल दे, कहीं दूल्हे को कुंवारा रखा जाता है?" बूढ़ी मां बोली.

"कुछ-न-कुछ तो करना पड़ेगा. किसी दूसरे का हो तो और बात है यह तो कंकू का लाड़ला बेटा है." कहकर सेठ हंसे. "अच्छा चल, सब सामान हटाना पड़ेगा." कहते हुए मलकचंद दरवाजे के अंदर गये.

कमरे के अंदर कमरा और उसके अंदर भी एक कमरा था. दरवाजा बंद हो तो घुसने वाला दिन में भी दीवार से टकराये बिना न रहे. सेठ ने एक कंडी को इशारा किया, "इसमें सब सामान उतारने पड़ेंगे." कंकू दूसरी छोटी कंडी पर चढ़कर गागर-कलसा एक-एक करके सेठ को पकड़ाने लगी और उसका ढक्कन खोल दिया.

"बस रुक," कहकर सेठ कंकू वाली कंडी पर चढ़ गये. जैसे बगुला मछली को पकड़ लेता है उसी तरह अंधेरे में गेहूं के अंदर से एक पोटरी निकाली. परंतु नीचे उतरते समय सेठ लड़खड़ा गये. यदि कंकू के कंधे का सहारा न लिया होता तो दोनों नीचे गिर जाते. परंतु यह क्या हुआ? नीचे गिरते तो एक-दो जगह चोट लगती परंतु बिना गिरे ही पूरे बदन में आग कैसे लग गयी? कंकू भी तड़पने लगी. होश आते ही कंकू के कंधे से हाथ हटा लिया और नीचे उतरे. वह भी बेहोशी में नीचे उतरी.

खपरैल के बीच से आते प्रकाश में सेठ ने पोटरी खोली. सेठ की द्विधा देखकर मानो पोटरी के रुपये हंस पड़े हों, ऐसा उन्हें लगा. सेठ ने रुपये गिन-गिनकर कंकू के पल्लू में डाले. "ज़्यादा लेने हैं!" एक सौ गिनने के बाद पूछा.

सेठ की स्नेहभरी नजर और पूछने के ढंग ने कंकू को विह्वल कर दिया. तिरछी नजर से सेठ की ओर देखते बोलने को हुई तो कमबख्त वह कहावत होंठों पर आ गयी, "भार है तो कन्या की कमर पर ही...कर्ज तो मुझ पर ही चढ़ेगा, तुम्हें क्या..." उसका वाक्य अधूरा रह गया. दोनों अपने आपे में नहीं रहे. वर्षों पहले की मधुरजनी दिवास्वप्न के रूप में साकार हो गयी.

हीरिया की बारात चढ़ी परंतु कंकू को रत्तीभर भी खुशी नहीं थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग दूसरा ही अनुमान लगाते, "ऐसे अवसर पर मां की कमी महसूस होती ही है."

बारात के वापस आने पर स्त्रियों ने गाया—

"माता के बोल भाई भूल गये
सास के बोल मीठे लागे...
हीरा भाई, बीरा महलों में रहना..."

इस गीत ने कंकू को विचारमग्न कर दिया. खुमा की याद आयी. और क्या, अब हीरिया जितना पत्नी का रहेगा, उतना उनका थोड़े ही रहने वाला है. यह तो दुनिया की रीति है. वह जोर से रो पड़ी.

जाने क्यों, अब कंकू में उमंग-उत्साह नहीं रहा, जैसे उसका जीवनकार्य पूरा हो गया हो. उसने मौत को दावत दी परंतु ऐसे मौत आ जाये तो जग में दुःख का कहीं नामोनिशान रहता?"

हीरिया के विवाह को एक महीना बीत गया, फिर दूसरा भी उसी तरह पूरा हो गया. अब तो वह मर भी नहीं सकती थी. मनुष्य को तो जाने दो, मनुष्य की छाया से भी कंकू दूर रहने लगी. दिन मशीनगन की गोली के समान जाने लगे.

गांव की अनुभवी बड़ी-बूढ़ियों को कंकू की चाल में फेर लगा. एकांत में बात पूछी परंतु कंकू ने बिल्कुल इनकार कर दिया. "यह तुम क्या कह रही हो, काकी! भरी दुपहरी रेगिस्तान पार किया और अब ढलती सांझ में..." कहकर कंकू हंस दी. पर इस हास्य में बड़ी-बूढ़ियों को मातृत्व की छाया और अधिक स्पष्ट दिखायी दी.

गला डामोर की पत्नी ने विचार करते हुए कहा भी, "जो तू सही कह रही है तो मैंने भी धूप में बाल नहीं सफेद किये हैं." फिर भी कंकू ने दृढ़ता से मना किया. तब गला डामोर की पत्नी ने अपनी अंदर धंसी आंखें गुस्से में निकालकर कहा, "तू मुझे बनाती है! तू बोल तो महीना बता दूं. बोल चौथा पूरा किया है और पांचवां बैठा हो तो?" वहीं कंकू की आंखें छलक आयीं. पैर से जमीन खोदती हुई मुश्किल से बोली, "काकी मेरे लिए जहर ला दो, मुझ कलमुंही ने..."

गला डामोर की पत्नी खुश हो गयी. हाथ का इशारा करते हुए बोली, "जहर खाये तेरी जूती. बंधी मुट्ठी लाख की है. सभी पेड़ों को थोड़ी-बहुत हवा लगती ही है. लेकिन उस कलमुहे का नाम...?" कंकू के पास आकर धीमे से पूछा.

कंकू मौन रही. दूसरी बुढ़िया ने भी उसे बहुत समझाया, "जात-बिरादरी का हो तो उस नासपीटे के साथ तेरा विवाह करवा दें." वगैरह प्रलोभन दिये. परंतु कंकू ने उन्हें नाम से तो क्या उसकी बू से भी बहुत दूर रखा था.

उसी अंधेरी रात को गांव के कुछ बूढ़े एकत्र हुए और कुछ घुसपुस करने लगे.

"देखो धना डामोर! जात-बिरादरी में पता चलेगा तो पूरे मुहल्ले की इज्जत जायेगी. और रोटी-बेटी के दरवाजे बंद हो जायेंगे." चारों में सबसे वृद्ध गला डामोर ने बात शुरू की.

"हद हो गयी, अभी तो बात दबाने में ही भला है." धना डामोर ने हां में हां मिलायी.

"पर उस हरामखोर का नाम तो मालूम..." तीसरे ने कहा.

"क्या करोगे? नागनाथ नहीं तो सांपनाथ होगा. मेरी औरत ने बहुत पूछा तो बोली कि मुझे मार डालो पर नाम नहीं बताऊंगी. त्रियाहठ के आगे किसकी चली है?" तीनों चुप रहे.

थोड़ी देर के बाद, थोड़ा घुसपुस करने के बाद अपनी जाति के एक विधुर को बुलवाया और धना डामोर ने बात की, "देख कालिया! तेरा घर बस सकता है. जो तू दूसरे की आबरू रख ले तो!"

"उल्लू होगा जो मना करेगा!" गला डामोर बोला, "कितनी ही औरतें बच्चा लेके नहीं आतीं? पांव उल्टा पड़ गया नहीं तो तेरी किस्मत में ऐसी कहां थी?"

कालू कंकू की जाति का ही था. पैंतीस के ऊपर का नहीं था. पच्चीस वर्ष का था तब बहू मर गयी. एक तो गरीब और ऊपर से कम रसिक होने के कारण विधुर था. स्त्री का नाम सुनकर उसके मुंह में पानी भर आया. दिल धड़कने लगा. बोल पड़ा, "काका!" मना कौन कर रहा है?"

"तो मंजूर है?" मोती बोला.

कालू जरा हिचकिचाया. गला डामोर की ओर देखते हुए पूछा, "काका! कोई नाम-ठाम..."

"अब एक बार तू हां कह दे. हम तेरा कुछ खराब करेंगे भला! वह तो तेरे बाप का मुझे ध्यान आ गया. और तू इज्जतदार है. पर तेरी इच्छा न हो तो..."

कालू जल्दी से बोला, "तो मुझसे क्या पूछते हो? तुम करो वह मंजूर, बस?" मोती को लगा कि कालू ठीक से समझ नहीं पाया है. इसलिए फिर पूछा, "तू समझ तो गया? माणिक वैसे तो लाख का है पर थोड़ा..."

इस पर गला डामोर चिढ़ गये, "तुम भी मोती..." और कालू के सामने देखकर बोले, "वैसे तो कोई किसी के साथ हो जाये पर थोड़ा जोड़ा अच्छा हो तो ठीक. पर तेरी इच्छा नहीं..."

कालू फिर बोला, "मैं नहीं जानता! तुम करो वह मंजूर है."

गला डामोर ने घर जाकर तैयारी करने को कहा. कालू घर की ओर जाने लगा. अंधेरी रात में उसकी आंखों के सामने लाल साड़ी पहने दुल्हन की छवि कौंध गयी. यह अच्छा था कि वह नाम नहीं जानता था नहीं तो अलबेली कंकू की कल्पना ही उसे पागल बना देती.

सवेरे ही गांव में बात फैल गयी. कंकू ने कालू का घर बसाया है. दो दिन तक पनिहारिनों में कानाफूसी हुई. आसपास के गांव में तेजी से बात फैल गयी. अलबत्ता गला डामोर जैसे बड़े-बूढ़े कहते रहे, "उसने अपना लड़का बड़ा कर दिया, उसे ब्याह दिया. चाहे कितना भी कंकू उस घर को अपना माने पर अब तो घर पर बहू का ही अधिकार अधिक है. उससे यह क्या बुरा हुआ? चाहे कुछ भी हो उसने अपने लड़के को बड़ा करके अपना फर्ज पूरा कर दिया." और सब सुनने वालों ने सामने नहीं तो पीछे इस बात को स्वीकार किया.

फिर भी तीन दिन तक घर से बाहर निकलने की कंकू की हिम्मत नहीं हुई. वैसे वह मन ही मन गांव के घर-घर से लड़ चुकी थी और उनकी सात पीढ़ियों के कलंकों को गिना चुकी थी. उस अकेली ने ही यह पाप नहीं किया है. ऐसा मन को समझाकर चौथे दिन घर से बाहर निकली. जानवर बाहर बांधे और घड़ा लेकर पानी भरने गयी. गांववालों ने भी पहले की तरह ही बातें कीं. महीने बाद तो कंकू अपने पैर फिसलने की बात को भूल गयी.

एक रात को कालू के घर के पास रहनेवाली एक बूढ़ी ने गांव की बड़ी-बूढ़ियों को जगाया, "चलो कंकू के 'दरद' हो रहा है."

बड़ी-बूढ़ियों ने, खास तो गला डामोर की पत्नी ने बड़ी होशियारी से बच्चे का जन्म करवाया.

कालू ने सभी स्त्रियों को लड़के के जन्म की खुशी में गुड़ बांटा. सब चले गये सिर्फ गला डामोर की पत्नी रह गयी. अभी वह नहायी भी नहीं थी. जैसे चित्र-विशेषज्ञ विविध दृष्टिकोण से चित्र को देखता है वैसे ही वह कंकू के नवजात शिशु को देख रही थी.

एकाएक बुढ़िया की झुर्रियां तन गयीं. होंठ बुदबुदाने लगे, "नासपीटे मलका..." और उसकी आंखों में आयी चमक बुझ गयी, "अब क्या हो? अरे मलका! इस रांड ने हवा भी नहीं लगने दी, नहीं तो तुझे पकी बेर की तरह झकझोर डालती." उसे इतनी झुंझलाहट हो रही थी कि नहाने-धोने के लिए भी वह कंकू के यहां नहीं रुकी. बिल्ली के हाथ में चूहा छूट गया हो, कुछ इस तरह का अफसोस करते रास्ते में बड़बड़ाने लगी, "अरे मलका! यह तो लाखों में एक कंकू जैसी औरत मिली; नहीं तो..." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाढ़ में

तकषि शिवशंकर पिल्लै

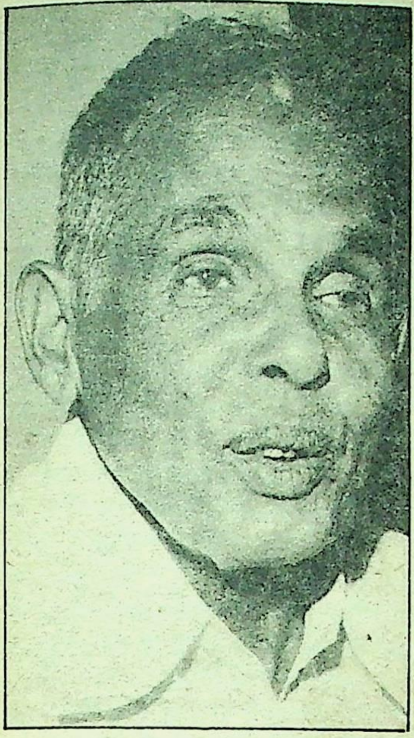

तकषी शिवशंकर पिल्लै

जन्म -17 अप्रैल, 1912 को एलेप्पी (केरल) से कोई बीस किलोमीटर दूर बसे गांव तकषी में. प्राथमिक शिक्षा मलयालम में तकषी के एक प्राइमरी स्कूल में. उच्चतर शिक्षा अंग्रेजी में गांव से बाहर. वकालत की शिक्षा त्रिवेंद्रम के लॉ कालेज में. वकालत की शुरुआत एलेप्पी में 1936 में. मुद्दतों से अपने ही खेतों में काश्तकारी करते आ रहे हैं. लेखन विद्यार्थी जीवन से ही प्रारंभ. पहली कहानी 1929 में तथा पहला उपन्यास 1933 में प्रकाशित. लगभग 32 उपन्यास, 600 से अधिक कहानियां और एक नाटक लिख चुके हैं. सात उपन्यास और अनेक कहानियां अंग्रेजी में अनूदित. 1956 में उपन्यास 'चेम्मीन' साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत. 1964 में 'एणिप्पटिकल' पर केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार. 1974 में सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार. 1980 में बृहद उपन्यास 'कैयर' पर वायलर पुरस्कार. उपन्यास तथा कहानियां अनेक विदेशी एवं सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित. व्यापक भ्रमण. तीन बार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार समिति के सदस्य. केरल साहित्य अकादमी के अध्यक्ष. 'चेम्मीन' पर बनी फिल्म राष्ट्रपति स्वर्ण-कमल से सम्मानित. और 1984 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित.

गांव में ऊंचे स्थान पर एक मंदिर है. वहां देवता गले तक पानी में डूबा खड़ा है. पानी. सब कहीं पानी-ही-पानी है. सभी गांव वाले बसेरा ढूंढ़ने चले गये हैं. जिसके घर नाव है उसके यहां घर की रखवाली के लिए एक आदमी रह गया है. मंदिर की तीन कमरोंवाली छत पर सड़सठ बच्चे थे, तीन-सौ-छप्पन लोग, कुत्ता, बिल्ली, बकरी, मुर्गा जैसे पालतू जानवर भी. सभी एक जुट होकर रह रहे थे. कोई झगड़ा नहीं था.

चेन्नन् को पानी में खड़े एक रात और एक दिन हो गया. उसके नाव नहीं है. उसके यजमान को प्राण लिये किनारे पहुंचे तीन दिन हो गये. जब पानी झोंपड़े के अंदर पहुंचने को हुआ तो टहनियों और लट्ठों से ताक और मचिया बना ली थी. यह सोचकर कि पानी जल्दी उतर जाएगा, वह दो दिन तक उसी पर बैठा रहा. अलावा इसके चार-पांच केले के गुच्छे और फूस का अंबार भी तो था. वहां से चल दिया तो सारी चीजें कोई चालाक उड़ा ले जाएगा.

अब तो ताक और मचिया पर भी घुटनों पानी है. छप्पर छानेवाले नारियल के पत्तों की दो पंक्तियां पानी के नीचे हैं. अंदर से चेन्नन् चिल्लाया, पर सुनेगा कौन? पास है कौन? गर्भवती पत्नी, चार बच्चे, एक बिल्ली और एक कुत्ता—इतने प्राणी उसी पर आश्रित हैं. उसे निश्चय हो गया कि झोंपड़े के अंदर से पानी निकलने में तीस घंटे से कम नहीं लगेंगे. अब तो अपना व परिवार का अंत आसन्न है. मूसलाधार वर्षा तीन दिनों से लगातार हो रही है. झोंपड़े के ऊपर के नारियल-पत्ते हटाकर चेन्नन् किसी प्रकार बाहर आया. चारों ओर देखा. उत्तर की तरफ बड़ी नाव जा रही थी. उसने जोर लगाकर नाववालों को पुकारा. नाववाले, सौभाग्य से, बात समझ गये. उन्होंने नाव झोंपड़े की ओर मोड़ी. चेन्नन् अपने बच्चों, पत्नी, कुत्ते और बिल्ली को एक-एक करके छप्पर से बाहर ले आया. तब तक नाव भी आ गयी.

बच्चे नाव पर चढ़ने लगे. "चेन्नन् भाई, सुनो जरा!" पश्चिम की ओर से कोई बुला रहा था. चेन्नन् ने मुड़कर देखा. "इधर आओ!!" वह कुंजप्पन था. अपनी मचिया पर से बुला रहा था. चेन्नन् ने पत्नी का हाथ पकड़कर उसे नाव पर बिठाया. उसी ताक में बिल्ली भी नाव पर चढ़ गयी. किसी को कुत्ता याद नहीं आया. वह झोंपड़े के पश्चिमी ओर इधर-उधर कुछ सूंघता फिर रहा था.

नाव चल दी.

कुत्ता छप्पर पर लौट आया. तब तक चेन्नन् की नाव दूर पहुंच गयी थी. वह मानों उड़ रही थी. कुत्ता मर्मांतक पीड़ा से किकियाने लगा. बेसहारे मनुष्य की-सी आवाज उसने दी. कौन था उसे सुनने को? झोंपड़े के चारों ओर फिरा. कहीं-कहीं सूंघा, और फिर किकियाया.

एक मेंढक आराम से मचिया पर आ बैठा था. यह अप्रत्याशित शोरगुल सुन वह डर गया और कुत्ते के सामने से पानी में कूद पड़ा. धुटीमुम्... कुत्ता डरकर कांपने लगा और पीछे उचककर पानी को देखता रहा, पानी हिल रहा था.

शायद खाना खोज रहा होगा, कुत्ता इधर-उधर सूंघने लगा. कोई मेंढक उसकी नाक में पिशाब करके पानी में कूद गया. कुत्ते को बेचैनी में छींकें आने लगीं. वह सिर हिलाहिलाकर छींका. फिर आगे के पैर से मुख पोंछ लिया.

मूसलाधार वर्षा फिर शुरू हो गयी. कुत्ता उकड़ू बैठकर सहता रहा. उसका मालिक अंपलप्पुषा पहुंच चुका था.

रात हो गयी. एक भयंकर घड़ियाल पानी में अधडूबी झोंपड़ी को छूते हुए धीरे-से बह गया. कुत्ता भय से पूंछ हिलाते हुए भौंका. घड़ियाल बह गया मानों कुछ नहीं जानता हो. मचिया पर उकड़ू बैठा कुत्ता भूख से पीड़ित हो, काले बादलों और अंधेरे से युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वातावरण को देख किकिया उठा. उसकी दीनता भरी रुलाई दूर तक सुनायी दे रही थी. सहानुभूति से पवनदेव उसे लेकर आगे बढ़े. घर की रखवाली करनेवाले कुछ हृदयालुओं ने कहा होगा—हाय! छत पर बैठा कुत्ता किकिया रहा है! समुंदर के किनारे उसका मालिक उसी रात का खाना खा रहा होगा. खाना खत्म करके उसने अपने कुत्ते के लिए आज भी मुट्ठी-भर भात अलग रख छोड़ा होगा.

कुत्ता कुछ देर तक लगातार ऊंचे स्वर में किकियाता रहा. फिर आवाज मंद होकर बंद हो गयी. उत्तर की दिशा में कोई अपने घर बैठे रामायण बांच रहा था. कुत्ते ने उस तरफ देखा, मानों वह उसे सुन रहा हो. वह गला फाड़कर दूसरी बार भी थोड़ी देर किकियाया.

निस्तब्ध निशीथिनी में मधुर स्वर में रामायण-पाठ एक बार और सुनाई पड़ा. कुत्ता कान लगाकर देर तक उसे सुनता रहा. शीतल पवन में वह शांत मधुर गान घुल-मिल गया. हवा के झोंके और लहरों की आवाज को छोड़ और कुछ सुनाई नहीं पड़ा.

मचिया के सबसे ऊपर चेन्नन् का कुत्ता लेट गया और लंबी सांसें लेने लगा. बीच-बीच में निराश होकर किकियाता भी रहा. तभी मेंढक ने छलांग लगायी. कुत्ता फिर बेचैन हो उठा.

सवेरा हो गया. कुत्ता धीमी आवाज में फिर किकियाने लगा. उसने हृदयविदारक राग छेड़ा. मेंढकों ने उसे घूरकर देखा. पानी की सतह पर उछलते-कूदते मेंढकों को वह एकटक देखता रहा.

पानी के ऊपर दीखते-झोंपड़े के पत्तों को उसने आशा से देखा. सब ओर विजन! कहीं पर चूल्हा भी नहीं जल रहा था. कुत्ता उन मक्खियों पर लपक रहा था जो उसके शरीर को खुशी से काट रही थीं. पिछले पैरों से चिबुक को बार-बार खुजलाकर वह मक्खियों को भगाने लगा.

थोड़ी देर के लिए सूरज निकला. सवेरे की धूप में वह थोड़ा सोया भी. उस केले के पत्ते की छाया मचिया पर पड़ रही थी, जो मंद पवन में हिल-डुल रहा था. कुत्ता उस पर भी लपक उठा. वह एक बार फिर भौंका.

बादलों से सूरज छिप गया. सब कहीं अंधेरा. हवा ने पानी को तरंगित कर दिया. पानी की सतह से जानवरों की लाशें बह रही थीं. लहरों में पड़कर उनका प्रवाह और तेज हो गया था. वे जहां कहीं स्वच्छंद बहती जा रही थीं. कुत्ते ने चाव से उन सबको देखा और फिर किकियाने लगा.

दूर कहीं कोई नाव तेजी से जा रही थी. वह उठकर दुम हिलाने लगा. उस नाव की गति देखने लगा, पर वह जल्दी ही छिप गयी.

पानी बरसने लगा. कुत्ते ने उकड़ूं बैठकर चारों ओर देखा. उन आंखों में [illegible] असहाय स्थिति प्रतिफलित हो रही थी.

पानी बंद हो गया. उत्तर के घर से एक छोटी नाव आयी और एक नारियल के पेड़ के पास रुक गयी. कुत्ता दुम हिलाते और जम्हाई लेते हुए किकियाया. नाववाला नारियल के पेड़ पर चढ़कर कच्चे नारियल तोड़ने के बाद नीचे उतरा. वह नाव पर ही नारियल का पानी पीकर डांड ले नाव खेने लगा.

दूर किसी पेड़ की डाली से एक कौआ उड़कर आया और उस सड़ी-गली लाश पर उतरा, जो एक मोटे भैंसे की थी. चेन्नन् का कुत्ता चाव से उसे देखकर भौंक उठा. कौआ भैंसे का मांस चिकोटने लगा था. फिर संतुष्ट होकर वह भी उड़ गया.

एक हरी चिड़िया झोंपड़े के पास खड़े केले के पेड़ पर आ बैठी और चहकने लगी. कुत्ता बेचैन होकर फिर भौंका. वह चिड़िया भी उड़ गयी.

पहाड़ों से बहे आ रहे पानी पर चींटियों का एक झुंड था, जो जाकर झोंपड़े से अटक गया. फिर बच गया. खाने की चीज समझकर कुत्ता उसे सूंघने लगा. वह एकदम छींक उठा, उसका मुलायम चेहरा लाल होकर थोड़ा-सा सूज गया.

दोपहर बाद, एक छोटी नाव में दो आदमी उस तरफ आये. कुत्ता दुम हिलाकर उन्हें देख भौंकने लगा. वह अपनी भाषा में कुछ बोला, जो मनुष्य की भाषा-जैसी थी. पानी में उतरकर नाव पर चढ़ने को तैयार खड़ा था. "देख, एक कुत्ता खड़ा है." उनमें से एक ने कहा. कुत्ता एक बार फिर किकियाया, मानों वह उनकी सहानुभूति का आभार प्रकट कर रहा हो. "वहीं रहने दे." दूसरे आदमी ने कहा. कुत्ता मुंह बंद करके कुछ बोलने लगा, एक-दो बार उस ओर लपकने का प्रयास भी किया.

नाव दूर चली गयी. कुत्ता और एक बार किकियाया. नाववालों में एक ने मुड़कर देखा.

"हाय!"

यह नाववाले की नहीं, कुत्ते की आवाज थी.

"हाय!"

उसकी थकी-मांदी और हृदयस्पर्शी दीन रुलाई दूर हवा में विलीन हो गयी. फिर लहरों का अनंत नाद. किसी ने फिर मुड़कर नहीं देखा. कुत्ता उसी तरह, नाव के गायब हो जाने तक खड़ा रहा. वह भौंकता हुआ मचिया पर चढ़ गया मानो कह रहा था कि अब दुनिया से अंतिम विदा ले रह है. शायद कह रहा हो कि वह आगे कभी मनुष्य को प्यार नहीं करेगा.

उसने थोड़ा पानी पिया, फिर ऊपर उड़नेवाली चिड़ियों को देखा. लहरों में बहता हुआ एक सांप उसके पास आया. कुत्ता झट से मचिया पर जा पहुंचा. चेन्नन् और परिवार जिस सेंध से बाहर निकले थे, उसी से सांप अंदर रेंग गया. कुत्ते ने सेंध की ओर झांका. वह फिर भौंकने लगा. फिर किकियाया. उसमें प्राणों का डर और भूख दोनों मिल गये थे. वह भाषा कोई भी भाषा-भाषी, यहां तक कि ग्रहवासी भी समझ सकता था. इतनी संवेदनशील थी उसकी भाषा.

रात हो गयी. भयंकर तूफान आया. वर्षा हुई. छप्पर पानी के थपेड़ों से हिल-डुल रहा था. दो बार कुत्ता ऊपर से नीचे गिरने को हुआ. एक लंबा सिर पानी के ऊपर उठा. वह एक मगर था. कुत्ता प्राण-पीड़ा से भौंकने लगा. पास ही कहीं मुर्गियों की एक साथ रोने की आवाज सुनाई दी.

"कुत्ता कहां से भौंक रहा है? यहां से लोग गये नहीं क्या?" केले के पेड़ के पास एक नाव आयी जो फूस, नारियल और केलों से भरी हुई थी.

कुत्ता नाववालों की ओर मुड़कर भौंकने लगा. वह क्रुद्ध होकर, पूंछ उठाए, पानी के पास गया और फिर भौंका. नाववालों में से एक केले के पेड़ पर चढ़ गया.

"भई, लगता है कि कुत्ता लपकेगा."

कुत्ता आगे की ओर लपका भी. केले पर से वह आदमी गिर पड़ा.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सुझाव

तकषी

भारतीय कथा-लेखकों के लिए मैं एक सुझाव देना चाहूंगा. आधुनिक छोटी कहानी तथा उपन्यास पश्चिम के उत्पाद हैं. पश्चिम में छोटी कहानी तथा उपन्यास वहां के जीवन से विकसित हुए हैं. हम लोग उनसे भिन्न हैं तथा अतीत में कहानी कहने की हमारी स्वयं की अपनी तकनीक रही है. यह पद्य में थी. उदाहरण हैं—रामायण, महाभारत तथा अन्य महाकाव्य. हम अपना ही कोई रूप विकसित करने का प्रयास क्यों नहीं करते? मैंने अपने नवीनतम उपन्यास 'कॅयर' में ऐसा करने का विनम्र प्रयास किया है. □

दूसरे ने उसे हाथ देकर नाव पर चढ़ाया. इतने में कुत्ता तैरकर मचिया पर जा पहुंचा और शरीर झटकारते हुए क्रुद्ध होकर भौंकने लगा.

चोरों ने केले के गुच्छे काट लिये. "तुझे मिल जाएगा." गला फाड़ भौंक रहे कुत्ते से उन्होंने कहा. फिर उन्होंने फूस नाव में डाला. अंत में एक आदमी मचिया के ऊपर चढ़ा तो कुत्ते ने उसका पैर काट लिया. कुत्ते के मुंह में मांस भर गया. "हाय!" वह आदमी रोते हुए कूदकर नाव पर जा चढ़ा. नाव में खड़े आदमी ने डांड लेकर कुत्ते के पेट पर दे मारा.

"कैं—कैं-कैं!" कुत्ते की आवाज मंद पड़ गयी. जिसे कुत्ते ने काटा था वह नाव पर रो रहा था.

"अरे! चुप रह, कोई..." दूसरे ने उसे ढाढस बंधाया. वे आगे बढ़ गये.

बहुत देर बाद कुत्ते ने उस ओर देखा और भौंका, जहां से नाव चली गयी थी.

आधी रात के करीब का समय. एक मोटी गाय की लाश बहती हुई झोंपड़े से आ लगी. कुत्ता उसे ऊपर से देख रहा था. वह नीचे नहीं उतरा. लाश धीरे-धीरे बहने लगी. कुत्ता किकियाया. नारियल के पत्ते को छीला. दुम हिलायी. अलग हट रही गाय की लाश के पास गया और दांतों से उसे पास खींचकर खाने लगा. भयंकर भूख मिटाने को उसे काफी भोजन मिल गया था.

'ठे' एक प्रहार! कुत्ता दिखायी नहीं पड़ा. गाय की लाश थोड़ी डूबकर वह गयी.

तब से सिर्फ तूफान की गर्जन, मेंढक की टर्र और लहरों की आवाज ही सुनाई दे रही थी. और कुछ नहीं. सब ओर सन्नाटा! घर की रखवाली करनेवाले लोगों ने फिर कुत्ते की दारुण रुलाई नहीं सुनी. सड़ी-गली लाशें जल की सतह पर इधर-उधर बह रही थीं. किसी पर बैठा कौआ मांस नोच-नोचकर आराम से खा रहा था. कोई बाधा रुकावट नहीं. चोरों को भी अपने काम में व्यवधान नहीं पड़ा. सभी ओर एकांत!

थोड़ी देर बाद वह झोंपड़ा गिर पड़ा और पानी में डूब गया. उस अनंत जलराशि पर कुछ दिखायी नहीं पड़ता था. अपने मालिक के घर की रखवाली उस वफादार कुत्ते ने आखिरी दम तक की. वह चला गया. पर झोंपड़ा तब तक पानी की सतह पर खड़ा रहा, जब तक उस कुत्ते को मगर नहीं पकड़कर ले गया. अब वह झुककर पानी में पूर्णतः डूब चुका था.

पानी उतरने लगा. चेन्नन् कुत्ते की खोज करता हुआ वहां आया. किसी नारियल के पेड़ के नीचे कुत्ते की लाश पड़ी हुई थी. लहरें उसे धीरे-से चला रही थीं. पैर के अंगूठे से चेन्नन् ने उसे हिलाया, उसे उलटकर देखा. वह निश्चित नहीं कर सका कि यह उसी का कुत्ता है. उसका एक कान कट गया था. खाल सड़ जाने से रंग का भी पता नहीं चल रहा था. □

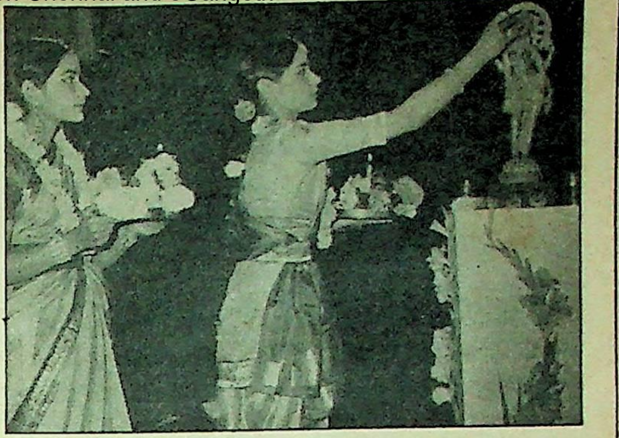

वाग्देवी वंदना

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।
अहं एवं स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं बृह्माणं तं ऋषिं तं सुमेधाम्।।

मैं (वाग्देवी) यज्ञार्ह देवों में प्रधान होकर इन सभी का ज्ञान रखने वाली और नाना प्रकार की संपदा का संग्रह करने वाली सम्राज्ञी हूं. देवों ने अनेक वस्तुओं में मेरा निवास और अनेक रूपों में मेरा प्रवेश करवाया और अनेक स्थानों में मेरी स्थापना की.

देवों ने और मनुष्यों ने जिस बात को प्रसन्नता से मान लिया है, ऐसी यह बात मैं तुम्हें अपनी ओर से ही कहती हूं. जिस पर मैं प्रसन्न होती हूं, उसे उग्र योद्धा, ऋत्विक्, दृष्टा ऋषि अथवा अत्यत प्रतिभाशाली पुरुष बनाकर ही छोड़ती हूं.

ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यं
इत्यास्पदचतुष्टयम्।
यस्याः सूक्ष्मादिभेदेन
वाग्देवीं ताम् उपास्महे।।

जिस (वाग्देवी) के सूक्ष्म आदि भेद से ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य ये चार स्थान होते हैं, उस वाग्देवी की मैं उपासना करता हूं.

वर्णानाम् अर्थसंघानां रसानां छंदसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणीविनायकौ।।

वर्ण, अर्थसमूह, रस, छंद तथा मांगलिक कार्यों के विधायक वाणी और विनायक की मैं वंदना करता हूं.

सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव।।

हे देव, मेरी आत्मा सदैव प्राणियों में मैत्री, गुणीजन में आह्लाद, दुखी जीवों में दयाभाव तथा विपरीत आचरण करनेवालों में तटस्थभाव धारण करे.

सर्वे भवंतु सुखिनः
सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु
मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

सब सुखी हों, सब स्वस्थ हों, सभी शुभ देखें, कोई दुखी न रहे.

■ ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोह का शुभारंभ उपरोक्त वाग्देवी-वंदना से होता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युंजय

वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य

स्वयंवद्

यथार्थ साहित्य में सचमुच न तो वास्तविकता से पलायन के लिए अनुमति है न ही उसकी संपोषणा के लिये. उसका धर्म मात्र इतना है कि चारों ओर अटाटूट हिलोरते सागर का मंथन करें और जो अमृत हाथ आये उसका लाभ सबको कराये. उसका लक्ष्य किसी का नाश करना नहीं होता, जीवन की व्यापक अशांति में समन्वय और सामंजस्य लाना हुआ करता है. और यह तो बड़े से बड़े लेखक के लिये भी सामान्य काम नहीं होता. अपनी ओर से, अपने विषय में, मेरा निवेदन इतना ही हो सकता है कि मैं सुंदर और सत्य को जीवन में एकमेक करने के लिये प्रतिबद्ध हूं.

एक बार एक भारतीय चिंतक राजनीतिज्ञ ने कहा था कि 20वीं शताब्दी की सबसे अधिक द्रष्टव्य विशेषज्ञता यह है कि इस समय विश्वभर की मानवजाति विश्व-भर के अन्यायों के विरुद्ध विद्रोह कर उठी है. स्त्रियां हों, चाहे निर्धन और हरिजन; काले हों, चाहे छोटे-मोटे अकुशल उत्पादक: केंद्रीकरण के आखेट हों, चाहे किसी भी प्रकार के सर्वसत्तावाद के रौंदे-कुचले जनमानव सभी अपनी-अपनी सांसत से विमुक्ति पाने के लिये दिशादान साहित्यकार को किसी रूद्ध या बद्ध दर्शन-चिंतन में नहीं मिलेगा, मिलेगा तो कहीं उसके पार ही. आज के प्रश्नों और आवश्यकताओं का समाधान प्राप्त हो सकता है तो ऐसे-विचार-दर्शन में ही जो उदार हो, अनेकवादी हो, और हो सतत विकासशील.

देखा जाये तो दूर मूल में संभवतः यही बात है कि लेखक और विद्रोही दोनों अपने को परस्पर सजातीय जैसा पाते हैं. दोनों ही जीवन और जगत की कुरूपता और असंगतियों को अस्वीकार करते हुए सुंदर और सामंजस्यपूर्ण एक लघुविश्व की परिकल्पना में लवजीन रहते हैं. लेखक का धर्म है कि युगीन सामयिक भावावेशों से खीजकर अपने किसी काल्पनिक या असार संसार में न जा रहे. उसे तो इस प्रकार के आवेशों की उपजायी हुई हिंसता तक का सामना करना होगा. मेरे प्रस्तुत तीनों उपन्यास: इयारूइंगम, प्रतिपद और मृत्युंजय – इसके साक्षी हैं, उदाहरण हैं.

15 दिसंबर, 1980 को
पुरस्कार समर्पण समारोह के
अवसर पर व्यक्त विचार

(मंच पर बिलकुल अंधेरा है. केवल आवाजें सुनाई दे रही हैं... लोगों के चलने की आवाज, वंदे मातरम्, महात्मा-गांधी की जय, इन्कलाब जिंदाबाद आदि नारे गूंजते हैं. विश्व, विजय नौजवान, आदि नारे गूंजते हैं. सारे जहां से अच्छा आदि गीत सुनाई दे रहे हैं. फायर का आदेश सुनाई पड़ते ही गोलियां चलने की आवाजें के बीच वंदेमातरम् भारत माता की जय, महात्मा-गांधी की जय आदि की आवाजें गूंजती हैं. धीरे-धीरे आवाजें विलीन हो जाती हैं. मंच की बायीं ओर, और बीच के हिस्से पर प्रकाश पडता है. दिखाई पड़ता है कि बीच में अलाव जल रहा है, उसके पास चटाई, आसनी और एक पीढ़े पर दधी बरदलै, जयराम और आहिना कोंवर बैठे हैं. एक ओर एक खंभे के पास एक बड़ा पीढ़ा खाली पड़ा हुआ है. दो आदमी कटोरों में चाय पी रहे हैं. गोसानी अंदर से और एक कटोरी लाकर तीसरे को दे मुड़कर अंदर चली जाना चाहती है. तभी गोसाईं आते हैं. गोसानी एक ओर सिकुड़ी-सी होकर अपने सिर की घूंघट कुछ और खींच लेती है. गोसाईं आते हैं.)

गोसाईं : एक कटोरी चाय मुझे भी.

(गोसानी अंदर चली जाती है. गोसाईं आगे बढ़ आते हैं.) चाय सबको मिली है न?

दधी, मधु, जयराम : हां हां मिली है प्रभुईश्वर.

(गोसाईं अपने आसन पर बैठ जाते हैं. सामने के अलाव की आग में एक लकड़ी डाल देते हैं. तभी बायीं ओर से हाथ में एक चिट्ठी लेकर मधु तेजी से आता है और-गोसाईं की ओर विनयी भंगी दृष्टि से बढ़ा देता है. गोसाईं पढ़कर कहते हैं)

गोसाईं : जा, यहां भेज उन्हें.

(मधु निकल जाता है.)

गोसाईं : **(दधी आदि की ओर देखते हुए)** कामपुर के गोसाईं ने तीन आदमी भेजे हैं, हमारे साथ देने के लिए.

(सभी बाहर की ओर देखने लगते हैं, तीन आदमी, याने भिभिराम, घनपुर और माणिक बरा अंदर आ जाते हैं. भिभिराम के कंधे पर एक गठरी, घनपुर के कंधे से लटकता हुआ एक थैला और माणिक बरा के कंधे पर भी एक गठरी.)

गोसाईं : गठरी-गुठरी रखकर यहां बैठिये. रास्ते पर तो कोई परेशानी नहीं हुई न?

भिभिराम : मनहा पार होने तक तो डर था. मगर उसके बाद तो ऐसा लगा कि स्वाधीन मायं राज में ही आ पहुंचे हों.

गोसाईं : घनपुर, तुमने पहले रेल की पटड़ी तो उखाड़ी है न?

घनपुर : जी हां?

गोसाईं : कहां?

घनपुर : कामपुर में

गोसाईं : हथियार है या नहीं?

घनपुर : जी हैं, रेलवे के एक गैंगमैन से मांग लाया हूं.

गोसाईं : उसने दे दिये तुम्हें?

घनपुर : जी हां, दे दिये, कामपुर, बढ़मपुर, रहा आदि में जो अत्याचार हुए उनसे लोग जले-भुने हैं. इधर की हालत कैसी है?

गोसाईं : बीहड़ अंदरूपी जगह होने के कारण बहुत ज्यादा अत्याचार तो नहीं हुए. मगर हमारे पास के बिलिमारा गांव की एक बुढ़िया को फौजियों ने लातों से मार मार कर बिलकुल अधमरा कर दिया. वह चार दिन तक खून थूकती रही.

भिभिराम : इनका तो न दया-धरम है, न आचार-विचार.

गोसाईं : साम्राज्यवादी सेना ऐसी ही होती है. सेनापति जो कुछ कहे, वही उनके लिए वेद-वाक्य होता है. अगर इनके दिल दिमाग को मोड़ा जा सके तो जैसे रावण का पतन हुआ था, वैसे ही एक ही दिन में वृटिश राज का भी पतन हो जायेगा. हां, तो फिर कामपुर के गोसाईं जी ने जैसा कि अपने पत्र में लिखा है, तुम लोग हमारे मदद लिए ही आये हो? है न?

भिभिराम : जी हां, वहां से भेजे गये सभी कागजात आपने तो पहले ही पढ़ लिये हैं न?

गोसाईं : हां पढ़ चुका हूं. कामपुर के गोसाईं जी ने हमारे नेता हाजरिया के बारे में लिखा है. बंदूकें जुटा ली गयी हैं न?

भिभिराम : बारपूजीया की सभा में ही उसकी योजना बनायी गयी है. दस-बारह बंदूकें जुटी हैं. मगर बंदूकें इकट्ठी हो भी जायें तो क्या होगा? गुरिल्ला-लड़ाई सिखायेगा कौन? सुभाष बोस जैसा नेता की जरूरत थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसाईं : हमारे नेता और कमां को [illegible] मालूम. उसके लिए भीतरी जगह चाहिये, सिखानेवाला चाहिए, सीखनेवाला चाहिये.

घनपुर : मायं में ही क्यों नहीं करते?

गोसाईं : करने की सोच रहा हूं. मगर आदमी और रकम चाहिये. ठीक है, ये बातें फिर आराम से करेंगे. अब असली बात पर आयें. हफ्ते भर पहले एक काम करने के लिये हमारी एक टुकड़ी गयी थी, मगर बिना काम पूरा किए लौट आये.

भिभिराम : क्यों?

गोसाईं : मिलिट्रीवाले पहरा दे रहे थे, देखकर डर गये.

घनपुर : कायर कहीं के.

गोसाईं : खैर, राह-बाट देख आये हैं. जगह भी तय कर आये हैं.

भिभिराम : जगह आपने खुद नहीं देखी?

गोसाईं : मैंने तो खुद नहीं देखी, मगर कामपुर के गोसाईं जी ने उस जगह का विवरण दिया है.

भिभिराम : जी हां, सुना है दो पहाड़ों के बीच की संकरी जगह है. वहां अगर रेल उलटी जा सके तो उसके डिब्बे इधर-उधर दोनों ओर बिखर जायेंगे. और तब सामरिक योगान कई दिनों तक बंद हो जाएगा.

गोसाईं : उन्होंने जो विवरण दिया है, हमारी तय की हुई जगह से उनका मेल है. मैं जरा धीरज से सिलसिलेवार ढंग से काम करने का तरीका सोच रहा हूं. हम कल सुबह यहां से तीन टुकड़ियों में कमारकुची आश्रम रवाना होंगे. वहां से भी देख-भालकर उस जगह के हाल-चाल की जांच कर लेंगे. पास ही एक गारों-गांव हैं, उसके आगे नेपालियों की बस्ती है. उन सबमें भी देखभाल कर जानकारी ले लेना होगा. लोगों की तो बड़ी कमी है, घनपुर तो लग रहा है कि रेल का फिस प्लेट खोलने में पक्का है.

भिभिराम : यह घनपुर वास्तव में दुर्दांत आदमी है. शेर का कलेजा पाया है इसने.

गोसाईं : आज रात ही घनपुर को साथ ले शिलाडुबी जाना और लयराम महाजन से उसकी बंदूक लाना.

भिभिराम : लयराम महाजन कौन है?

गोसाईं : लयराम कोच, महाजन, घर है गुवाहाटी में. यहां पाम बनाकर रहता है. बड़ा धाकड़ शिकारी है.

भिभिराम : ठीक होगा. हमें बंदूकें चाहिए.

गोसाईं : खाने का सामान, कड़ाई-बटलोई आदि सब कुछ का इंतजाम कमारकुची के मेरे आश्रम में ही हो जायेगा. वहीं से ले लेंगे. मधु, जा, खाना परोसने को कह दे. और तू घनपुर के साथ पहले खा-पीकर शिलाडुबि रवाना हो जा. रातों रात बंदूक यहां पहुंचनी होगी.

(दृश्यांतर)

(समय सवेरा. गोसाईं एक कड़ाही के अलाव में जलते अंगारों से अपनी छाती सेंक रहें हैं. बीच बीच में खांसते हैं. गोसानी बीच बीच में आंखें-पोछती और खरल में मकरध्वज घोंट कर खड़ी हो रहती हैं.)

गोसाईं : (मुस्कुराते हुए) भला, रोने को क्या हुआ है?

गोसाईं : (घनपुर से) फिस प्लेट खोलने में कितनी देर लगेगी?

घनपुर : पंद्रह मिनट लग सकता है.

गोसाईं : उससे देर हो तो खतरा है. मिलट्री पहरेदारों के हाथ पकड़े जायेंगे.

भिभिराम : आपके यहां से कौन-कौन जानेवाले हैं?

गोसाईं : हम ही हैं. मगर हम सभी एक साथ नहीं चलेंगे. कमारकुची आश्रम में नगांव के एक 15 कामरेड भी आकर मिलनेवाले हैं, गोसाई हैं, गोसाईं ने लिखा है.

(मधु आता है)

मधु : प्रभु ईश्वर. गोसानी मैया ने कहा है, रसोई हो चुकी है, कोई अगर नहाना-धोना चाहें तो.

गोसाईं : ठीक है, खाना खा-पीकर हम और बातें करेंगे. मधु, तुझे एक काम करना होगा.

मृत्युंजय की नाट्य प्रस्तुति का एक दृश्य

गोसानी : बिस्तर पर अकेली लेटी हुई थी, मगर पलक तक न झपीं. आप लोगों की बातें सुन सुनकर कलेजा सूख गया. आपको कहीं कुछ हो न जाये, सोच सोचकर मुझे डर लग रहा है.

गोसाईं : तुम इतनी चिंता न करो. जो होना है, होगा. तुमने तो देखा है न हमारी आखिरी बैठक हो चुकी, टुकड़ियों में हमारे लोग आगे बढ़ रहे हैं.

गोसानी : ये बातें मुझे न बताने से भी होगा. सारी रात तो दीवार के उस ओर से वही सब तो सुनती रही हूं. इतने सो हथियारबंद मिलिट्री वालों के सामने भला ये दो-चार आदमी क्या कर पायेंगे? तिलक डेका जैसे ही मारे जायेंगे. गहपुर में जैसे कनकलता—मुकुंद को मारा है, वैसे ही मारे जायेंगे. ढेक्कियाजुली में तिलेश्वरी को जैसे मारा है, इन्हें भी वैसे ही मार डालेंगे.

गोसाईं : (तेज निगाह से गोसानी की ओर देखते हुए) ये समाचार तुम्हें किसने दिये?

गोसानी : कली दादी ने. कल आकर सबको यहां इकट्ठा देख अंदर नहीं आयी, लौट.गयी.

गोसाईं : लेकिन हमसे डरने को क्या था उसे?

गोसानी : नहीं, वह कलेजे को दहला देनेवाला एक समाचार लायी है. कहीं वह समाचार सबके सामने देना पड़ जाये, इसी कारण वह अंदर नहीं आयी. इधी के यहां है वह. वह बात बताते मुझे बड़ा बुरा लग रहा है.

गोसाईं : कौन-सी बात है, बताओ न.

गोसानी : सुभद्रा ने गले में फंदा डालकर खुदकुशी कर ली.

गोसाईं : क्या?

गोसानी : घनपुर वहां से आते समय वचन दे आया था, वह उससे शादी करेगा. कल रात जंगल में एक चीतल की रुलाई सुनी थी. मुझे लगा मानों वह सुभद्रा ही रो रही हो.

गोसाईं : यह समाचार अब घनपुर के कान में पड़ने नहीं दिया जा सकता.

(खांसते हैं) हां, देखूं, मकरध्वज की खुराक मुझे दो. और दो-एक खुराक मकरध्वज थैले में रख देना. यह दमें की खासी जिस तरह से आ रही है, इसके कारण रास्ते में कहीं मुसीबत खड़ा न हो जाये. हां, तुम अब जाकर मेरे नाश्ते का इंतजाम करो, मेरे रवाना होने का समय हो गया है.....

गोसानी : और किसके भाग्य में क्या लिखा है कौन-जाने? न जाने कितनों की गोद सूनी हो जाएगी, कितनों की पत्नियों की मांगें सूनी हो जायेंगी. कितनों के शरीर बेकार हो जायेंगे........

(कहती हुई अंदर चली जाती है)

(दृश्यांतर)

(समय रात का अंतिम पहर. गोसाईं, घनपुर, भिभिराम, जयराम, रूपनारायण, माणिक बरा, मधु और आहिना. मंच पर कुछ गठरियां और पेटियां आदि हैं. एक ओर दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंबा-दा और एक जगह तीन बंदूकें रखी हैं. पेटियां-गठरियों पर सिर रखकर सब सो रहे हैं सिर्फ गोसाईं बैठे हुए मकरध्वज को खरल में घोंट कर खा रहे हैं. तभी रूपनारायण जागता है.)

गोसाईं : (गंभीर आवाज से) रूपनारायण, जग गये?

(रूपनारायण उठकर आगे आता है) दूसरे लोगों को भी जगा दो.

(भिभिराम जगता है) घनपुर, मधु, जयराम.

(सभी जग जाते हैं)

यह जंगल होने पर भी इस विशाल वरगद के नीचे ऐसा लगा कि मानो किसी नामघर में ही सो रहे हैं. क्यों है न भिभिराम?

भिभिराम : जी हां, दो-तीन घंटे तो हम सो चुके हैं.

(बातों के बीच मधु-बाहर जाता है)

गोसाईं : हां, लेकिन मैं ही झपकी तक ले नहीं सका. दमें का दौरा हो आया.

घनपुर : (आगे बढ़कर) रवाना होने का समय हो गया क्या?

गोसाईं : हां, अब रवाना होना ही अच्छा है. मुंह अंधेरे ही इस नदी को पार कर जाना अच्छा रहेगा. तभी दोपहर तक हम गवर्धन पहाड़ी के नीचे पहुंच सकेंगे. वहीं दोपहर का खाना खाकर शाम के पहले ही पहाड़ी पर चढ़ना पड़ेगा. अब उठो चलो, नदी में हाथ-मुंह धोकर नाव पर चढ़ जायें.

(मधु भागता हुआ आता है)

मधु : उधर वह कोई आ रहा है, जान पड़ता है.

(सभी संत्रस्त होकर हाथों में लंबा-दा और बंदूकें उठा लेते हैं, और बाहर देखने लगते हैं, घनपुर आगे बढ़ जाता है)

घनपुर : लगता है, कोई औरत है. (दबी-सी मगर ऊंची आवाज में पुकारकर) कौन है वहां?

डिमि : (दूर से) तुम सब क्या वहीं हो?

घनपुर : डिमि की आवाज-सी लगती है.

(डिमि तेजी से आती है)

गोसाईं : डिमि, तू यहां आ गयी?

डिमि : बड़ी भारी घटना हो गयी है. रात घनपुर को विदा दे जब मैं लौटी जा रही थी तो राह में गोसानी और चार औरतों से मुलाकात हो गयी. वे सभी आश्रम पहुंची हैं.

गोसाईं : क्यों, क्या हो गया है?

डिमि : उन सबने बताया, किसी महाजन और एक नाववाले की खोज में पुलिस-मिलिट्री ने मांय का चप्पा चप्पा छान मारा है और घर घर में घुसकर उपद्रव मचा रखा है. गोसानी आदि डरके मारे वहां से इस आश्रम में चली आयी हैं. सोचा था, तुम सब आश्रम में ही मिल जाओगे. मगर तुम सब तो वहां से चले आये. मैंने उनसे तुम लोगों की सारी बातें बता दीं. हां, यह है एक चिट्ठी, किसी ने उनके हाथ भेजी है.

गोसाईं : दे, देखूं! तो फिर मांय में भी आग जल उठी है. (पत्र लेकर रूपनारायण के हाथ दे) हां, रूपनारायण, पढ़ो तो जरा, किसने दी है? मधु, जरा टार्च जला.

(मधु पत्र पर टार्च की रोशनी डालता है रूपनारायण पढ़ता है)

रूपनारायण : (पत्र पढ़ता हुआ) दधी बरदलै ने आपको लिखा है. पढ़ता हूं सुनिये. प्रभु ईश्वर, सारे मांय में पुलिस-इंस्पेक्टर शइकीया का अत्याचार जारी है. जहां-तहां खाना तलाशी हो रही है. हमारे अनके लोग पकड़े गये हैं. पुलिस-मिलिट्री वाले लयराम महाजन की खोजबीन में जुटे हुए हैं. लयराम को जिस घर में बंद कर रखा गया है, उसका पता उन्हें अब तक नहीं चल पाया है. मगर लगता है कि उन्हें पता लगा लेने में ज्यादा देर नहीं लगेगी. उन्हें जंगल में ले जाकर कहीं बंद रख सकते तो अच्छा होता. लेकिन चारों ओर पहरा होने के कारण अगर लयराम को यहां से निकालना संभव हो सका तो नाववाले के साथ ही उसे भी मार डाले बगैर कोई चारा नहीं है.

गोसाईं : जयराम, तुम भी घाट तक साथ चलो. वो नेपाली नाववाले तुम्हारे ही आदमी हैं, उन्हें समझा बुझाकर उसी ओर से चले जाना. चलो, चलो, डिमि, तू गोसाइन से जाकर सारी बात कह देना. उसके शरीर की वैसी हालत में ईश्वर उसे सकुशल रखें. कहना, वह आश्रम में ही रहे. हम परसों तक वहां लौटेंगे. चलो, चलो भाइयो.

(सभी लोग सामान उठाकर-निकल जाते हैं) गोसाईं, घनपुर और मधु के कंधों पर बंदूकें हैं. डिमि आंखों के इशारे से घनपुर को बुलाती है. मंच पर घनपुर और डिमि रह जाते हैं) डिमि अपने बगल से कपड़ों की एक पोटली खोलकर उसमें से एक गारो कमीज निकालती है.)

डिमि : तू तो कपड़ा लत्ता कुछ भी ठीक से नहीं लाया है. हां-ले-यह पहन ले. यह कमीज मेरे खुद बुने कपड़े से सिली है. वहां ऐसे कामों में एंड़ी चादर शरीर पर रहे तो काम में परेशानी हो सकती है. भागते समय झाड़ी के कांटों में चादर उलझ जाती है.

(डिमि कमीज घनपुर को पहना देती है. घनपुर आवेश से डिमि के चेहरे की ओर देखता रह जाता है.)

घनपुर : किसी ने मुझे ऐसा प्यार नहीं किया था.

डिमि : तू आयेगा न फिर?

घनपुर : (हंसता हुआ) आऊंगा, आऊंगा, भला आऊंगा क्यों नहीं? अगर मेरा कुछ हो जाये तो सुभद्रा से बता देना. मैं जाऊं अब. (धनपुर निकल जाता है. डिमि उसकी ओर देखती रहती है. अचानक हथेलियों से आंखें ढंककर, जिस ओर से आयी थी उधर तेजी से चली जाती है.)

(दृश्यांतर)

(समय दोपहर. गोसाईं एक डिब्बी से कच्ची सुपारी-पान निकालकर खाते हैं और खांसते हुए अपनी छाती पर तेल लगा मालिश करते हैं आहिना एक थैले में कड़ाही-बटलोई आदि रखती है. रूपनारायण बंदूक लिये आता है.)

गोसाईं : तुम खाना-खाने के बाद तुरंत भला कहां निकल गये?

रूप : कोई एक बात अचानक दिमाग में आ गयी, इसलिए वह जगह फिर से जाकर एक बार देख आया. घनपुर और दूसरे लोग क्या आगे बढ़े हैं.

गोसाईं : हां, मधु और घनपुर तो चले गये. वे शायद रेल लाइन के पास पहुंच चुके होंगे. यहां से तो वहां तक की दूरी करीब आधेमील भर होगी, मधु रास्ते में छोटी-छोटी खपच्चियां लगाता जायेगा जिससे आगे चलकर राह खो न जाये. भिभिराम भी अभी गया है, सिर्फ हमीं तीन रह गये हैं.

रूप : हम भी आगे बढ़ सकते हैं. (हाथ की घड़ी देखता है.)

गोसाईं : (पास की गठरी बांधते हुए) मगर तुम फिर से जाकर कौन सी जगह देख आये?

रूप : उन छितवन के पेड़ों के नीचे पहाड़ी की ढलान पर दो बड़ी बड़ी गुफाएं हैं. उसी जगह गुप्त शिविर बनाना बड़ा आसान होगा. पुलिस मिलिट्री वालों ने तो चारों ओर से घेर रखा है, समूचा अंचल इंस्पेक्टर शहकीया के कब्जे में है, मगर यहां काफी लोग कुछ दिनों तक छिपे रह सकेंगे. पुलिसवाले आसानी से पता नहीं लगा पायेंगे. यहीं रहकर हमें गुप्त रूप से एक गुरिल्ला दस्ता बनाना अच्छा रहेगा.

गोसाईं : अच्छा ठहरो, दूसरे कर्मियों से चर्चा किये बगैर कोई काम किया नहीं जा सकता.

रूप : दूसरे कर्मा भला हैं ही कौन? सब लोग जेल ही में हैं.

गोसाईं : ठीक है, इस बारे में आगे सोचेंगे, अभी कितना बजा है?

रूप : (विरक्त के भाव से) आप लोगों का दिल कमजोर है. और असली बात के लिए आग्रह भी कम है. (घड़ी देख) तीन बजा है.

(मंचकर प्रकाश धीमा होता है. केवल स्पाट लाइट के बीच गोसाईं स्वगत कथन)

गोसाईं : और तीन घंटा. ठीक सात बजे रेल आयेगी. छह बजे के बाद से ही हमारा असली काम शुरू होगा. रेल आने के कुछ समय पहले पहरेदारों की टुकड़ी के जाने के बाद से पहरेदारों की दूसरी टुकड़ी आने के बीच जितना समय रहेगा उसी के अंदर काम पूरा कर लेना होगा. अगर इस बीच पहरेदार आयें भी तो उन्हें गोली मार देनी होगी. दो बंदूकों से कम से कम चार को आसानी से गिराया जा सकता है. उधर से भी गोलियां चलेंगी. हमारे भी दो-एक आदमी गोली से गिरेंगे. गोली चलने की आवाज पाकर पास के शिविर से फौज के आने में दो घंटे से कम समय नहीं लगेगा. इस बीच मिलिट्री एक्सप्रेस गाड़ी घटना स्थल पर पहुंच ही जायेगी. रेल के उलटकर पचास फुट नीचे की खाई मे गिरने के बाद कौन मरे, कौन जीये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन पकड़ा जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता. गोसानी तो आश्रम में है, उसके पैर भारी हैं... दो-चार दिन में ही प्रसव होने वाला है.

(मंच पर स्वाभाविक प्रकाश पड़ता है)

रूप : (कुछ रोष से) जाने का समय हो गया.

गोसाईं : (स्वाभाविक रूप से) हां, हां, चलो. कोवंर, तुम सामान सहेजकर पास वह जो गुफा है, वहीं रख दो. अपनी गांठ में जरा-सी अदरख बांध लेना. जो मकरध्वज लाया था खत्म ही हो गया, इधर छाती भी लगातार परेशान रही है. चलो रूपनारायण, हम आगे बढ़ें.

(दृश्यांतर)

(स्पाट लाइट में घनपुर का मूक अभिनय. उसने अपने शरीर का पूरा बल लगा कर फिसप्लेट को पूरा खोल दिया. हांफता है. सिर का पसीना पोंछता है. फिर सिर उठाकर भिभिराम की ओर देखता है.

(स्पाट लाइट में घनपुर का मूक अभिनय. वह हथौड़ी से पीट रहा है पर जोड़ खोल नहीं पा रहा है. घनपुर जाकर वहां पहुंचता है. भिभिराम को हटाकर घनपुर फिसप्लेट निकालने का प्रयत्न करता है. पूरा बल लगाकर फिसप्लेट निकाल लेता है)

(दृश्यांतर)

गोसाईं : घनपुर क्या हो गया है तुम्हें?

घनपुर : (तकलीफ से हंसकर) कुछ मालूम ही नहीं कर पाया, एक पैर मानो सुन्न-सा हो गया है. घुटने के नीचे से खून की धार बह रही है.

गोसाईं : गोली लग गयी है. तुम घुटनों के बल ऊपर चढ़ आओ.

घनपुर : घुटनों के बल भी चढ़ा नहीं जा रहा है. एक पहरेदार के गोली मारने की आवाज कानों में आयी थी.तभी आप लोगों की गोलियों की आवाजें आयीं. वे दोनों मर चुके हैं.

रूप : भिभिराम और मधु हैं कहां?

घनपुर : उन्हें पहरेदारों की बंदूकें और गोलियां ले आने को कह दिया है जल्द, ओह, मैं अब खड़ा नहीं रह सकता. (बैठ जाता है)

गोसाईं : घनपुर, तुम वहीं ठहरो, मैं उतर आ रहा हूं. चोट की जगह पर पट्टी बांध दूं.

घनपुर : नहीं नहीं, आप वहां से न उतरें. आप लोगों का काम पूरा नहीं हुआ है.

रूप : तुम क्या अपनी चोट की जगह पर खुद पट्टी बांध सकोगे? खून बहना न रुके तो खतरा है. ठहरो, मैं आकर बांध दे रहा हूं.

घनपुर : आहिना भाई पकड़े हुए हैं. यह मेरा काम है, मैं करूंगा. तुम लोग अपना अपना काम करो. खबरदार, जब तक उजेला है, उस जगह से न उतरना. ओह (सख्त वेदना का भाव).

गोसाईं : कोवंर, तुम घनपुर के पैर को बांधने की कोशिश करो और पास ही रहो. वो देखो, भिभिराम और मधु आ रहे हैं. मधु को अपने पास ही रख लो. उसे अब पेड़ पर चढ़ने की जरूरत नहीं. दिन का उजाला मिटता जा रहा है. भिभिराम बंदूकें और गोलियां ले ऊपर आ जायें. मधु और तुम्हें बांस की कमाठी पर घनपुर को लेकर उस ओर की गुफाओं के पास ले जाना होगा, कोंवर सुन रहे हो न?

घनपुर : प्रभु ईश्वर, मुर्दे को ढोकर भला अब क्या फायदा? मैं अब जिंदा नहीं रहूंगा. निश्चित जान गया हूं बेकार तकलीफ उठाकर कोई फायदा नहीं. मुझे यहीं मरने दो. जहां तक हो सके मैं खुद अपने शरीर को संभालूंगा. मेरे हाथ में रायफल है. दुश्मन दिखाई पड़े तो मारूंगा. अगर न दिखाई पड़े तो उलटती हुई रेल को ही देखूंगा. दिल ठंडा होगा.

गोसाईं : एक बात है घनपुर, याद रखो, मैं अभी दल-नायक हूं. अभी मेरा निर्देश नहीं मानता ऐसा कह नहीं सकते. असली लड़ाई तो अभी शुरू ही नहीं हुई. शहकीया इंस्पेक्टर के सिपाही पीछे की ओर से बड़ी तेजी से चले आ रहे हैं. लेटे लेटे ही गोलियां चलानी पड़ सकती हैं. इसलिए जैसे भी हो सके हमारी उसी गुफा की उस जगह तुम पहुंचकर ठहरे रहो. जबकि रेल के फिसप्लेट खुल चुके हैं, रूपनारायण और मैं यहां संभाल लूंगा. कोंवर, मधु के साथ तुम घनपुर को वहां ले जाने का इंतजाम करो.

(आहिना घनपुर को पकड़ता है. मधु आता है. तीनों बाहर की ओर कदम बढ़ाते हैं)

(मंचपर अंधेरा : संकेत : एक एक्स्प्रेस ट्रेन नजदीक आती है. अचानक भयंकर आवाज होती है. रेल के अनेक डिब्बों के उलटने की प्रचंड आवाजें. आग लगने, विस्फोट होने की आवाजें. चीख पुकार, हजारों लोगों की मृत्यु यंत्रणा के निनाद-आर्तनाद, कुछ समय तक धरती-आकाश को कंपाने वाली आवाजों के बाद मंच पर झीना-सा प्रकाश होता है. दधी एक चट्टान पर बैठा हुआ है. दीख पड़ता है—गोसाईं दमें की लंबी लंबी सांसें खींचते हुए मृत्यु कातर हालत में रूपनारायण के शरीर का सहारा लिये प्रवेश करते हैं. उन दोनों की हालत जरा-जीर्ण हो गयी है. शरीर के कपड़े तार-तार होकर फट गये हैं. गोसाईं के शरीर पर खून के धब्बे. दधी उतावली से आगे बढ़ जाते हैं.)

दधी : प्रभु ईश्वर, आ गये? रेल उलटने की आवाज यहां तक, इस गुफा तक सुनायी पड़ी थी.

गोसाईं : सुनी थी? सुनी थी तुमने वह आवाज? यह हत्याकांड किसने किया? हत्यारा कौन है? रूपनारायण? घनपुर? मधु? भिभिराम? मैं?.... मगर.... मगर यह सब आवश्यक हत्याएं हैं. नहीं—नहीं—खून के धब्बों से हमने अपने हाथ कलुषित कर डाले हैं. क्या यह अहिंसक लड़ाई है? इंसान के खून का धब्बा अपने हाथ में लिये विवेक को कैसे समझाऊं?....विवेक क्या कहता है? यत्र जीव-तत्र शिव........ मगर..., मगर यह तो कमजोरी प्रकट करने का समय नहीं. रेल उलटने की आवाज जरूर मिलिट्री कैंप तक पहुंची है, वे अभी अभी यहां आकर इस पहाड़ी का चप्पा चप्पा छान मारेंगे. मगर मगर मेरा यह शरीर....(खांसते हैं और लंबी सांसें लेते हुए हांफने लगते हैं. मंच पर स्वाभाविक प्रकाश होता है. दधी और रूपनारायण, गोसाईं को लेकर चट्टान पर बिठला देते हैं.)

गोसाईं : हूं (लंबी सांस लेकर) भिभिराम भी रोता-धोता घनपुर को ढूंढने चला गया है. वे बेचारे दोनों साथ-साथ आये थे. (खांसते हैं) उफ्, अगर थोड़ी आग जला सकते. नहीं तो कब किस क्षण यह जान उड़ जाये, पता नहीं.

रूप : मगर यहां तो आग जलाना ठीक नहीं होगा.

गोसाईं : बात तो सही है. लेकिन मैं तो और एक कदम भी आगे बढ़ नहीं सकता. तुम लोग मुझे यहीं छोड़ जाओ.

रूप : भला, आपको छोड़ क्यों जायें?

(अचानक दूर अलसेसियन कुत्ते के भौंकने की आवाज आती है) वो, पुलिस अफसर शइकीया का अलसेसियन कुत्ता.

गोसाईं : मतलब हम जाल में फंस चुके हैं. अब एक ही रास्ता है, यहां जब तक लोग रहेंगे, कुत्ता भी इसी ओर आयेगा. मैं यहीं रहता हूं, तुम लोग इस उलटी दिशा से यहां से भाग जाओ.

रूप : भला, आप को ऐसे छोड़ कर......

गोसाईं : मुझे छोड़ न सको, तो तीनों की मौत का शिकार होना पड़ेगा. तुम लोगों को और काफी काम करना है. मेरी प्राणवायु तो यों ही खत्म हो चुकी है. दमें की खांसी ने छाती को टुकड़े टुकड़े-सा कर डाला है. कलेजा रुक सा रहा है. अचानक कभी धड़कन बंद हो जाती है. इससे भी बड़ी बात, मेरे प्राण तो यों ही खत्म हो चुके हैं, इस हाथ में इंसान का खून लगा हुआ है. यह मुझसे सहन नहीं हो पा रहा है. मेरा विवेक नष्ट हो गया है. झूठ बोलकर अब कोई फायदा नहीं, मैं अहिंसक संग्राम का ही सिपाही हूं.

रूप : प्रभु, हम आपको यहां से उठाकर ले जा सकेंगे.

गोसाईं : नहीं, नहीं सकोगे. अब मुझे ले जा नहीं सकते. तुम लोग तुरंत यहां से निकल जाओ. तुम लोग जिंदा रहो, दूसरों से मिलकर तुम लोग कहना-सेना-नायक का आदेश है— क्रांति को आगे बढ़ाना है...

—और सिर्फ एक बात याद रखना—गोसानी की अगर कोई संतान हो, लड़का हो या लड़की, अगर उन सबने अब भी जिंदा रखा है— तो तुम सब क्रांतिकारी ही उसकी देख-भाल करना. अब बात करने का समय नहीं. जाओ-जाओ-चले जाओ. □

असमिया नाट्य रूपांतर : अरुण शर्मा
हिंदी अनुवाद : नवारुण शर्मा

संक्षिप्त रूपांतर : कांता चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ययाति

विष्णु सखाराम खांडेकर

स्वयंवद्

'ययाति' से पूर्व मैं काफी लिख चुका था. वह सारा लेखन शब्द-अर्थ, कल्पना-भावना, और विचार आदि के सौंदर्य का प्रतिबिंबन करता था. उसके अधिकांश के द्वारा एक सामाजिक ढांचा भी प्रस्तुत हुआ. पर सौ-सौ दुख-सुख-भरे मानव मन को, उसकी आंखों आगे उतराते सोनल सपनों को, और उसे भयभीत करने वाली सनातन समस्याओं को चित्रित करने में सामाजिक ढांचा प्रायः अपर्याप्त ठहरता है. उस समय प्रतीति होती है कि पुराण-कथाओं को नानी-दादी की कहानी बताकर उपेक्षित करना कितना अर्थहीन है.

ऐसा ही एक संवेदनशीलता का क्षण था जब मन में इस उपन्यास का बीज बोया गया. मेरे चारों ओर का समाज भौतिक समृद्धि के एकांगी प्रभावों में पड़ा परंपरागत नैतिक मूल्यों को नष्ट करने में प्रवृत्त था. ऐसा लगता मानो मदमस्त हाथी के पांवों तले कोमल-कोमल फूल रौंदे जा रहे हों. सत और असत, पाप और पुण्य के बीच की सीमा रेखाएं अधिकाधिक अस्पष्ट होती जा रही थीं. दूसरों के दुख के प्रति जो सहज संवेदनशीलता मानव के मन में होती है वह क्षीण हो चली थी. समाज की मनश्चेतना पर लोभ का अनिर्बंध अधिकार था. प्राचीन आस्थाओं को ढहाया जा रहा था और उनके स्थान पर नयी आस्थाएं निर्माण करने के प्रयत्न असफल हो रहे थे. अधिकांश समाज इस भ्रमजाल में फंसता जा रहा था कि इंद्रिय-सुखों को छोड़ जीवन में पाने के लिये और कुछ नहीं होता. यह एक बहुत ही भयावह अनुभव था : और इसी अनुभव ने मुझे प्रतीति करायी कि जिस सत्य का उद्घाटन आज के युग के लिये आवश्यक है उसे ययाति की पुराण-कथा के द्वारा किया जा सकता है.

ज्यों-ज्यों मैं इस उद्देश्य से उस कथा के भीतर पैठा, मुझे लगता गया कि निर्बंध लोभ और निरंकुश कामवासना में परिणामों की दृष्टि से आश्चर्यजनक साम्य है. जीवन का रूप ऐसा हो चला था मानो किसी नदी में भयंकर बाढ़ आयी हो और वह चारों ओर की धरती को निगल ले. 'ययाति' के द्वारा मैंने इसी सबका चित्रण करने का प्रयत्न किया है.

26 फरवरी, 1976 को
पुरस्कार समर्पण समारोह
के अवसर पर व्यक्त विचार

निवेदक ययाति : देवयानी को जब पता चला, तब उसका चेहरा उतर गया. उसका पासा उस पर ही पलट गया था. दिन डूबा. रात होने लगी थी. प्रत्येक तारे के साथ शर्मिष्ठा की स्मृति मेरे मन में खिलने लगी. मैं महल में मंचक पर था, और वह अभागिनी, किसी निर्जन स्थान में धरती पर सो रही होगी. मैं अत्यंत अस्वस्थ हो उठा. मन को कुछ शांति मिले यह सोचकर मैंने मदिरा पी ली. धीरे-धीरे मेरी आंख लग गई. सुबह बहुत अशुभ समाचार मिला. माधव का स्वास्थ्य अचानक बिगड़ गया था. उसे तीव्र ज्वर था. उस रात शर्मिष्ठा को छोड़ने गया था, तो मूसलाधार वर्षा थी. भीगने के कारण उसकी यह दशा हुई थी. मैं माधव के घर गया. नन्ही तारका, मुझे गुड़िया का दूल्हा बनाने वाली, अब बड़ी हो गयी थी. मुझे देखकर वह शरमाई. माधव मछली की भांति तड़प रहा था.

उस रात भी मुझे नींद न आई. मैंने फिर से प्याला उठाया. उसमें मदिरा का समुद्र था.

आठ दिन हुए. माधव का ज्वर न हटा. बहुत उपाय किये. किंतु उसकी देह के पिंजड़े से प्राण पंछी कब उड़ गया, किसी को पता न था. माधव से अंतिम विदा लेकर मैं लौटा. वह रात-रात नहीं, क्षण-क्षण में फुफकारकर मुझ पर आक्रमण करनेवाली नागिन थी वह. मृत्यु के बारे में सोचता, मैं अपने महल में तड़पता रहा. मेरा हाल देखने, देवयानी वहां फटकी भी नहीं. मैंने बहुत मदिरा पी. नशे में मुझे स्वप्न दिखाई देने लगा. एक चिता जल रही थी. उस चिता में मेरा ही एक-एक अवयव जलकर भस्म हो रहा था. मदिरा को छोड़कर अन्य सहारा नहीं था. धीरे-धीरे नशा मुझ पर चढ़ गया. वह उन्माद दूसरे उन्माद की स्मृति कराने लगा. मुकुलिका, अलका, देवयानी, शर्मिष्ठा—मैं उठा, महल का द्वार खोलकर मैं बाहर निकल पड़ा.

(प्रवेश : ययाति, देवयानी)

देवयानी : शर्मिष्ठा यहां नहीं है, तभी आज मेरी याद आई?

ययाति : मुझे शर्मिष्ठा भी चाहिये. तुम भी. और भी जितनी सुंदर लड़कियां हों, वे सब चाहिये. स्वर्ग की सारी अप्सराएं. मैं राजा नहुष का बेटा हूं. पुरुरवा का पोता.

दे : मेरे समीप नहीं आइये.

य : मेरे पिता को इंद्राणी नहीं मिली. पर मैं उसे प्राप्त करूंगा. दुनिया की प्रत्येक सुंदर स्त्री—एक फूल तोड़ो, सूंघकर फेंक दो. दूसरा फूल तोड़ो, सूंघकर....

दे : दूर हो जाइये. मैं कौन हूं, जानते हैं आप?

य : तुम मेरी धर्मपत्नी हो.

दे : मैं शुक्राचार्य की कन्या हूं. मदिरा पीकर मेरे महल में न आने की आपने शपथ ली थी. वह आपने तोड़ दी. मेरे पिताजी तपस्वी हैं, आप जानते हैं. मुझे लगता है जब तक वह आप को घोर अभिशाप नहीं देते, आप ठिकाने नहीं आयेंगे.

य: शर्मिष्ठा कहां है? राक्षसनी. तुम जैसी दुष्ट स्त्री संसार में नहीं है.

दे : दूर हो जाइये. शुक्राचार्य के शाप से आप पत्थर बन जायेंगे....

य : नहीं. मैं—आगे नहीं बढ़ूंगा. मैं...पीछे...

दे : पहले शपथ लीजिये.

य : लेता हूं, लेता हूं.

दे : आप मेरे शरीर का भविष्य में कभी स्पर्श नहीं करेंगे. मेरे पिताजी का नाम लेकर शपथ लीजिये.

य : लेता हूं. मैं शपथ लेता हूं.

ययाति निवेदक : पराभूत होकर मैं उस महल से बाहर निकला. मैंने निश्चय किया, जिस महल में पत्नी का स्पर्श करना मना है, वहां ठहरना व्यर्थ है. अशोकवन में रहने का मैंने निश्चय किया. अशोकवन में मेरे जाने से पहले एक नये गुरु महाराज अपने शिष्यों के साथ आ ठहरे थे. मैंने सोचा कि मनःशांति का कोई मार्ग कदाचित वह मुझे सुझा पायें.

मैं मदिरा पीकर उस पवित्र स्थान में गया था, इसलिये मैंने क्षमा मांगी. हंसकर गुरु महाराज बोले, "मनःशांति का आधा मार्ग तो आपने स्वयं ढूंढ लिया."

मैं अचंभित हो गया. वह आगे बोले, "यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युलोक है. यहां के दुःखों को भुला देने के लिये दो ही औषधियां यहां उपलब्ध हैं. मदिरा और मदिराक्षी. इस संसार में दुख और सुख, यही दो सत्य हैं. बाकी सब माया. मैं भक्तों को तीर्थ के नाम मदिरा देता हूं. आपको मनःशांति देने वाली देवियां मेरे वश में हैं. उनमें से किसी की भी आप आराधना करें. आइये.''

मुझे लगा कि मैं किसी पर्वत शिखर से धड़धड़ाता हुआ, किसी गहरी खाई में गिर रहा हूं. उस खाई का कोई अंत न था.

शर्मिष्ठा निवेदिका : उस रात, सघन अंधकार में, मूसलाधार वर्षा में मुझे छोड़कर माधव चला गया था. महाराज ने मेरे प्राण बचाये. किंतु अपनी प्यारी शर्मिष्ठा को इस प्रकार आंधी पानी में छोड़ना उन्हें कैसे अच्छा लगा. वह कहते, 'शर्मिष्ठा, यह राज्य, मुझे नहीं चाहिये, मैं तुम्हारे साथ चलता हूं' तो मेरा कितना साहस बढ़ता. मैं उन्हें आने न देती. किंतु उनके मीठे शब्द मेरे कानों में गूंजते रहते.

पिशाच की भांति चलनेवाली हवा, अंधा कर देनेवाला अंधेरा, डाकिनी की तरह झपट पड़ने वाली बिजली,...मैं रात जंगलों में, पहाडों पर से, कांटों में से चलती रही. सुबह मेरे सामने प्रश्न खड़ा हुआ. कहां जाऊं? पिताजी के वहां जाती, तो शुक्राचार्य के श्राप का भय था. वह संपूर्ण (राक्षस) कुल का ही नाश कर देते. इसमें सच, भरे पूरे संसार में मनुष्य कितना अकेला है, इसकी मुझे प्रतीति होने लगी. एक दिन मंदिर में एक बूढ़ी दयालु स्त्री मिली. वह मुझे घर ले गई. चार दिन बड़े शांति से बिताये. किंतु पांचवीं रात उसके पति महाशय ने अपना कुंठित रूप दिखाना चाहा. मैं पुरु को लेकर वहां से भागी. गांव के बाद गांव पीछे छोड़ते मैं चलती रही.

प्रवेश-1

आदमी : भाईयो सुनो. हस्तिनापुर की महारानी देवयानी के महल से एक सुंदर दासी भाग गई है. उसके साथ एक बच्चा है. यह दासी व्यभिचारिणी है. उसे पकड़कर महल पहुंचाने वाले को बहुत बहुत इनाम मिलेगा...

शर्मिष्ठा निवेदिका : कोई व्याघ पीछा कर रहा हो, तो हरिणी जिस प्रकार भागती है, उस प्रकार, नगरों को टालकर, मैं भागती रही.

एक दिन एक नन्हा-सा पक्षी सामने से उड़ता गया. उसका पीछा करने का पुरु ने हठ पकड़ा. मैं पगडंडी के आगे आगे चलती गई. सामने एक विशाल शिलाखंड कछुए के समान पड़ा था. उसके तले गहरी खाई थी. मेरा मन आकर्षित हुआ. अपूर्व दृश्य था. मुझसे रहा न गया...

प्रवेश – 2

यति : ठहरो.....

शर्मिष्ठा, तुम यहां कैसे?

शर्मिष्ठा : मैं जानबूझकर, हस्तिनापुर छोड़कर चली आई.

यति : क्यों?

श : काका को उनका भतीजा दिखाने. मैंने सोचा, वह स्वयं तो हस्तिनापुर आयेंगे नहीं. मैं ही जाकर उन्हें उनके कुल का यह रत्न दिखा दूं.

यति : मेरा भतीजा? ययाति का पुत्र?

श : हां....

यति : ताऊ देख रहे थे, कि भतीजे का एकाध चुंबन मिलता है कि नहीं. महाशय सो रहे हैं. सोने दो. चूंकि यह मेरे जीवन का पहला चुंबन होगा, उसे शुभमुहूर्त पर ही लेना चाहिये...

भाभी. हिमालय की तलहटी में मेरी पहचान के वन्य लोग रहते हैं. मेरे प्रति उनकी श्रद्धा है. आप वहीं चलो. वह तुम्हारी रक्षा करेंगे.

शः वहां मैं पर्णकुटी बनाऊंगी. वहां हम रहेंगे. मुझे आप अपनी सेवा करने का अवसर दे दीजिए.

यति : यह संभव नहीं. कचदेव उग्र तपस्या करने वाले हैं. संजीवनी खो देने के कारण दैत्यगुरु शुक्राचार्य उससे भी उग्र तपस्या करने जा रहे हैं. एक और प्रभावशाली विद्या प्राप्त करने का उनका उद्धेश्य है. जीवित मनुष्य केवल मंत्र से ही मारा जाये, यह है वह विद्या.

श : यह तो विध्वंसक विद्या है.

ययाति की नाट्य प्रस्तुति का एक दृश्य

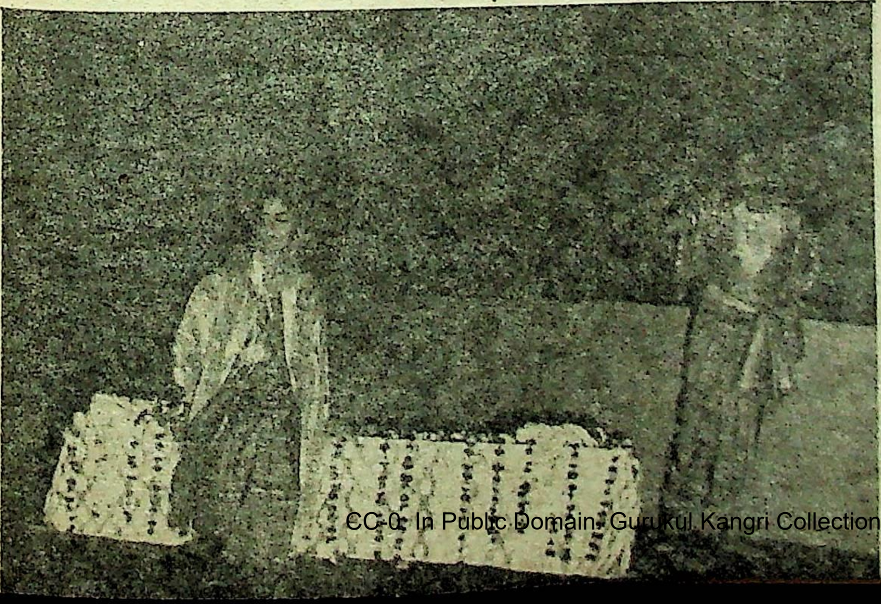

यति : इसीलिये कच भी उग्र तपस्या कर रहा है. शुक्राचार्य की विनाशकारी शक्ति को रोकने के लिये. मैं भी कच के साथ अपने ढंग से तपस्या करूंगा. मेरा यह कर्तव्य है. अशोकवन से मैं भागा, तो मुझ पर पागलपन का भूत सवार था. कच ने भाई के समान मेरी सेवा की. मुझे फिर से मनुष्य बनाया. नहीं तो मेरा स्त्री-द्वेष मुझे राक्षस बनाता.

श : क्यों इतना स्त्री द्वेष है आपके मन में?

यति : बचपन से ही पिताजी के शाप के बारे में सुनकर मेरा संतुलन खो गया था. इंद्राणी के कारण यह हुआ था, जानकर मैं सारी स्त्रियों से द्वेष करने लगा.

श : यह जाग रहा है. अब इसे आर्शीवाद दीजिये.

यति : चिंता न करना. आज भले ही तुम्हारा पुरु वनवासी हो, कल वह हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठेगा.

निवेदिका शर्मिष्ठा : पुरु बड़ा होने लगा जैसे एक-एक अंश चंद्रमा बढ़ता है. यती की कृपा से अरण्य में मैं किसी वनराणी की भांति रहती थी. छोटा-सा धनुष बाण लेकर पुरु निशाना लगाने लगा. समीप के आश्रम में वेदाध्ययन शुरू किया.

आश्रम में एक दिन हस्तिनापुर से आये तपस्वी ने बताया कि महाराज ने राजकार्य छोड दिया है. देवयानी ही सारा शासन चला रही है. मैं उस दिन उदास हो गयी.

(प्रवेश शर्मिष्ठा, पुरु)

शर्मिष्ठा : भगवान. उन्हें सुखी रखना.

पुरु : मां, उन्हें याने किन्हें?

श : उन्हें याने उन्हें.

पु : उनका नाम बताओ.

श : तेरे बड़े होने पर बताऊंगी.

पु : अब तो मैं बड़ा हो गया हूं. अचूक निशाना लगा सकता हूं. पेड़ पर चढ़ सकता हूं.

श : तुझे इससे भी बड़ा होना है. बहुत-सी विद्याएं सीखनी हैं. बहुत-सी लड़ाइया जीतनी हैं.

पु. : लड़ाइयां तो मैं अभी भी जीत सकता हूं. बताओ, किससे लड़ूं?

श : अभी लड़ाई नहीं लड़नी बेटे. आगे चलकर लड़नी है. तू सोलह बरस का हो जा. तब उन्हें यानि किन्हें यह बताऊंगी.

शर्मिष्ठा निवेदिका : पुरु सोलह वर्ष का हो गया. एक दिन मैंने उसका चित्र बनाया. वह हूबहू महाराज के समान बना. अब मैंने उसे बताया कि वह हस्तिनापुर का राजपुत्र है. इतने वर्षों का रहस्य मैंने उसे बताया—किंतु उसने मुझे अपना रहस्य नहीं बताया. सुनहरे बालोंवाली एक प्यारी-सी लड़की से प्रेम हो गया था उसे. उस लडकी की मौसी कभी हस्तिनापुर में ही दासी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो तीन वर्ष बीत गये. एक दिन प्रक्षुब्ध मनस्थिति में वह शिकार से लौट आया. उसने सुना था कि उत्तर दिशा में दस्युओं ने उत्पात मचाया था. उनसे लड़ने युवराज यदु बड़ी सेना लेकर निकल पड़े थे. उस रात मुझे नींद न आई. महाराज स्वयं क्यों नहीं गये. पुरु भी रात भर करवटें बदलता रहा. दूसरे दिन वह शिकार पर गया. रात हो गयी फिर भी नहीं लौटा, उसके साथी भी नहीं आये. इस प्रकार पहले कभी बिना पूछे पुरु घर से नहीं गया था.

दूसरे दिन पता चला कि वह साथियों के समेत लड़ाई पर गया है. अलका के हाथ मेरे लिये एक चिट्ठी दी थी—

श : युद्ध का समाचार इतनी दूर प्राप्त होने में समय लगेगा. क्यों नहीं हम स्वयं हस्तिनापुर के निकट किसी गांव चलतीं? वहां आने जाने वाले दूतों से युद्ध का समाचार मिलता रहेगा.

अ : मैं भी चलूंगी आप के साथ.

श : चलो. तुम्हारी मां से अनुमति लेनी होगी.

निवेदिका शर्मिष्ठा : मैं हस्तिनापुर लौट रही थी. अठारह वर्षों के बाद. उतनी ही भ्रमग्रस्त मन:स्थिति में. मार्ग में बड़े-बड़े वृक्ष ज्यों के त्यों हैं मंदिरों के कलश वैसे ही चमक रहे हैं.

किंतु शर्मिष्ठा—वह बदली है. पहली शर्मिष्ठा प्रणयिनी थी. अब वह केवल मां है. पुरु कुशल से तो होगा न? विजयी यदु के साथ वह हस्तिनापुर गया तो, क्या देवयानी उसे पहचानेगी? मेरे साथ अलका है. कितनी प्यारी लड़की. एक किनारे जाकर चुपके से आंख पोंछती है, तो मेरा दिल भर आता है.

हस्तिनापुर के निकट एक गांव में अशुभ वार्ता आ धमकी. युवराज यदु को दस्युओं ने पकड़ लिया था. शत्रु का सिर काटकर उसे भाले की नोक पर लगाकर जुलूस निकालने की दस्युओं की रीति थी. यदु का क्या होगा? एक विजयी वीर के रूप में या भाले की नोक पर—

देवयानी निवेदिका : चारों ओर से आग लगी हो और बाहर निकलने का कोई मार्ग न हो तो, ऐसे मेरे मन की अवस्था हो गई है. शाम को वह समाचार आया.

मेरा यदु हार गया. क्या वह कुशलपूर्वक लौटेगा? मैं उसको आंसुओं से कब नहलाऊंगी? क्या मां का मन महारानी के मन से अधिक समर्थ होता है? महाराज के पराक्रम की बड़ी कथायें सुनी थीं.

यदु की मुक्ति के लिये वह स्वयं अवश्य जायेंगे. उन्हें समाचार देने अमात्य गये 'महाराज आकर मुझसे कहते मैं यदु को छुड़ाने जा रहा हूं. तुम दोनों की आरती उतारने को तैयार रहना.' तो मेरे हृदय का अंधकार प्रकाशित हो जाता. किंतु मदिरा और मदिराक्षी के नशों में क्या वह इतने मग्न थे, कि पिता के नाते कुछ कर्तव्य है, यह भी वह भूल गये?

मेरी मति भ्रष्ट हुई थी, जो मैं हस्तिनापुर की [illegible] मेरा विवाह न था. बलिदान था. विवाह बेदी की उस ज्वाला में अठारह वर्षों से मैं जल रही हूं.

तालियां बजाकर मेरी प्रशंसा करनेवाले यह नहीं जानते थे कि, हर नृत्य को देवयानी के कलेजे के रक्त ने रंगत दी है. पति ने उसे धोखा दिया था. एक चुड़ैल पर अपने प्राण निछावर किये. उस दुख को भुलाने के लिये रात को देवयानी बेहोश होकर नाच रही थी. क्या कलाकर के दुख से कला अधिक सजीव हो जाती है?

शर्मिष्ठा के पलायन का सारा रहस्य मैंने ज्ञात किया. महाराज ने मुझसे प्रतारणा की थी. अवश्य वह आगे पीछे शर्मिष्ठा को यहां लाकर उसे महारानी बनायेंगे. विष वृक्ष को अंकुर सहित उखाड देना चाहिए. मां बेटे का कांटा सदा के लिये अपने मार्ग से अलग कर देना चाहिए. मैंने घोषणा करवा दी. उनको पकड़ लाने वाले के लिए बड़ा पुरस्कार घोषित किया. किंतु शर्मिष्ठा और पुरु हाथ न लगे.

आजकल एक अज्ञात स्त्री का स्वर, मेरे कान में गूंजता रहता है, 'देवयानी तूने पत्नी धर्म का पालन नहीं किया.' कौन है यह स्त्री, जिसका न रंग, न रूप, न आकार है. आज जब यदु के पराभव का समाचार आया, तब भी कान में गुनगुनाई 'यह तेरे पाप का प्रायश्चित है. तू कभी सुखी नहीं होगी.' नहीं. पाप तो महाराज ने किया. उनके पाप का फल किसे नहीं मिला? माधव मर गया. उसकी अनाथ भतीजी तारका पागल हो गई. और मेरा लाड़ला यदु—

जब से महाराज को मैंने शपथ लेने का आग्रह किया, उस दिन से वह विमग्न रहने लगे. कभी मेरे हृदय वीणा की एक तार झंकार उठती, कहती, पगली. अभिमान छोड़ दे, महाराज जहां भी हों, वहां जा, जाकर कह दे—

राजराजेश्वर, आप क्या कर रहे हैं?

आप मेरे हैं, आप का कलंक मेरा कलंक है. मैं आपकी पत्नी हूं. आपका सुख मेरा सुख है. उस सुख के लिये आप किसी फूल की भांति देवयानी को मसल डालिये. किंतु अधर्म को रोकिए. पति धर्म का पालन कीजिये. पुत्र धर्म का विस्मरण न कीजिये. राजधर्म को बनाये रखिये.

किंतु दूसरे ही क्षण कच के वैराग्य की मुझे स्मृति आती और महाराज की विलास प्रियता से बहुत घृणा होती.

(प्रवेश : देवयानी, अमात्य)

दे : इतना विलंब क्यों हुआ?

अ : महाराज से भेंट नहीं हो रही थी.

दे : यह ज्ञात होने पर भी कि यदु को शत्रुओं ने पकड़ लिया है?

अ : जी महारानी.

दे : क्यों?

अ : सेवक को वह बात कहनी नहीं चाहिये. महारानी को वह सुननी नहीं चाहिये.

दे : महाराज विलास में मग्न थे ठीक?

अ : (सिर झुकाता है)

दे : अंत में महाराज से आपकी भेंट हुई कि नहीं?

अ : जी. हो गई.

दे : क्या कहा उन्होंने?

अ : मेरा समाचार सुनकर वह हंस पड़े. बोले, इतने वर्षों बाद महारानी को हमारा स्मरण हुआ, इसलिये हम अत्यंत ऋणी हैं. और...

दे : हां, बताइये. झिझकिये नहीं. मैं एक-एक शब्द सुनना चाहती हूं.

अ : महाराज बोले, शत्रुओं को कहो. वह महारानी को भी पकड़कर ले जायें. मुझे कोई आपत्ति नहीं. महारानी से अब मेरा कोई संबंध नहीं.

(दासी का प्रवेश)

दा : देवी. बड़ा आनंद का समाचार है. युवराज शत्रु की कारावास से छूट गये.

दे : कैसे छूटे? क्या पराक्रम कर दिखाया मेरे लाल ने?

दा : अं...कहते हैं किसी ने अपनी जान खतरे में डालकर उन्हें छुड़ाया.

दे : किसने? सेनापति ने?

दा : नहीं. कोई अज्ञात वीर है. युवराज की ही आयु का है.

दे : कौन है वह?

दा : हमारा सैनिक नहीं है. उस वीर को साथ लेकर युवराज महारानी के दर्शन के लिये आ रहे हैं (दूसरी दासी दौड़कर आती है).

दूसरी : देवी. दैत्यगुरु शुक्राचार्य की तपस्या समाप्त हुई. भगवान शंकर ने उन्हें अद्भुत विद्या वरदान में दी है. राक्षसराज्य में महोत्सव शुरू हुआ है.

दे : अठारह वर्षों के कष्टों के पश्चात् आज मेरी तपस्या सफल हुई. अब शर्मिष्ठा के विषय में मैं पिताजी से कहूंगी. वह महाराज को भी उचित दंड देंगे. और यदु-मेरा यदु सिंहासन पर बैठेगा. यदु का अभिषेक पूरा हो जायेगा.

(ययाति सो रहा है. मुकुलिका आती है)

मु : महाराज सुनहरा फूल प्राप्त हुआ है.

य : कहां-कहां है?

मु : अभी वह गुरुमहाराज के मठ में है.

य : पिछले 15 दिनों से अविरत पी रहा हूं—यदि उस के केश सुनहरे न हुए, तो मैं तुम्हारे केश कटवाकर नगर में से तुम्हें घुमाऊंगा...कहां मिली यह लड़की?

मु : यहीं.

य : तो इतने दिनों मेरी सेवा में क्यों नहीं लाई गई?

मु : क्षमा कीजिये महाराज. वह हस्तिनापुर की नहीं है. वह इस नगर में आज ही आयी है. अपने प्रियतम को ढूंढने.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य : (हंसता है) क्या उसे किसी ने बताया नहीं कि उसका प्रियतम यहीं अशोकवन में है?

मु : उसका प्रियतम युद्ध पर गया था. उससे किसी ने कह दिया कि वह युवराज के साथ नगर में आ रहा है. उस लड़की के साथ एक प्रौढ़ा भी थी. प्रियतम से मिलने की अधीरता में उसे पीछे छोड़कर लड़की नगरी में अकेली आ गई—वह मठ के एक शिष्य को मिल गयी.

य : अभी क्या कर रही है?

मु : बड़ी शैतान लड़की है. गुरु महाराज के भी वश में नहीं आ रही थी. तब उसे मठ की अंधेरे कोठरी में बंद कर देना पड़ा. वहां वह चीखने चिल्लाने लगी, इसलिये उसे बेहोशी की दवा दी है, दस घड़ी रात होने पर वह होश में आयेगी.

य : मूर्ख इतनी अधिक दवा क्यों दे दी?

मु : आज शुक्राचार्य जी आ रहे हैं. हमने सोचा महाराज दस घड़ी रात तक उनके साथ राजमहल में ठहरेंगे.

य : ययाति अभी इतना अरसिक नहीं कि सुनहरी बालों वाली परी छोड़कर वह जटाधारी शुक्राचार्य का आलिंगन रे. जा, उसे पालकी में बिठाकर इसी समय यहां ले आ.

(अलका मंच पर सोई हुई है. ययाति उसे देखकर अत्यंत चकित)

य : यह स्वप्न तो नहीं...अलका...नहीं...मेरी अलका...पुनः एक बार....

मु : महाराज, जल्दी बाहर आइये. महर्षि शुक्राचार्य और महारानी जी आयी हैं. महर्षि क्रोधित हैं. आपको बुला रहे हैं.

(ययाति शीघ्र ही वहां से निकलता है. बाहर देवयानी तथा शुक्राचार्य.)

(ययाति आता है. देवयानी मुंह फेर लेती है)

(ययाति लड़खड़ाते शुक्राचार्य को प्रणाम करता है.)

य : महर्षि मुझे क्षमा करें. मैं मोह का शिकार हो गया था.

शु : क्षमा मनुष्य के प्रथम अपराध को हो सकती है. मंजे हुए अपराधी के लिये दंड ही उचित है—देवयानी को ठुकराकर तुमने शर्मिष्ठा से प्रेम किया था?

य : हां.

शु : मेरी आज्ञा की अवहेलना?

य : महाराज, यौवन अंधा होता है.

शु : यौवन अंधा होता है न? तो ठीक है. मैं शाप देता हूं. इसी समय तेरा यौवन नष्ट हो जायेगा. तू बूढ़ा हो जायेगा.

दे : पिताजी, पिताजी यह आपने क्या कर दिया?

य : (हाथ जोड़कर) महाराज, मुझ पर दया कीजिये. मेरा मन अभी भी तरुण है. अभी भी मैं देवयानी के साथ आनंद से गृहस्थी कर लूंगा. यदि मेरा यौवन आप लौटा दें...

दे : पिताजी. मैं आंचल फैलाती हूं. इन्हें फिर से इनका यौवन दीजिये.

शु : वीर का बाण और तपस्वी का शाप कभी विफल नहीं होता. किंतु देवयानी मेरी लाडली कन्या है. और देर से ही क्यों न हो, किंतु इसके साथ गृहस्थी करने की इच्छा तूने प्रकट की है. इसलिये उःशाप देता हूं. तेरे ही कुल में, तेरा वार्धक्य स्वीकारने के लिये कोई तरुण यदि आनंद से तैयार हो जाये, तो तुम्हारा वार्धक्य उसे मिलेगा. तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् ही उसे अपना यौवन पुनः प्राप्त होगा.

ययाति निवेदक : शाप और उःशाप देकर शुक्राचार्य चले गये. मेरा वृद्ध कुरूप चेहरा देवयानी को दिखाते मुझे लज्जा आने लगी. उसी समय यदु एक अन्य युवक के समेत वहां आ गया. रंगमहल की ओर से धीरे से ध्वनि आयी. वह सुनहरी परी जाग रही थी. मुझे मेरा यौवन चाहिये था. मैंने यदु को समीप बुलाया. जब उसने मुझे पहचाना. तो वह चौंक उठा. "क्या मेरे लिए तू त्याग करने को तत्पर है?" मैंने उससे पूछा. यदु ने उत्तर दिया. "हां पिताजी, पितृदेवो भव, ऐसी धर्म की ही आज्ञा है." देवयानी चीख पड़ी. आज अठारह वर्ष बाद उससे बदला लेने का यह अवसर मिला है. उसकी आंखों के सामने मैं रंगमहल जाकर उस सुंदर तरुणी से अभिसार करूंगा. बदला लेने की वासना तथा मेरी कामुकता ने मेरी वृद्धि बाधर कर डाली. मैंने यदु से उसके यौवन की भीख मांगी. बदले में उसे अपना राज्य देने का प्रस्ताव रखा. यदु के आविर्भाव से ही उसका नकार प्रतिबिंबित हुआ. वह दूसरा तरुण आगे हुआ और बड़ी विनम्रता से बोला, "मैं आपका बुढ़ापा लेने को तैयार हूं". किंतु यह व्यवहार केवल मेरे ही कुल के व्यक्ति के साथ संभव था. इस पर वह युवक बोला कि उसके रक्त की एक एक बूंद पर मेरा अधिकार था, वह मेरा ही पुत्र था. शर्मिष्ठा का पुत्र—पुरू.....

मैंने पुरु की ओर देखा. यौवन की देहलीज पर खड़ा एक सुंदर पुरुष. भविष्य के कितने सुंदर स्वप्न उसकी आंखों के सामने लहराते होंगे. कोई तरुणी उसके लिये आंख बिछाए बैठी होगी. मेरा मन डगमगाने लगा.

चार घड़ी में कितना कुछ घटा था—देवयानी पुरु को देख क्रोध से भड़क उठी. पुरु के समीप जाकर बोली, "तू सच्चा पुरु है न? फिर सोच क्या रहा है. अपनी तरुणाई दे इन्हें और बदले में बुढ़ापा ले."

पुरु ने झट मेरे पैरों पर मस्तक रखा. जब उसने मस्तक उठाया, तो वह बूढ़ा हो चुका था...

और फिर, आज तक कभी न दिखा, मन का एक कोना मुझे दिखाई दिया. उसमें एक मंद ज्योति जल रही थी. स्वयं अपने लिये जीने में जितना आनंद है, उससे कितना ही अधिक आनंद दूसरे के लिये मरने में है. शुक्राचार्य ने मेरा बाह्यरूप बदल दिया. शर्मिष्ठा ने मेरा अंतरंग.

मैंने शर्मिष्ठा को धीरज देते हुए कहा कि पुरु पहले जैसा हो जायेगा. किंतु उसके लिये मुझे मृत्यु स्वीकारनी होगी. यह सुनते ही वह रोने लगी.

मेरा निश्चय हो चुका था. शुक्राचार्य का स्मरण करके केवल तीन बार कहना था—

यह उधार का यौवन मैं लौटा रहा हूं...

यह जिसका है, उसे वापस मिल जाये.

मैं मृत्यु को स्वीकारने के लिये तैयार हूं.

दो बार मैंने यह कहा, तीसरी बार कहने के लिये मुंह खोला ही था—इतने में सेवक ने आकर समाचार दिया. कचदेव आये हैं. मैं तत्काल मूर्छित हो गया.

मैं रुग्णशैया पर कई दिन रहा. कच का मंत्रपठन मुझे उल्लसित करता था. कितने योग्य समय पर कच पहुंचा था. शुक्राचार्य की भांति उसने भी तपोबल से बहुत सिद्धी प्राप्त की थी. परंतु अपनी सिद्धी शाप के नहीं, उःशाप के काम कच लाता था. उसने पुरु का यौवन उसे लौटा दिया.

पुरु का अपनी प्रेयसी के साथ—सुनहरी बालों वाली उस लड़की के साथ पुनर्मिलन हो गया. मैं रुग्णशैया पर रहा, उन दिनों एक और चमत्कार हो गया. देवयानी का जैसे पुनर्जन्म हो गया. वह सेवाशील, विनम्र और ममतामई हो गई. शर्मिष्ठा के साथ सखी-भाव से रहने लगी. कच को मैंने इस परिवर्तन का श्रेय दिया, किंतु उसने कहा कि वह पुरु की महानता का परिणाम था. पुरु ने जब मेरा वार्धक्य स्वीकार किया तो मैंने उसे राज्य दे दिया था. किंतु 'तुम मेरे बड़े भाई हो. राज्य पर तुम्हारा ही अधिकार है', कहकर उसने राज्य यदु को सौंपना चाहा. देवयानी का हृदय उसकी इस कृती से भर आया. अंत में प्रजा के आग्रह के कारण पुरु को राज्य लेना पड़ा, तब देवयानी भी बहुत आनंदित हुई.

जीवन में आसक्ति के अंतिम शिखर तक पहुंचने के पश्चात्, मैं विरक्ति का अनुभव चाहूं, यह क्रम प्राप्त था. मैंने वानप्रस्थ होने का निश्चय किया. मेरे साथ शर्मिष्ठा ही नहीं, देवयानी भी वन जाने को तैयार हो गई.

पुरु के राज्याभिषेक के दिन हम वन को निकले.

(प्रवेश : कच, ययाति, देवयानी, शर्मिष्ठा)

कच : क्या तुम तीनों की कोई इच्छा रही है?

(देवयानी, शर्मिष्ठा नहीं कहती हैं)

कच : ययाति. क्या तुम्हारी कोई इच्छा रही है?

य : यही, कि हम तीनों, बिना कुछ छिपाये, अपनी कथा संसार को सुनायें. जिससे संसार यह सीखे कि काम और अर्थ महान और प्रेरक पुरुषार्थ हैं. कि यह स्वैर भागनेवाले पुरुषार्थ हैं. वह शीघ्र विवेक खो सकते हैं. उनकी लगाम आठों पहर धर्म के हाथ में होनी चाहिये. □

संक्षिप्त रूपांतर : कांता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बांग्ला उपन्यास-त्रयी   तीन युग : तीन पात्र : मगर कथा-एक

तीन पीढ़ी

आशापूर्णा देवी

स्वयंवद्

मेरी युवावस्था के अनदेखे प्रश्नों ने लगभग यह रूप ले लिया है : जिस समाज को मानव ने ही निर्मित किया है उसी समाज की दृष्टि में आदमी के बीच इतना अंतर क्यों है? हमारे समाज की बनावट में असंगत असमानताएं क्यों हैं? मुट्ठी-भर शक्तिशाली व्यक्तियों पर यह धुन क्यों सवार है कि वे ही इस दुनिया पर राज करें? अकसर हमारा समाज पुरुषों के अनुचित कृत्यों को सहन कर लेता है, जबकि स्त्रियों को एक मामूली-सी कमजोरी के लिये भी कड़ा दंड दिया जाता है. यह भेदभाव क्यों हो? जीवन के हर व्यापार में स्त्री को उसके अधिकार से क्यों वंचित रखा जाय? वे हरम के दमघोट अंधेरे में अपना जीवन काटें, ऐसा क्यों?

यह स्वाभाविक ही था कि मैं अपने विचार पुरुषों से अधिक स्त्रियों पर केंद्रित करूं. क्योंकि मुझे अपना बचपन और युवावस्था रूढ़िवादिता के प्रतिबंधों में बिताने पड़े हैं. स्त्रियों की असहाय अवस्था और अव्यक्त पीड़ा ने मुझे अत्यधिक विचलित किया. इन सारे उद्घाटनों ने मुझे दिन पर दिन दुखित किया और मेरे मस्तिष्क में विद्रोह और प्रतिवाद का एक विशाल पर्वत खड़ा कर दिया. यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्रथम प्रतिश्रुति की नायिका सत्यवती मेरे हृदय के उन मौन प्रतिवादों का प्रतीक है.

'प्रथम प्रतिश्रुति' मेरी कथात्रयी का पहला सोपान है. यद्यपि यह अपने आप में संपूर्ण है किंतु अन्य दोनों-'सुवर्णलता' और 'वकुलकथा'-एक-दूसरे की पूरक हैं. इन तीनों उपन्यासों के माध्यम से मैंने विगत, मध्य तथा वर्तमान कालखंड़ों की तीन पीढ़ियों के सामाजिक इतिहास को पकड़ने की कोशिश की है. इतिहास ने इतना ही किया कि इस संसार के उत्थानों और पतनों का, विद्रोहों-युद्धों और साम्राज्यों के उत्कर्ष तथा अवसान का लेखा-जोखा रखा. किंतु वह इतिहास ढंके-छिपे घरों की घटनाओं का ब्योरा नहीं होता. वहां भी उथल-पुथल और विद्रोह होते हैं, आंदोलन होते हैं और मुक्ति प्राप्त करने के लिये निराशोन्मत दुस्साहस किये जाते हैं. अंतःपुरों के जीवन में कायापलट ला देने वाले परिवर्तन का आलेख सामाजिक उपन्यासों में ही सुरक्षित है. मेरे यह तीन उपन्यास उस सामाजिक इतिहास के कुछ चरणों को अंकित करने के मेरे विनम्र प्रयत्न का ही उदाहरण हैं.

26 अप्रैल, 1978 को
पुरस्कार समर्पण समारोह
के अवसर पर व्यक्त विचार

सत्यवती

सत्यवती की यह कहानी मेरी लिखी हुई नहीं है. यह कहानी वकुल की कापी से ली गयी है. वकुल ने कहा था, इसे कहानी कहना चाहो, कहानी है, वास्तव कहना चाहो, तो वास्तव.

वकुल सुवर्णलता के बहुत से बाल-बच्चों में से एक है. उसके अंतिम ओर की लड़की.

सुवर्णलता के घर में वकुल की भूमिका अपराधी की थी जैसे विधाता का यह निर्देश हो कि उसे किसी अंजान अपराध से हर समय संत्रस्त रहना पड़ेगा.

इसीलिये वकुल का शिशु-मन एक अजीब धूपछांही परिमंडल में तैयार हुआ था, जिसका कुछ हिस्सा तो सिर्फ भय, संदेह, आतंक और घृणा का था और कुछ ज्योतिर्मय रहस्यपुरी की चमकती चेतना से दीक्षित. फिर भी मनुष्य को प्यार किए बिना नहीं रह सकती वकुल. मनुष्य को प्यार करती है, जभी तो...

आज के बंगाल की अनगिनत वकुल-पारुलों के पीछे हैं वर्षों के संग्राम का इतिहास. वकुल-पारुलों की मां-नानी, दादी-परदादियों के संघर्ष का इतिहास. गिनती में वे असंख्य नहीं थीं. बहुतों में वे एक-एक थीं. वे अकेली आगे बढ़ीं. आगे बढ़ीं खाई-खंदक पार करके, चट्टानें तोड़-तोड़कर, कंटीली झाड़ियों को उखाड़ती हुई. रास्ता बनाते हुए शायद ही कि दिशा खो बैठीं, अपनी बनाई हुई राह को छेंककर बैठ पड़ीं. उसके बाद दूसरी आयी, उसने उनके किए काम को अपने हाथ में ले लिया. और राह इसी तरह तो बनी जिससे होकर ये वकुल-पारुल आगे बढ़ती जा रही हैं. और ये वकुल-पारुल भी खट रही हैं बेशक. बिना खटे काम कैसे चले? पांव-प्यादे चलने का रास्ता बना जाने से ही तो नहीं हो गया.

रथ चलने का रास्ता चाहिये न.

वह रास्ता कौन बनाएगा, कौन जाने? वह रथ कौन चलाएगा, कौन जाने? जो लोग चलाएंगे, अलस कौतूहल से इतिहास के पन्ने पलटते-पलटते शायद सत्यवती को देखकर हंस पड़ें.

नाक में बुलाकी और पैरों में झांझर पहने आठ बरस की सत्यवती को. कभी वकुल भी हंसती थी.

अब नहीं हंसती. काफी दूरी पार करके आने के बाद वह पथ की वास्तविकता को समझना सीख गयी है. इसीलिये जिस सत्यवती को वकुल ने कभी आंखों देखा तक नहीं, उसे उसने स्वप्न और कल्पना, ममता और श्रृद्धा में देखा.

जभी तो वकुल की बही में सत्यवती की ऐसी साफ शक्ल आंकी हुई है.

नाक में बुलाकी, कान में करनफूल, पैरों में झांझर, वृंदावनी छाप की आठ हाथवाली साड़ी पहने आठ बरस की सत्यवती. कोई साल भर पहले विवाह हो चुका है, ससुराल अभी नहीं गयी. अपने रोब-दाब से मुहल्ले के सारे लड़के-लड़कियों की अगुआ बनी जी चाहे जहां खेलती फिरती है. सत्यवती की मां, दादी, बड़ी चाची, फुआ-कोई भी उसे दबा नहीं पाती.

दबा नहीं पाती, शायद इसलिए कि उसकी मनमानी को बाप का कुछ सहारा है.

सत्य धिक्कार से दबती है, डांट से नहीं.

नित्यानंदपुर के कविराज रामकाली चैटर्जी की एकमात्र पुत्री सत्यवती ने असंख्य बाधाओं और विपत्तियों के बीच अपने चलने का रास्ता इसी तरह स्वयं तैयार कर लिया था. जीवन-संग्राम में विजयिनी होने के हेतु अग्रसर, अंत में उसे हार माननी पड़ी अपनी सास एलोकेशी के सामने. उसका संस्कार मुक्त मन स्तब्ध रह गया जब एलोकेशी ने सत्यवती की एकमात्र बालिका कन्या सुवर्णलता का विवाह उसको बिना बताये कर दिया. संसार के सब बंधन छिन्न-भिन्न कर क्षोभ और दुख से आहत सत्यवती, अपने पति, संसार, संतान, सब कुछ को त्यागकर चली गयी. पीछे छोड़ गयी इस घटना की स्मृति-अपनी मां के नाम पर लड़कियों के लिए स्कूल स्थापित करने की आशा लेकर.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्णलता

यह युग-वह युग-यह तर्क तो सदा का है, पर उस 'काल' को चिह्नित कैसे किया जाये? एक-एक काल की आयु समाप्त होते ही क्या हर-एक-बार परदा गिरता है, जैसा परदा रंगमंच पर गिरता है?

नहीं, परदे का अवकाश कहां? अविच्छिन्न है वह स्रोत, फिर भी 'यह जमाना, वह जमाना, यह युग-वह युग' कहकर अभिहित भी किया जाता है. समाज, मनुष्य की रीति-नीति, चाल-चलन यही सब काल के एक-एक टुकड़े को पकड़े रहते हैं, इतिहास उसका नाम देता है, अमुक युग-फलां युग.

किंतु काल को अतिक्रम भी तो करता रहता है कोई-कोई, नहीं तो उस प्रवहमान धारा को आगे कौन बढ़ाये-जो बीच-बीच में बुझ-सी जाती है, निस्तरंग हो जाती है? फिर भी उन्हें वर्तमान की पूजा शायद ही मिलती है—लांछित होते हैं वे, उपहास के पात्र होते हैं, विरक्ति-भाजन बनते हैं.

सुवर्णलता वह सब नहीं जानती थी. वह अपनी गृहत्यागिनी मां की निंदा का संबल लिए गिरस्ती में आयी थी. इसीलिए उसने यह जाना था कि वह केवल अपने असार्थक जीवन की ग्लानि का बोझ लेकर ही दुनिया से बिदा हो रही है. यह जाना था कि उसके लिए किसी का कुछ जाता-आता नहीं.

उसके मरने पर उसकी सत्रह साल की कुंवारी बिटिया को पैरों तले जमीन ढूंढ़े नहीं मिली, सुवर्णलता यह जानकर नहीं गयी, जानकर नहीं जा सकी कि उस लड़की के लिए सुवर्णलता का मृत्युदिन ही जन्मदिन है.

दक्षिण के उस चौड़े बरामदे से, जहां सुवर्णलता संसार से आंखें फेरकर लेटी रहती थी, वह लड़की मानो हिलना ही नहीं चाहती. उस जगह के सूनी हो जाने पर ही उसने मानो सुवर्णलता को नयी नजर से देखना सीखा.

चूंकि देखना सीखा, इसलिए सोचना शुरू किया. जीवन आरंभ करने के समय सुवर्णलता को यदि दक्षिण का एक बरामदा मिला होता, तो शायद सुवर्णलता के जीवन का इतिहास और ही होता.

वह मकान भी तो सुवर्णलता की आंखों के सामने ही बना था. अपने सम्मिलित पुराने मकान के हिस्से का रुपया मुट्ठी में पाते ही उसके बुद्धिमान जेठ, देवर, पति ने झटपट मकान की बुनियाद डाल दी. कहा, रुपयों के पर होते हैं. उन्हें गाड़ रखना ही अक्लमंदी है. गली के भीतर है सो ठीक, बड़े रास्ते के मुंह पर ही है, दो बार नहीं मुड़ना पड़ता.

उसी घर में ही तो तीस साल काट गयी सुवर्णलता. वहीं आठेक बार सौरी में गयी, हंसी, काम-काज किया, आराम किया, संसार की सारी ही लीलाओं में हिस्सा लिया—फिर भी, पिंजरे की पीड़ा के बोध से हर पल छटपट करती रही.

लेकिन ये बातें बहुत बाद की हैं. जब सुवर्णलता की कनपटी के पास रूपहले तार की झलक आयी, जब सुवर्णलता के लंबे उन्नत और ससकते गठन में क्षय शुरू हुआ.

पहले, जब सुवर्णलता अपनी पतित्यागिनी मां के निंदनीय इतिहास का संबल लिए सिर झुकाए ससुराल में बसने आयी थी, जब किसी भी उपलक्ष्य पर सुवर्णलता की सास सुवर्णलता को उसकी ब्याहता बैंगनी रंग की जबरजंग बनारसी साडी और बड़े-बड़े बूटेदार मखमली जाकिट से सजा-संवार देती और कोई मिलने-जुलने आती तो उसके सामने नमक-मिर्च लगाकर बहू और बहू के मैके की निंदा करती...तब?

सुवर्ण ने तब तक छूटते ही जबाव देना नहीं सीखा था. सास जब मां का प्रसंग उठातीं, वह शर्म से मर जाती और अंत तक सारा ही आक्रोश और अभियोग मां पर ही जा रहता.

क्यों, उसकी मां और सबकी मां-जैसी क्यों नहीं है? पति और घर को त्याग कर क्यों वह अपने बच्ची-बच्चों का मुंह हंसा गयी? तो फिर बच्चों का स्नेह कुछ भी नहीं. उसके लिए जिदही सबसे बड़ी है? यहां तक कि चिट्ठी देकर भी कभी नहीं पूछती. मां क्या समझती नहीं कि सुवर्ण को बाधाएं बहुत हैं? वह यदि मां को चिट्ठी लिखने बैठे, तो घर में कोर्ट कचहरी नहीं बैठ जायेगी?

यों ही तो उस अपराध के चलते वह किसी को फूटी आंखों नहीं सुहाती. गाढ़े बैंगनी रंग की जबरजंग बनारसी साड़ी और जरी की बूटीदार लाल मखमली जाकिट पहनकर भाग्य-विताड़ित की नाईं जिस दिन सुवर्ण इनकी बहू होकर इस घर में आयी, तो एक ही दिन में उसकी उम्र तीन साल बढ़ गयी! घर पर सभी बोल उठीं, "नौ साल? उस धड़ंग-मुस्तंड लड़की की उम्र नौ साल? नौ साल की तो वह तीन साल पहले थी!"

विरूपता की वह दृष्टि आज भी नहीं गयी. सच पूछिए तो 'पतित' की नाईं ही देखी गयी है. यह हो सकता है कि मां 'बदचलन' होकर निकल नहीं गयी है, फिर भी कुल, घर, पति का त्याग, यही क्या मामूली अपराध है?

सो, दिनों तक अपराधिनी रही आयी थी सुवर्ण. फिर देखा, ये लोग सख्त के भक्त हैं, नरम के यम! जितना ही झुको, ये उतना ही सिर चढ़ते हैं, इसलिए उसने सख्त होना सीखा.

सुवर्ण नौ साल की उम्र में इनके घर आयी है तब से यहीं है. मां है नहीं, लिवा कौन जाये? बाप ने साहस ही नहीं किया. निकट पास की एक फुआ है, उसने एक बार लिवा जाना था, इन लोगों ने भेजा नहीं. कहा, 'उस कुल से अब नाता रखने की जरूरत नहीं.' कभी-कभार बाप मिलने आ जाता है, यही बहुत है. वह भी घूंघट काढ़कर उन लोगों के सामने मिलना! संभवतः इसी दुख से अब बाप भी अधिक नहीं आता. अतएव सुवर्ण को इन्हीं के साथ रहना होगा, इसलिए इन्हें आदमी बनाने की इच्छा होती है उसे, इच्छा होती है कि ये शौकीन हों, सभ्य हो, रुचि-पसंद का मतलब समझें. इनके साथ घर-गिरस्ती करेगी वह.

झगड़ा-झांटी, ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ के लिए मारामारी. सुवर्ण को यह सब फूटी आंखों नहीं सुहाता-फूटी आंखों नहीं सुहाता उसे सोच में ही पड़े रहना भी. वे लोग उदार आबोहवा का स्वाद नहीं जानते. किताब पढ़ना, कविता कंठस्थ करना नहीं आता... सोचते-सोचते सुवर्ण का मन खो जाता, याद आ जाती अपने आकस्मिक ब्याह की बात. ब्याह नहीं हो गया होता तो अब तक वह मैट्रिक पास की पढ़ाई पढ़ती होती.

हालांकि सुवर्णलता का यह जीवन भर का सपना था कि उसके लड़के उसे समझेंगे, उसके अपने होंगे! परंतु वे अपने नहीं हुए, उन्होंने उसे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा. संभवतः समझना चाहा ही नहीं. क्योंकि उसके लड़कों को अपनी मां की आशा के सपनों का कभी पता ही नहीं मिला! उन लोगों ने केवल लड़ाकिन सुवर्णलता को ही देखा है, 'दक्षिण के बरामदे' की लोभी सुवर्णलता को कभी नहीं देखा.

इसलिए उन्होंने लड़ती हुई विक्षत सुवर्णलता के विकृत और हिंस्र चेहरे को ही देखा है, जिसने उनमें खीज और ऊब ही जगायी है. उन्होंने खोजकर नहीं देखा कि सुवर्णलता के भीतर 'वस्तु' थी.

सोचकर देखा नहीं कि वस्तु थी, सपना था, थी 'आदमी की तरह' जीने की दुर्दमनीय आकांक्षा! थी भव्यता, सभ्यता,सौकुमार्य! युद्ध की रसद जुगाते-जुगाते ही वह संपद जाता रहा.

मगर सोचकर देखें भी कब वे?

सुवर्णलता की लड़ाई का आज भी अंत हुआ है क्या?

नहीं हुआ है.

शायद हो कि युद्ध के कारण अब उतने प्रखर नहीं हैं, शायद हो कि अनुभूतियां भी अब उतनी अधिक तीव्र नहीं हैं, फिर भी सुवर्णलता एक समझौताविहीन संग्राम की नायिका है.

भद्देपन और कुश्रीता के खिलाफ लड़ते-लड़ते यह स्वयं कितनी भद्दी और कुश्री हो गयी है, सभ्यता-भव्यता-शालीनता को बरकरार करने की लड़ाई में उसने अपने चरित्र के सारे सौंदर्य को जिबह कर दिया है, इसका पता अब उसे नहीं चलता.

उसके लड़के मां की उस अपरिचिच्छन्न मूर्ति को ही देख रहे हैं.

इसलिए वे मां को घृणा करते हैं.

मां की ओर व्यंग्य की दृष्टि से देखते हैं.

सुवर्णलता के पूरे जीवन की यही कमाई है!

उनकी अभी-अभी खुली ज्ञान की आंखों के सामने अहरट उद्घाटित हो रहे हैं. मां-बाप की दांपत्य लीला के युद्ध और संधि के बहुतेरे कलंकित अध्याय!

वे यह जानते हैं कि वे सुवर्णलता की स्वप्न साधना की वस्तु नहीं, महज युद्ध हथियार हैं.

सुवर्णलता का अंतिम दृश्य वास्तव में बड़ा सुंदर और समारोह का रहा. सुवर्णलता परिपूर्णता का प्रतीक है.

सुवर्णलता की मृत्यु ऐसी उम्र और ऐसी अवस्था में हुई कि वह मृत्यु अवहेलना से भूल जाने की भी नहीं, शोक से हाहाकार करने की भी नहीं.

जगर-मगर जीवन, जगर-मगर मृत्यु!

सुवर्णलता से आजीवन किसने ईर्ष्या नहीं की? उसकी जिठानी-देवरानियां, ननदें, पड़ोसिनें, ये-वे. बचपन से ही डांट पर चली वह. किसी से डरकर नहीं चली, किसी पर रियायत नहीं की. वैसी दुर्धर्ष महिला मुक्तकेशी, उन्हें भी सुवर्णलता से हार माननी पड़ी. वह वैसा ही रौब-दाब चलाती आयी सदा. भाग्य भी सहाय हुआ. आसपास के बहुतों से सुवर्णलता का माथा ऊंचा हो उठा था.

रुपया-पैसा, घर-द्वार, सुख संपत्ति, क्या नहीं हुआ? संसार में गृहस्थ घर की बेटी-बहू की जो भी कामना की वस्तु है, सभी सुवर्णलता को नसीब हुई.

जयावती ने शांत स्वर में कहा, "तुम लोगों से एक अनुरोध करना है बेटे... मैं कह रही थी, अपनी मां के लिए काले भौंरा कोर की एक तशार की साड़ी और पालिश की हुई एक अच्छी खाट ले आते. इसकी बड़ी साध थी उसे! ला दोगे? ...सुवर्ण की यह बहुत दिनों की साध थी, एक काले भौंरे कोर की तशार की साड़ी पहनकर एक अच्छी-सी खाट और गद्दी पर सोने की. मन की बात खोलकर वह ज्यादा मुझसे ही कहती थी न! बातों-बातों में कितनी ही बार वह हंसते-हंसते कहती थी, इस जन्म में खाट पर तो कभी सोयी नहीं जया दी, मरने पर जब बेटों के कंधों पर चढ़कर जाऊंगी, तो वे जिसमें एक पालिशदार खाट पर मुझे ले जायें."

इस जनम में खाट पर कभी नहीं सोयी!

खाट पर!

इस जन्म में कभी?

यह कैसी अजीब भाषा है!

लड़कों ने अवाक होकर ताका.

मन की आंखों सारे घर की ओर ही ताका. इतना बड़ा घर, हर कमरे में जोड़ा पलंग और सुवर्णलता की यह शिकायत, यह शिकायत, यह अभियोग!

जयावती हंसी, रुकरुककर शांत भाव से बोली, "तुम्हीं बताओ बेटे, सोना नसीब ही कब हुआ? जब साबिक मकान में थी तब की तो बात ही छोड़ दो. ईंटों से ऊंची की हुई पाया टूटी चौकी पर फूल शैया हुई थी—कितने ही दिनों उसी पर काटा. दरजीपाड़ा का नया घर बनने के बाद हर कमरे में एक-एक चौकी हुई! खाट नहीं. चौकी! गोदी का लड़का लुढ़ककर कहीं गिर न जाये, इसलिए उस पर ही कहां सोयी,सदा जमीन पर ही सोती रही. तुम्हारे लिए ये बातें भूलने की नहीं होनी चाहिए... उसके बाद बिगड़कर, जिद करके उस गुफा से निकल आयी थी, मकान भी हुआ, मगर भोग कर सकी? तुम लोग एक-एक करके बड़े हुए, एक-एक करके बहुएं आयीं, उस बेचारी को अपना कहने को कोई कमरा भी कहां रहा? रात को रोशनी जलाकर किताब पढ़ने का रोग था उसे, लेकिन उससे तुम्हारे बाप की नींद में खलल..."

बातें कही तो बड़े शांत भाव से पर सुननेवालों का कलेजा हिम हो गया. और उनके पीछे खड़ी बहुओं का चेहरा लाल हो उठा. लेकिन वे झट से कुछ बोली नहीं.

लाचार, बजट बढ़ाना पड़ा.

मां की साध के नाते न भी हो, धनी की बेटी ताई के आगे अपना सम्मान बचाने के लिए!

सुवर्ण के जन्म-भर की साध मिटी.

सुवर्ण की अंतिम यात्रा देखने के लिए लोग टूट पड़े. ग्वालिन, धोबिन, नाईन, गोंयठेवाली— सभी आयी थीं.

वकुल शमशान नहीं गयी थी. मां की चिता को जलते नहीं देखा था उसने, संभवतः इसीलिए वह अपलक आंखों इधर देखती रही...

धीरे-धीरे जब आग बुझ गयी, तो उसे एक दिन की बात याद आयी. इसी छत के ही कोने में उसने दूसरी एक चिता को जलते देखा था. वह यह कभी भी नहीं समझ सकी कि उस दिन कौन-सी चीज राख हुई थी!

आज सोने से पहले मां की छोड़ी हुई सारी चीजों को एक-एक कर देख गयी वह. कोई पंक्ति, कोई हस्ताक्षर कहीं नहीं मिला. सुवर्णलता निरक्षर नहीं थी, इस परिचय को सुवर्णलता एक बारगी धो-पोंछ गयी थी.

वकुल छत के उस कोने में, जहां चिता जली थी, अंधेरे में चुपचाप बैठी रही.

कड़े खटखटाने की आवाज होते ही जग्गू ने आकर दरवाजा खोल दिया.

अवाक् होकर बोले, "ओ तू? इस धूप में? किसके साथ आयी है?"

"दाई के साथ."

"दाई के साथ अकेली आ गयी? ऐं बड़ी हिम्मत है? लेकिन यों एकाएक किसलिए?"

वकुल ने धीरे कहा, "आपका प्रेस देखने आयी हूं ताऊजी."

"प्रेस? मेरा छापाखाना? अब देखने आयी है तू?" जग्गू हा-हा करके हंस पड़े लेकिन बकुल को लगा, वह बूढ़ा आदमी रो उठा है.

हंसी ही थी. हंसना बंद करके जग्गू बोले, "छापाखाना अब नहीं है मैंने उठा दिया."

"उठा दिया!" वकुल क्षण-भर सन्न-सी रहकर बोली, "अच्छा ताऊजी जो सारी पांडुलिपियां छपती हैं, वे पांडुलिपियां फेंक दी जाती हैं?"

जग्गू ने संदिग्ध गले से कहा, ..."तू अपनी मां की वह कापी ढूंढ़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी है?"

"न न, यों ही. आप बैठिए न! पांडुलिपि रहती नहीं है?"

"रहती हैं. थी भी," जग्गू सहसा चिल्ला से उठे, "गुदामघर में ढेर लगी पड़ी थीं...वह कंबख्त मिताई...जब देखा कि प्रेस उठ रहा है, सारा कुछ झाड़-पोंछ कर शीशी-बोतल वाले को बेच दिया..."

वकुल सड़क पर आयी.

अचानक ही पीछे की ओर पलटकर खड़ी हो गयी और शायद उस दांत बिदोरे घर को ही मन ही मन प्रणाम करके मन ही मन बोली, "मां, मेरी मां! तुम्हारी जो जल गयी, खो गयी, लिखी-अनलिखी सारी ही बातें मैं ढूंढ निकालूंगी, नये सिरे से मैं सबको लिखूंगी. मैं अंधकार की गूंगी पीड़ा का इतिहास दिन के उजाले की पृथ्वी को बता जाऊंगी...

यदि वह पृथ्वी उस इतिहास को सुनना नहीं चाहे, यदि अवज्ञा की आंखों देखे, तो मैं समझूंगी उजाला उसका उजाला नहीं, झूठी चमक की छलना है! उसने अभी भी ऋण चुकाने का पाठ नहीं लिया है!

और, सामने के रास्ते बढ़ चली बकुल-पीछे—पीछे अपने साथ आनेवाली दाई को भुलाकर ही!

वकुल उर्फ अनामिकादेवी

बन-ठनकर खुशी से छलकती हुई शंपा आकर खड़ी हुई, "सिनेमा जा रही हूं बुआ! कमाल की एक पिक्चर आयी है लाइट हाउस में! जा रही हूं, हां? संवरने में देर हो गयी. तीरथ के कौए की तरह वह अभागा छोरा टिकट लेकर हा किये बैठा होगा. और हजार भला-बुरा कह रहा होगा. मैं जा रही हूं, मां से कह देना, हां?"

खुशी से उसके चेहरे को अनामिका देवी ने कभी देखा नहीं है? रोज ही तो देखती हैं. फिर भी क्यों आज हठात् 'बहुत युगों के उस पार से' आकर आषाढ़ ने उन्हें ढंग लिया. उस छाया में हठात् उन्हें शंपा वकुल-सी लगी!

हवा में बहती-सी उसकी देह से मिलती हुई हवा-साड़ी की जगह स्वदेशी मिल की मोटी साड़ी का एक हिस्सा देख पायीं मानो.

वकुल की वह साड़ी कुंजीबंधे आंचल की तरह घरेलू ढंग से पहनी हुई, खींच-खींचकर बालों का ताड़-सा जूड़ा बंधा, पैर खाली ढंग से वकुल के हाथ में दो किताबें.

लेकिन एकाएक शंपा वकुल क्यों लग रही है? उसका चेहरा तो शंपा के समान उमंग से झूमता हुआ नहीं है!

वकुल भीरू, कुंठित और नम्र है.

वकुल में दुस्साहस की भंगिमा कहां?

नहीं है.

फिर भी शंपा की ओट किये वकुल आ खड़ी हो रही है. और गरदन झुकाये खड़ी उस वकुल को जाने कौन तो डांट रहे हैं, "खबरदार अब कभी उनके घर मत जाना. हरगिज नहीं. इतनी बड़ी लड़की हो गयी, रात-दिन नाटक-उपन्यासों का श्राद्ध कर रही हो, और इतनी बुद्धि नहीं है कि किस बात से निंदा होती है?"

वकुल के चेहरे पर दुस्साहस की छाप नहीं, फिर भी वह एक दुस्साहसिक बात बोल उठी. शायद इसीलिए शंपा से हठात् मिलती-जुलती लग गयी.

बोली, "एकाएक निंदा क्यों होने लगी? हमेशा ही तो जाती रही हूं."

"हमेशा की तुलना इस समय से मत करो." टूटे-टूटे से प्रौढ़ गले ने कहा, "अब तुम्हारे सिर पर मां नहीं है. और उनके यहां का बड़ा लड़का..."

हां, ऐसी एक असभ्य बात अनायास ही बोल गये वह.

वकुल के क्षीण गले से निकला, "ठीक है, अब नहीं जाया करूंगी. आज केवल ये दो पुस्तकें लौटा आऊं."

"कौन-सी पुस्तकें?"

"ऐसी ही हैं."

"ऐसी से मतलब? नाटक-उपन्यास?"

वकुल चुप.

"वही तो! वही नाश की जड़ है. तीन पुश्त की एक ही बीमारी. सुना है नानी को थी, मां को तो सोलहो आने थी, अब लड़की को, देखूं कैसी किताबें हैं?"

वकुल के हाथ से किताबें ले लीं, मानो छीन ली हों. खोलकर देखा. उसके बाद व्यंग्य से बोले, "ओ कविता! रवि बाबू! यों ही कह रहा हूं मैं कि तीन पुश्त की एक ही बीमारी! हूं ठीक हैं. मैं दे दूंगा. किसकी हैं? जरूर उस निर्मल की होगी?"

वकुल बुत बनी खड़ी रही, जवाब नहीं दे सकी वह.

प्रौढ़ के गले से एक अक्षर का शब्द निकला, "हूं."

उस शब्द में अंतर्निहित धिक्कार से पत्थर की वकुल आषाढ़ की छाया की आड़ में खो गयी. उस शून्यता के ऊपर शंपा की उमंग-भरी मूर्ति चमक-सी उठी.

हां, वकुल के बड़े भाई ने यह गुरु उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था. किसी मौके से वकुल लुक-छिपकर बगल के मकान के लड़के के आमने-सामने होती है या नहीं. यह देखने का भार.

अच्छा, उस युग में बाल्य और कैशोर्य की सीमा रेखा उम्र की किस रेखा पर खींची जाती थी?

वकुल यह नहीं जानती.

वकुल दस-ग्यारह साल की उम्र से सुनती आयी है, "धड़ंग लड़की, तुम्हें बरामदे पर खड़े रहने की इतनी क्या जरूरत पड़ी है?... इस घर-उस घर घूमती-फिरती रहती है. जाकर गिरस्ती के काम-काज करो न? छत पर घूम रही थी? क्यों? बड़ी हो गयी, वह ख्याल कब होगा?"

बड़ा भाई कहता था, पिता कहते थे.

ज्यादा बड़ा भाई कहता था.

वकुल की मां जिंदा थी, तब तक वकुल को फिर भी एक बल था. बड़े बेटे का पारिवारिक पवित्रता की रक्षा के लिए यह कर्त्तव्यपालन देखकर मां बिगड़कर कहती, "तुझे सब बातों पर इतनी नजर रखने की क्या पड़ी है? मना करना होगा तो मैं मना करूंगी."

"तुम नजर रखतीं, तब तो कोई बात नहीं थी," बड़ा लड़का कहता, मां के मुंह पर ही मुंह फुलाकर कह देता, "मगर देखता तो नहीं हूं कि वह नजर रखती हो. बल्कि हम लोगों से होड़ लेकर बेटी को उकसाते ही तो देखता हूं. लड़की बड़ी मनदुलारी है न!"

मां चुप हो जाती थीं.

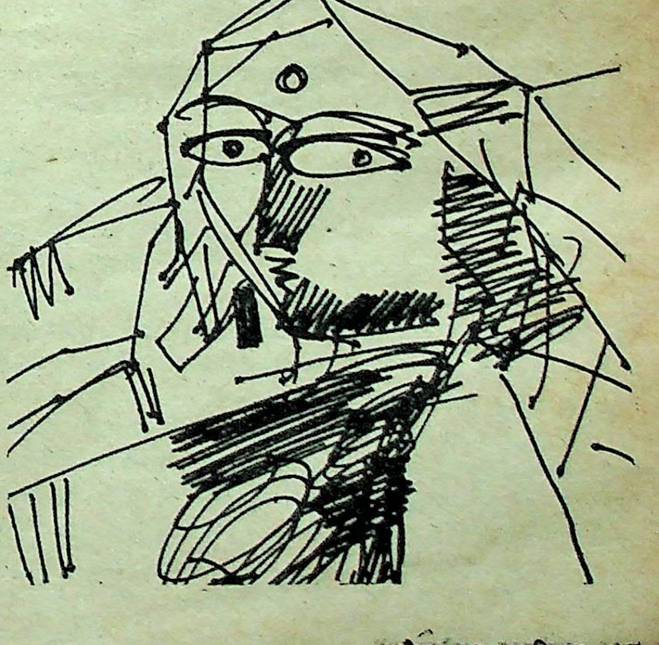

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ते के दक्खिनी इलाके में सदर स्ट्रीट के बिलकुल रास्ते पर उम्र की छाप लिये इस मकान के दुतल्ले पर साबिकी ढंग के लंबे बरामदे की ऊंची दीवार की सीढ़ी के बिलकुल सामने चौड़े फ्रेम में बंधा जो मुखड़ा देदीप्यमान है, वह मुखड़ा इस मकान के मूल स्वामी स्वर्गीय प्रबोधचंद्र मुखोपाध्याय का है.

मरते समय प्रबोधचंद्र अपने मकान के तिनतल्ले की छत, बरामदा, आदि हड्डी जलानेवाली इस छोटी लड़की के नाम क्यों वसीयत कर गये थे, यह एक रहस्य है. पर कर गये थे वसीयत—अपने बेटों को चौंका करके, विचलित करके और परगोत्र में गयी हुई बेटियों को ईर्ष्यालु बनाकर.

पिता के गोत्र में अविचल रहकर अनामिका निरंतर साहित्य सेवा करती चली जा रही हैं.

अनामिका के ख्याल में प्रबोधचंद्र जैसे रक्षणशील ब्राह्मण के यहां अनब्याही रह जाने का दृष्टांत विरल है. मगर फिर भी यह अविश्वसनीय घटना घटी थी. तीन-तीन लड़कियों का ब्याह उन्होंने यथारीति ठीक समय पर किया था और छोटी बेटी के समय वह हार गये, सो बेटी की जिद से या उसकी 'चिर कुमारी' रहने की कामना से नहीं, नितांत अपने ही आलस्य से.

या केवल आलस्य नहीं, और कोई सूक्ष्म कारण था.

उनके चार बेटों और चार बेटियों में सात तो हाथ से निकल गये थे. बेटों में से तीन को ले लिया था बहुओं ने, अर्थात् परायी बेटियों ने. और चार लड़कियों में से चंपा, चंदन और पारुल नाम की बड़ी, मंझली, संझली बेटियों को बदस्तूर पराये बेटों ने हथिया लिया था. शायद इसीलिए जामाताओं को प्रबोधचंद्र फूटी निगाहों भी नहीं देख सकते थे. स्त्री-वियोग के बाद तो और भी.

लिहाजा अंतिम भरोसा यह छोटी.

बड़े भाई लोग इस प्रश्न पर माथा खपाने नहीं बैठे.

और फिर बाप की वसीयत!

उस वसीयत की बदौलत वकुल अगर इस घर का एक हिस्सा दखल किये रह ही सकती है, तो उसे घर से निकालने की चेष्टा से लाभ भी क्या? वह पति को भी साथ लेकर यहीं आ बैठे तो?

इसीलिए खास किसी कारण से नहीं, विशेष कोई इतिहास की सृष्टि करके नहीं, नितांत मध्यवित्त, निहायत ही मध्यचित्त इस परिवार की लड़की उस समय समाज के नियम की वज्र-गांठ से छिटककर आज के समाज में विचर नहीं है.

लिफाफे पर यहीं का पता है, लेकिन नाम बिलकुल अपरिचित. और मार्फत प्रबोधचंद्र के नहीं. चिट्ठी चाहे जिसकी आये-पते में साफ-साफ अक्षरों में 'मार्फत प्रबोधचंद्र मुखोपाध्याय' तो लिखा ही रहेगा.

इस चिट्ठी की अधिकारिणी कौन है? किसी बहू का छद्म नाम है यह?

"नहीं है? नहीं है तो यह अनामिका देवी जी कौन हैं, सुनूं जरा?"

वकुल ने मुस्कराकर कहा, "हकीकत में कोई भी नहीं."

"हकीकत में कोई नहीं! मगर उसके नाम से चिट्ठी आती है. खूब! रखो चिट्ठी. मैं जानना चाहता हूं कि यह अनामिका देवी कौन हैं!"

लेकिन वकुल ने चिट्ठी रखी नहीं... और वह कमरे से चली गयी. पिता का क्या हाल हुआ. ताका तक नहीं.

किंतु कुछ ही दिन पहले तक वकुल आंख उठाकर बाप की ओर ताक भी नहीं सकती थी. हठात् उसे यह साहस किसने दिया? उस अनामिका देवी ने? जिसके नाम से किसी पत्र के संपादक ने लिखा था, "आपकी कहानी स्वीकृत हुई. अगले अंक के लिए और एक कहानी भेज दें तो आभारी होऊं." या कि निर्मल के विवाह के सिलसिले में जो वकुल उद्घाटित हुई थी, उसी वकुल ने यह तय किया था कि पैरों तले की माटी कहां है, उसे खोजना होगा. शायद उसे खोज भी लिया था, उसने. इसीलिए एक कापी के कोने में जाने उसने कब लिख दिया था— "डरते डरते रहने की आदत हो जाती है जिससे यह याद ही नहीं रहता कि डरने का कोई कारण नहीं है. इस आदत को छोड़ना होगा."

और वकुल की बड़ी भाभी ने चकित होकर कहा था, "अजी किताब तो लोग नाम-यश के लिए ही लिखते हैं, जानकर कोई नाम बदलकर लिखता है, यह तो कभी नहीं सुना. रचना तुम्हारी ही है, यह साबित कैसे होगा? मान लो, मैं ही यदि कहूं—मैं ही अनामिका देवी हूं!"

"कहो न, एतराज क्या है?" कहकर हंसती हुई चली गयी थी वकुल.

इसके पहले भी उसकी रचना छपी थी, लेकिन वह खबर खुद वकुल और निर्मल के घर तक ही सीमित रही, इस घर तक उसका धक्का नहीं पहुंचा. अब की धक्का दिया इसलिए धक्का उठा.

संझली दी पारुल ने और एक धक्के की खबर भेजी थी.

लिखा था, "इधर तो तू मजे का एक कांड कर बैठी. तेरी कहानी पर पुरुष समाज में जोरों की हलचल है. 'नवीन भारत' पत्रिका यहां बड़ी लोकप्रिय है न!... लोग कह रहे हैं, निरूपमा देवी, अनुरूपा देवी, प्रभावती देवी, इन्हें तो जानते हैं, यह नयी देवी जी कौन हैं? हो न हो, महिला के छद्म नाम में कोई पुरुष है...लिखने की शैली जैसी जोरदार है..." यानी जोरदार होना पुरुषों का ही एकाधिकार है.

"तेरे बुद्धिमान बहनोई ने लेकिन लेखिका का असल परिचय किसी को नहीं बताया, किंतु स्वयं तो वह जानते हैं, वह बेहद अपमान की जलन में जल रहे हैं. क्यों, पता है? वह शायद उस कहानी के खल-नायक के रूप में अपनी छाया देख रहे हैं.

"मैं लाख समझाती हूं, कहानी का नाम जब 'आईना' है, तो उसके सामने खड़े होने पर अपनी छाया तो दीखेगी ही, पर तुम क्यों अपने को... मगर सुनता कौन है ऐसी अच्छी बात... मैंने यह भी कहा, तुम अपनी ही छाया क्यों देखते हो? उतने निष्ठुर हो तुम?

"इस सांत्वना से लेकिन कोई नतीजा नहीं निकलता."

नहीं होता है. वैसी सांत्वना से कुछ नहीं होता. इसका अनुभव अनामिका देवी को बहुत बार हुआ है. अपने दीर्घकाल के लेखिका जीवन में उन्हें बहुत बार कठघरे में खड़ा होना पड़ा है. कसूर यह है कि उन्होंने अपने परिचितों में से चुन-चुनकर किसी-किसी की हेठी करने के लिए अपनी कहानियों के नायक-नायिकाओं की सृष्टि की है...

और बार-बार ऐसा अनुरोध भी आता. "मुझ पर लिखो..."

नहीं लिखो तो सोचता है, मेरी अवहेलना की.

उस समय निर्मल मोतिहारी में नहीं था, बदली होकर कहीं और चला गया था. जहां बंगला पत्रिका दुर्लभ थी, फिर भी खोज-खोजकर पढ़ता था. और छुट्टी में घर आने पर उसी नितांत छोटी उम्र के समान ही कोशिश करके बहाना ढूंढकर अनामिका देवी से भेंट कर जाया करता था.

दुनिया में इतने लोगों के रहते, एक आदमी और एक आदमी से मिलने के लिए छटपटा रहा है, यह पकड़ में आ जाना बेहद शर्म की बात जो है! उम्र कितनी भी क्यों न हो उनकी, पकड़े जाने पर ही मारे गये!

ऐसी ही एक झूठे उपलक्ष्य की घड़ी में गहरी दृष्टि डालकर निर्मल ने कहा था, "इतनी कहानियां लिखती हो, हमारी भी लिखो न?"

वकुल तो उस समय अनामिका के केंचुल में कैद थी, उस केंचुल को उतार फेंककर वकुल के रूप में खिल पड़ने का उपाय कहां था उसे? उसे तो अब सदा-सदा के लिए इस केंचुल के बोझ को ढोते ही फिरना होगा. यह केंचुल चीज ही बड़ी भयंकर है. पहले ऐसा लगता है कि शायद मैंने अपने आप ही उसे बदन पर डाल लिया है, जब जी चाहे उतार दूंगी. मगर ऐसा होता नहीं. धीरे-धीरे वह नाग-पाश में जकड़ लेती है, छुटकारा नहीं मिलता.

लाचार अनामिका देवी को अनामिका देवी होकर ही रहना पड़ेगा. अब कभी भी वकुल हो सकना संभव नहीं होगा, कुछ और भी होने की इच्छा करने से वह कभी नहीं हो सकेगा. □

संक्षिप्त रूपांतर : कांता/बीथिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़िया उपन्यास-अंश

माटीमटाल

गोपीनाथ महांती

स्वयंवद्

जीवन में मैंने जो कुछ देखा और अनुभव किया है और जैसी मेरी स्वाभाविक सहानुभूतियां हैं, उस सबके कारण मैंने प्रायः ही शोषण, अत्याचार, अन्याय, क्रूरता और निर्दयता की भर्त्सना की है और ढोंग, पाखंड, भ्रष्टता और मिथ्यात्व को नंगा किया है. इनसे उन पर विपत्तियां आती हैं जो मनुष्यता के स्तर से ही गिर चुकते हैं. मैं तो उन हजारों-लाखों में से केवल एक हूं. जो आज के इस क्रूर और अन्यायपूर्ण जीवन-जगत में सामाजिक न्याय के लिये पुकार कर उठते हैं!

यह अवश्य है कि मेरे लेखन का विषय आदिवासी, हरिजन, मजूर, किसान, निम्न मध्यवर्ग, और अन्य दलित लोग हैं. किंतु यह इसलिये कि मैं इन्हें मानवप्राणि से भिन्न किसी और रूप में देख ही नहीं सका. मेरी दृष्टि में ये मात्र सामाजिक या आर्थिक धारणाओं के भाव में कभी आये ही नहीं. यही शायद कारण भी हुआ कि इनकी स्थिति मुझे और भी अधिक त्रासिक लगी.

किंतु अनजानी और अकस्मात आयी आपदाओं से अंतिम क्षण तक जूझते हुये जो रूप उसका सामने आता है वह एक त्रासिक वीर नायक का होता है. उसके रोम-रोम में जिजीविषा बसी होती है जो अंतिम क्षण तक बनी रहती हैं. इसीलिये, कैसी भी परिस्थिति आये, वह खोजता है तो केवल प्रकाश, उल्लास. सृजन करने में उसे सुख मिलता है, परिस्थिति और परिवेश को अनुकूल बनाने में वह जुटा रहता है, और जहां उजाड़-विजन हो वहां अपनी बस्ती बनाता है. इस प्रकार विश्व में अपनी हस्ती को वह बनाये रखता है और आस्था, प्रेम, समवेदना, सद्भाव की भित्तियों पर अपने संसार को खड़ा करता है. स्वतंत्रता का वह प्रेमी होता है, तो भी कितनी ही बातों में उसे औरों के अधीन रहना पड़ता है. अपना निजी व्यक्तित्व और अपनी एकांतता उसे प्रिय होते हैं : पर प्रिय उसे मित्रता, मेलजोल, और समाज-वास भी लगते हैं, संग-साथ और सहचरता की ललक उसमें जैसे जन्मजात होती है.

8 नवंबर, 1974 को
पुरस्कार समपर्ण समारोह
के अवसर पर व्यक्त विचार

रवि के जाने के बाद बंधमूल गांव में बट महांती के घर में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, बाहर के लोगों की आंखों में कल जो था आज भी वही है.

बाहर के लोगों की नजर में न आये किंतु घर में दो अधेड़ उम्रवाले थे ही—बट महांती और उनकी पत्नी. दोनों ही यंत्र की तरह अपने-अपने काम में लगे हैं फिर भी दोनों को ऐसा लगता है जैसे उस घर में उनका शरीर है प्राण नहीं. खाली घर खड़ा है, आदमी नहीं. बट महांती खाने बैठे हों या कभी उनके लिए पान का बीड़ा लाकर देते समय रवि की मां को अवसर मिलता है तो पति-पत्नी एक-दूसरे को देखते हैं और बिना भाषा के ही केवल आंखों ही आंखों वही बात चलती है—

एक के मन की बात दूसरा समझता है पर मुंह कोई नहीं खोलता. बट महांती बाहर-बाहर घूमते, रवि की मां घर में रहकर कभी थोड़ा-बहुत रो लेती. मुंह पोंछकर काम में जुट जाती.

खाना-पीना हो जाने के बाद बाड़ी की ओर बरतन रख दिये जाते तो, पता नहीं कहां से चील की तरह चली आती एक ताक में रहनेवाली कुतिया. चार पिल्ले दिये थे, दो कहीं गये, और दो मां के पीछे-पीछे भागते रहते. ऐसे ही कितने बच्चे वह बरस के बरस जनती. कहां जाते वे सब!

अपने मन के साथ मेल खाती कितनी ही ऐसी बच्चोंवालियां रवि की मां की आंखों में पड़तीं.

घर से चले गये अपने दोनों बेटों के लिए शोक में डूबी रवि की मां चारों ओर देखती. पहले कभी सोचा ही नहीं, ऐसी कई बातें मन मे आ जातीं. गाय-बैलों की ओर देखती, कौन किस गांव का है, किसकी मां कहां है! बछड़ा धूल उड़ाता, नाचता-नाचता लौटने के समय कितना रंभाता! किस गांव का लड़का कहां आकर किसके लिए हल चला रहा है. और फिर मां-बेटों की भेंट नहीं. ओस की बूंद जमने की तरह दोनों आंखों में आंसू डबडबा आते. आंसू सूख जाते, उड़ चलती उदास चिंता, निष्फल हवा के झोंके की तरह, चेतना में सूखे दुख की तरह, केवल धूल और अंधड़ की तरह बार-बार लगा ही रहता, भुलाया नहीं जा सकता.

बट महांती सब कुछ जानकर भी चुप साधे रहते. उनकी स्त्री ने समझा-बुझाकर द्विजवर आचार्य को मध्यस्थ बना कर भेजा. उसमें उनका मन नहीं लिया गया. वे चुप रहे, प्रतीक्षा कर रहे थे. द्विजवर नास्तिवाणी लेकर आया—इस पर बट महांती ने अपमान का अनुभव नहीं किया, क्रुद्ध भी नहीं हुए, उलटे उनका अहम् पुंगी बजाकर ऊपर उठा. उन्होंने अर्थ लगाया—सिंधु चौधरी डर गया, उनसे डर कर इनकार कर दिया है. फिर मन अपनी प्रशस्ति खुद बखानने लगा—बट महांती! बट महांती! उस स्थिति में बेटा भी एक प्रतिद्वंद्वी के अलावा और कुछ नहीं है और वह हार गया है, कितना ही जोर लगाये हारता ही रहेगा.

दिन गया, रवि नहीं लौटा. पहले लगता था वह बच्चों का खेल है, मोटी बुद्धि का है वह, जिद्दी है, ग्रह का खिलौना हो गया है. जोतिषियों को बात-बात में उन्होंने कहा था—देखो तो अभी उसकी क्या दशा है? जोतिषी ने बताया उसकी दशा अभी खूब 'कर्म' की चल रही है.

उधर सारी खबर पाकर बड़े बेटे कवि ने लिख भेजा कि आप कठोर व्यवस्था का आसरा लें. फालतू आदमी की तरह घूमता-फिरता यदि रवि कहीं राजनीति में घुस गया तो उसके इस रवैये से इधर मेरी चाकरी डगमगा जायेगी. घर पर होता तो मैं उसे ठिकाने लगा देता, किंतु मुझे छुट्टी नहीं. कवि की चिट्ठी पढ़कर बट महांती तनिक हंसे, फिर चिट्ठी को दाब दिया.

किंतु रवि बीमार पड़ा नहीं, ठोकर खायी नहीं; खबर मिली कि वह वहां छोकरों को मिलाकर जाने क्या-क्या कर रहा है. वे लोग गांव में असमर्थ लोगों का घर बना देते हैं, खेत का काम कर देते हैं, गांव में कूड़ा-कचरा साफ़ करते हैं, गड्ढों में माटी भर देते हैं, रात में बूढ़ों को पढ़ाते हैं, लोगों को नयी-नयी बातों से प्रभावित करते हैं. फूलशरा गांव में हलचल मची है. जो आता है रवि की बड़ाई करता है.

रवि वहां भी नेता होगा! टूटेगा नहीं वह!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचने को फ़ुरसत नहीं. दोल पूनम सिर पर आ गयी, झांझ मृदंग की झंकार में देश हुलसा था. ठाकुरजी यात्रा को निकलेंगे विमान में. बट महांती जुट पड़े. केवल ठाकुरजी का हम काम करने में लगे रहे.

इस व्यस्तता के बीच, जब मौक़ा पाते, ठाकुरजी को बट महांती अपनी इच्छा जनाते और सांत्वना खोजते. बट महांती पूछते—कौन-सा उपाय करूं कि बेटा बात माने. उसका मन फिरे?

रवि ने पैसे मांगे नहीं. इतने दिन हुए उसे गये, कोई सहायता के लिए खबर भी भेजी नहीं. उलटे उसके जाने के बाद दो बार फूलशरा गांव से सब्जी का टोकरा आ चुका है. फूलशरा तो नाम की जमींदारी है, फल-फूल वहां से कभी आते नहीं, लगान बाकी न रहने भर से ही वहां के तहसीलदार धन्य भाग मानते. और फिर भारवाहे ने बताया कि वहां के कचहरीघर का चेहरा बदल गया है, कचरा साफ हो गया है घास साफ-सुथरा हो भीतों में माटी लीप दी गयी है, अहाते में नये घर बन रहे हैं, जब देखो बस गांव के लोग भरे हैं, और साथ-साथ रवि के बताये कितने ही नये-नये कामों में गांव वाले भिड़ गये हैं, उद्यम चल रहा है कि सारा गांव मिलकर एक गोठ होगा.

तब नयी दुनिया गढ़नेवाले छोकरों की बचकानी बातों को बट महांती ने पतली बाकी हंसी में ऊपर उड़ा दिया था, परंतु अंदर ही अंदर कितनी ही काल्पनिक चिंताओं की कोंच खाकर वे चौंक पड़ते. मानो वे किसी और की बात सुन रहे हैं, जिसे वे नहीं मानते, बस दूर ही दूर से सुना-सुनाया परिचय मिल रहा हैं.

अपने अतीत को याद कर बेटे के मन की अवस्था समझने की चेष्टा भी की थी. कुछ याद नहीं आया, जिससे कि वे मन ही मन रवि का कोई रूप गढ़ सकते.

बेकार बचकानी हा-हा! यह सब भी दो दिन में उड़ जायेगा. छोड़ो, बाधा देने की जरूरत नहीं, पुआल की आग की तरह अपने आप ही सुलग-सुलगकर सब काला पड़ जायेगा. सोचकर हंसी आ जाती, अभिज्ञ मन का सूक्ष्म विचार अर्थ निकालता—ब्याह होने से पहले छोकरों के मन में जब गरमी पैदा होती है, तब वे ऐसे ही कोई चिनगारी निकाल कर झड़ जाते हैं.

रवि का नया आंदोलन उसी रास्ते का है, पर पानी बहेगा ही, रोकने से कुछ होगा नहीं.

कवि की बात पर उन्हें अब और विश्वास नहीं है. वह गांव का नहीं, शहर का ठहरा. वह समझ नहीं पायेगा. वह घर कभी आता नहीं, घर की खबर लेता नहीं. दो-तीन महीने में एक-आध चिट्ठी. कवि की अपेक्षा रवि कल अधिक जुड़ा रहता है.

फूलशरा गांव में—

कचहरी के अहाते से सटकर दाहिनी ओर साधु जेना का घर-द्वार था. कचहरी के अहाते में घर से थोड़ा हटकर बीच में एक बाड़ है. साधु जेना की बाड़ी इस नयी बाड़ी से मिल गयी है. उसकी भी मेढ़-बाढ़ और नहीं है. उसके उधर गंगा हलवाई की बाड़ी, उमा पशायत की बाड़ी, रघुवा नाई की बाड़ी थी. सब की बाड़ियां उठकर एक में शामिल हो गयी हैं. रघु जेना की बाड़ी के उधर पड़ता है ज़मींदार का एक तीन एकड़ का पुराना पोखर, चारों ओर से भरता आ रहा है. बीच में गड्ढे की तरह थोड़ा पानी रहता है. पोखर के इधर ऊबड़-खाबड़ होकर पांच एकड़ ज़मीन, नाम पांचमाणिया है, बिना आबादी का वन है, केवल छोटी-छोटी कांटेदार झाड़ियां और इधर-उधर जगह-जगह बेंत के झुरमुट, बहुर सारे शरीफ़े के पेड़, थाक की थाक थूहर, केवड़े, कंसारी आदि, केवल गांव के गोधि, सांप, गीदड़ के रहने की जगह. ऊंची बालुई जगह देखकर क़तार की क़तार नागफनी फैली पड़ी है, सिर पर एक-एक लाल फूल उस वन के बीच टीले पर हाथ पकड़े खड़े होने की तरह दो पालिधी के पेड़, लाल-लाल फूलों से लदे हैं. अनापादी के पूर्व की ओर चरेंगी नदी की पतली धारा तिरछी-तिरछी मुड़कर चली गयी है. नाम की नदी होने पर भी एक खाई भर है, बंजर ख़त्म होते ही खेत शुरू होता है.

चमचमाती दोपहर में उसी 'पांचमाणिया' पर इधर-उधर गछ काटनेवाले लोगों का कलरव सुनाई पड़ रहा था. स्त्री-पुरुषों का मिला-जुला स्वर. रवि के निर्देश में वे वन काटकर साफ कर रहे थे. टीले पर कंटीली झाड़ियां कटी पड़ी थीं, उनके ढेर के बग़ल में तीन जने युवक खड़े थे कंधे पर चमकती कुल्हाड़ियां रखे हुए—रवि, बई मलिक और गंगा हलवाई. बूढ़ा नंद तहसीलदार 'आं' किये पालिधी की ओर देख रहे थे, मानो वे उसके फूलों के सौंदर्य से मुग्ध हों.

रवि ने कुल्हाड़ी उतारकर कहा, "बातों ही बातों में बहुत समय चला गया, अब काम हो." इसके बाद पालिधी पर पहली चोट दी, फिर बई मलिक ने, फिर गंगा हलवाई ने. दूसरी बार चोट पड़ने से पहले ही नंद तहसीलदार चिल्ला उठे, "ठहरो, बात तो सुनो!"

रवि हंसते-हंसते लोट-पोट हो गया. कुल्हाड़ी को कंधे पर डाल पीछे कमर मोड़कर कहा, "अब ठहर-ठहर क्या, अब हमारी बातें करना और बाक़ी रह गया है, मौसा?" बूढ़े तहसीलदार बाबू को मौसा कहने में तब से उसकी जीभ अभ्यस्त हो गयी थी; उसी सूत्र से 'मौसा' पर जोर भी दे देता. कहा, "लोगों ने जमकर काम करना शुरू कर दिया, अब जल्दी-जल्दी उस वन में झुरमुट को भी साफ-सुथरा कर दें तो काम बने. और अब प्रतीक्षा किसलिए?"

नंद ने कहा, "किस घर के बेटे हो, किस घर के पोते हो,इस तरह इनके साथ मज़दूरों की तरह बनकर कांटे-झाड़ी रौंदकर कुल्हाड़ी चलाये बिना नहीं चलेगा, बाबू?"

रवि ने कहा, "हम सब मज़दूर हैं, सिर से कोई कितना ही सोचे, हाथ से काम किये बिना आदमी होकर नहीं रह सकता. छोड़ो, तुम क्या कहते हो कहो, मौसा, मैं रुकूं.... ये काम करेंगे?"

नंद तहसीलदार का मुंह जल गया; किंतु बई मलिक ने फिर कहा, "बूढ़े बाबू तो माला फेरनेवाले ठहरे, बड़े बाबू विदेश में रहते हैं, वहां वे भले और उनकी चाकरी भली. जमीन-बाड़ी, काम-धंधा सब देखते हैं छोटे बाबू. खुद कर्ता ही खड़े होकर बता रहे हैं कि यह झाड़ी का वन साफ़ होगा, वह बाड़ कटेगी, वह पोखर खुदेगी, वह जमीन ऐसे नहीं वैसे काश्त होगी. अच्छा, उन्होंने तुम्हें रखा है अपना काम करने के लिए ही न. उन्हें जो भला लगा, वह करेंगे. उनकी 'हां-हां' में तुम्हारी 'ना-ना' क्यों है बाबू? काम बंद करनेवाले तुम हम कौन हो,यही समझ में नहीं आता."

अवाक् खड़े बूढ़े नंद रवि की ओर देखते रह गये. बई मलिक की चेतावनी से उनको होश आ गया. नजर झुक गयी. सोचा, यह पागल है. इसमें मेरा क्या जाता है? फालतू विरोध करना ठीक है क्या!

याद आया, यहां का हालचाल बट महांती को बताने के लिए आदमी भेजा था. बट महांती ने सब सुना,कोई आदेश नहीं दिया. कंडुरी बारीक ब्योरा लाया था. बूढ़े बाबू ने पूछा था कि 'रवि ठीक है तो?'—'जी, हां.' 'सब गोविंद की लीला है!'—बूढ़े बाबू ने कहा था.

याद आया, ऐसे ध्वंस हो गये हैं कितने ही बड़े-बड़े जमींदार, कितने राजा-महाराजा केवल अपने खयाल के पीछे-पीछे भाग कर. किसी ने पहाड़ों पर पोखर खुदवाये हैं, तो किसी ने गड्ढों में महल चिनवाये, किसी ने कुत्तों का झुंड पाला है; तो किसी ने बाघ के झुंड की प्रतीक्षा की है, कोई एक-एक कर पत्नियां जुटाता गया, और किसी ने राज-भर के भाटों-नटों को जमा कर उन पर खजाना लुटाया है.

आती-बांकी हंसी को गोल मरोड़ मुंह बिचका कर ढंक लिया. नंद ने कहा, "अच्छा मैं चलता हूं. ये सब देखेंगे तो पिता बिगड़ेंगे."

बीच में अचानक द्वंद्व टूट गया, मानो समय से पहले ही तमाशा खत्म हो गया हो.

रवि ने दूने उत्साह से कुल्हाड़ी उठाकर पालिधी पर आक्रमण किया, परंतु लगता था जैसे आज काम पग-पग पर तर्क में ही उलझ जायेगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बई मलिक ने हंसकर कहा, ''ये दोनों पेड़ कैसे दिख रहे हैं?''

रवि ने पूछा, ''बोलो.''

''ठीक जैसे दो बहुएं, काटने को हाथ उठता ही नहीं.''

सब 'हो-हो' कर हंस उठे. रघुवा ने ठठ्ठा किया, ''तब तू इनमें से एक को व्याह ले.'' कुरुपा ने कहा, ''सच बई कुछ भी कह, सोहनी चीज को काटने के लिए हाथ उठता ही नहीं. गांव के पास होते ही बच्चे ये फूल लेकर खेलते ही.''

''खाली खेल ही क्यों. इसके फूलों को ले जाकर साग बनाने से कितना स्वादिष्ट लगता है! सच, दोनों गाछ, मानो इन पर आलता लगा दिया हो.''

रवि कह पड़ा, ''नदी की कछार में सफेद-सफेद खस के फूल पीले-पीले सन के फूल सुंदर लगते हैं. फिर मनवरा धान का खेत भी सुंदर, बाड़ी-बग़ीचा भी सुंदर है. खाने को हो तब तो इस खोखली सुंदरता से मन बहलाया जा सकता है, नहीं तो नहीं. हमें चाहिए वैसा सुंदर जिसमें अभाव मिटे या काम करने को मन हुलसे, और राज भर के सुंदर-असुंदर को चुनने-बीनने का हमारे पास समय नहीं. चलाओ कुल्हाड़ी! बेकार की गप्पों में समय गया.''

चोट पड़ी.

उसी बीच रवि के मन में गुदगुदाया—लाड़भरा जीवन. एक चेहरा याद आया. कुरुपा ने कहा, ''रहने दो बाबू, हम तो काट ही रहे हैं. उधर क्या हुआ, जरा देख आओ तो.''

रवि ने आपत्ति नहीं की. घूमकर देखने लगा.

अब आंखों के आगे था एक सपना, सब और सब का मिलकर एक विराट् क्षेत्र बन गया है. सबको पकड़े हैं, सबको पाल रहा है, वहां बाड़ बूड़ा नहीं, मन की खुशी से एक जगह सबके जरूरी-गैरजरूरी बड़े-बड़े बग़ीचे-बाग, खेत, और स्वस्थ-सबल लोगों के चेहरे से हंसी उफनकर गिर रही है. सब निश्चित हैं.

छवि अकेली तटबंध के तले खड़ी थी. पीठ की ओर सेंहुड़ा का पेड़ ओट किये है. घर से वह दिखता नहीं, परंतु इतने पास है कि आहिस्ते पुकारने पर भी सुनाई पड़ता. और छिन-भर में सूरज अस्त होगा, बांयी तरफ वो इधर नीचे झूल गया उस सूने सौंदर्य की प्रतिमूर्ति बन जो केवल इस सिहराते पौष में ही नजर आती है—सामने अनंत अकलन नीलिमा सच नहीं, कल्पना नहीं, मानो कल्पना का एक रूप नहीं, यौवन का स्वप्न और मर्म भावों का अनकहा संगीत वहां रंग का पिंड बन क्षण-भर के लिए विराजित है! बाद में वह लीन हो जायेगा.

छवि अन्यमनस्क होकर उसी सूर्य की ओर देख रही है मानो कि उसमें मिल जाने की चेष्टा कर रही थी. कभी सचमुच उसमें मिली जा रही थी, तब उसे अनुभव ही न होता. फिर भी उससे छिटक जाती, तब वह उदास करुण अनुभूति के बीच छन-छन से चौकन्नी हो उठती, उसकी छाती के नीचे थर-थर होती. कितनी जल्दी मन के अंदर एक दूसरे का पीछा करते हुए ज्वार भागा-दौड़ी करते, एक ही निःश्वास में कितनी अतीत की चेतना-समष्टि, भूले-अधभूले दृश्यों की स्मृति है. वेदना में ढंके गहरे आनंद के तले से जो भाव उठता, उसकी किरण शीतल, उदास, वर्ण की विचित्रता में और विपुलता में विह्वलकारक. उसका अविकल प्रतिरूप मानो यह सूर्य है.

पौष का यह अस्तगामी सूर्य आत्मस्थ हो चुका है. महाशून्य में अलग होने की तरह उसकी गोलाई की लकीर का स्पष्ट पता चल जाता है. सचमुच जैसे कितने ही अपार काल की अनंत दूरी की ओट से भी वह अपनी माया-ममता, प्रकट और प्रकाश का ज्योतिपुंज खींचकर स्वयं में यह रस संवरण कर अनासक्त होकर हंस देता है, उस हास्य में उद्दीपना नहीं पिघलती, अंधेरी चेतना में विचार की दीपशिखा भरे देता है—इस पल तुम गति रोको, स्थिर होओ, भेष खोल डालो, अनुभव करो, सोचो!—सुदूर देहात के पाटेली गांव में उस समय छवि के लिए मानो इतना ही उसका संदेश है.

सूर्य अस्त हो रहा है, शरशय्या पर हैं भीष्म, क्रियाशील, गति और शक्ति के आधार, वे आत्मस्थ होकर स्थिर हो गये हैं, दृष्टि की सीमा से चले जा रहे हैं दिव्य दृष्टि की सीमा में.

छवि की छाती गहरी सांस से उठती है, गिरती है. सेंहुड़ा के पेड़ से वह चिपट गयी है. तनिक खसखस या खड़खड़ाहट होते ही वह चौंक उठती.

बीच-बीच में उसका मन जाग उठता. तब वह इस अद्भुत गंभीर क्षण में अपने साथ उसका मुकाबला करती, क्या उसका उद्देश्य है? क्या उसने पाया है? ऐसे कितनी ही पूछ-ताछ, समझा-बूझी करती. अस्पष्ट-सी प्रतिध्वनि की तरह उसके मन-गहन में उसका उत्तर गुनगुनाते समय फिर वह अस्तगामी सूर्य से चिपटी थमी रहती. तब भले-बुरे के विचार और उद्देश्य से परे केवल एक स्पंदित मनःरूप होता.

किनारे के तले दूर तक फैल गया है फसल से भरा कछार. टटके-टटके बैंगन, टमाटर, मटर की फली. जाड़ों के दिन के कद्दू, करेला, भांति-भांति की तरकारियां, बीच में वो दूर रखवाली करने के लिए झोंपड़ी बनी है. और दाहिनी तरफ हल्दी सरसों का खेत. पहले इस कछार का पट्टा लेने के लिए कितनी बढ़-चढ़कर बोली, झगड़ा होता, परंतु अब यह फसल की है सामलाती से. सब खटते हैं, सब भाग पाते हैं. कछार के नीचे बालूचर है, खाली विस्तृति में कुछ सोने की झलक जैसे दिखाई दे रही है, उसके उधर नदी की सुरमई लकीर, उस पार तीखा कगार और अमराई.

और बांयी तरफ कोने में सूरज उतर पड़ा है. निचला आधा तो बुझ गया है, ऊपर का आधा दबता-दबता जा रहा है, अपरूप वर्ण के किसी देवल की तरह, सारे आकाश में रंग-रंगीले चंदोवे.

और है वह, छवि, सूरज चाहे डूबे या विलीन हो जाये, चाहे जितने चमत्कार-पूर्ण दृश्यपटल हों, वह अपने प्रकाश में आनंद ले रहा है. उसके पैरों तले भूरी घास है. पास में लाल रामजड़ा, वह उसके चिकने कोमल पत्ते के सिरे को अंगूठे और तर्जनी के बीच धीरे धीरे मसल रही है. वहां से तनिक हटकर किसी ने दोपहर में टट्टी की है, और एक तरफ किसी का पुट्ठे का हाड़ पड़ा है. नासा फनकारती थोड़ा मुंह खोल 'आं'

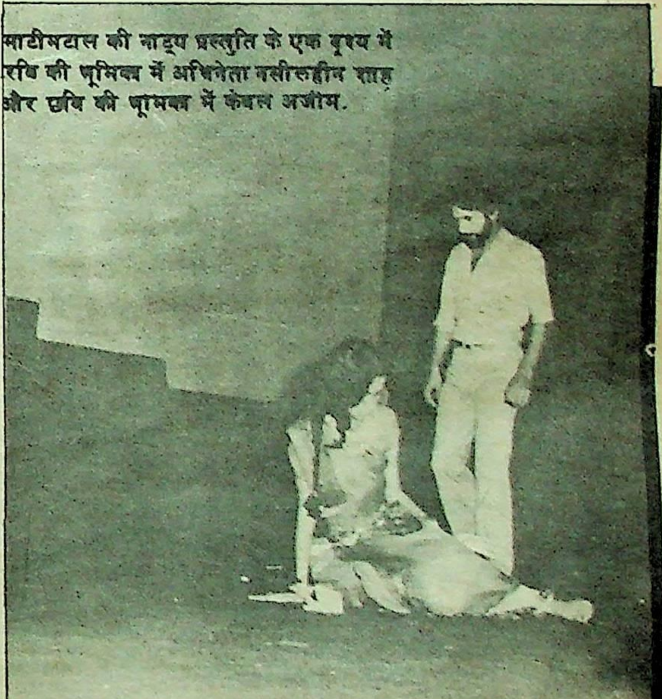

माटीमटाल की नाट्य प्रस्तुति के एक दृश्य में रवि की भूमिका में अभिनेता नसीरुद्दीन शाह और छवि की भूमिका में केवल अजीम.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये एक लय से वह दूर देख रही है. यौवन और जीवन की मूर्ति है वह आदमी!

कोई कार्यकर्ता नहीं, कोई विप्लवी नहीं, केवल आदमी!

वह अचंभे में भरी विह्वल होकर एकटक देख रही है उसी आकाश की ओर. थोड़ी-थोड़ी दूरी पर नारियल की फुनगिनों पर वहीं कितनी झुंड की झुंड अनजान चिड़ियां उड़ जाती हैं. कहां किस देश से आती हैं, फिर किधर चली जाती हैं.

अचानक उसे लगा—जितने यह सिर चकरानेवाले काम हैं, जितनी दांत भींचकर प्रतिज्ञा-पूर्तियां हैं, जितने आंख फाड़ मुट्ठी कसकर घड़ी-घड़ी बातें उगलते हुए आंदोलन हैं, जितने ऊंचे काठ के पायदान पैरों में बांध भांति-भांति के विचित्र साज सजा अपनी टेक ऊंची रखने के लिए जीवन व्यापी परिश्रम हैं, जितने धंधे या योजनाएं, चिंताएं या बुद्धि की कसरत है जिनमें भेजा पिघल जाता है—ये सब केवल आनंद के प्रकाश के लिए अवलंबन मात्र हैं. जो जिस तरीके से कर सके. वे अपने में आनंद के हेतु नहीं. आनंद तो अपने अंदर है, अनुभव कर सके तो वह है, न कर सके तो नहीं. जो अपनी पहुंच में है उसे हाथ बढ़ाकर ले लेना ही मानो बुरा है, सुस्थ सतेज सरल दृष्टि से देखना ही गलत है, अतः शायद आदमी हाथ पसारता है दूर—आसरा करता है कुटिल बुद्धि का और जटिल पंथ का.

छवि ने सतेज होकर मन में चंचलता का अनुभव किया, और उसे अनुभव हुआ अपने भीतर से निकल रही मादक महक का, खयाल में मन का एक खेल रच लिया कि वह आदमी नहीं, कोई फूल है, झरने या न झरने की उसके मन में कोई चिंता नहीं. वह है, बस इतना ही यथेष्ट है.

अपनी महक के साथ सांस से पी रही है परमतृप्ति, शांति, आनंद. लू की प्यास में शीतल पानी की घूंट पीने पर जैसे तृप्तिकर हो, उत्साह और उत्तेजना आती है, कुछ वैसा ही लग रहा है. समूचे सब उसके, अपने, स्नेही आदमी, किसी के साथ उसका विरोध नहीं, प्रतिद्वंद्विता नहीं. उसका आनंद ही उसकी सार्थकता है, वह नहीं चाहता कि कोई उसे चीन्हे या बड़ाई करे या प्रशंसा करे. यही हवा, यही छाया-रोशनी का दृश्य, यह माटी का उतार-चढ़ाव उसे मायाजाल में गूंथकर रखे हैं, प्रत्येक धागा ढूंढने पर कोई एक स्मृति, नहीं तो परिचित स्वप्न के सारे तार अनंत आनंद में समा जाते हैं.

इस गांव में कभी था हृदयों का फटना-टूटना, गाली-गलौज, निंदा, कलह, दंगा-फसाद. वे ही जो आज उसके बारे में इतनी प्रशंसा कर इतने आशीर्वादों से सींच-सींचकर प्रचार कर रहे हैं, कितने लोग उनमें से ऐसी बातें भी तो कहा करते थे कि सुनकर हाड़ से मांस झर पड़ता था. कितना बड़ा झूठ, कितना अपवाद! हलदी मलने की तरह कब से झड़ गया है, याद आने पर पीछे हट जाता, कोई परवाह नहीं है. वैसे ही उसे लालच नहीं इस प्रशंसा की. गांव की बहू-बेटी ने परदा खींचकर फेंक दिया है, जाति में बड़ी-छोटी, छुआछात, धन में होने न होने का भेद, मन के कोने-कोने में किस मांधाता के ज़माने से घर-घर में मतांतर, आंचल में ढेर की ढेर गांठ की तरह बांधे थे—वे सब मन से भूल चुके हैं, संतान पैदा करना, खाना पकाना, पान लगाना— इनके अलावा अब और भी विराट् सामाजिक जीवन का वे लोग उपभोग कर रहे हैं, एक गांव, एक घर, सब आदमी भाई-भाई के आदर्श की नींव रखकर वे नयी दुनिया गढ़ रहे हैं, सचमुच जैसे वे लोग मरुभूमि पर बहाते-बहाते चले जा रहे हैं भागीरथी की नयी धारा. यह सब उसे बिलकुल साधारण-सा लग रहा है, इस सब में उसका अपना कृतित्व कुछ है—उसे लगता ही नहीं; कुछ है भी ऐसा वह सोचती नहीं, बड़े-बड़े नाम उसे याद नहीं—त्याग, परिश्रम, सेवा, निष्ठा. फूल की तरह वह खिली है, हवा में उसका सुवास स्वतः घुल गया है, इसीलिए उसकी चेष्टा नहीं. उसका स्वाभाविक तरीका ही वही है.

उसमें जैसे, उसी तरह और भी कितनों में वह तरीका ढक्कन-बंद हो रुका पड़ा था, खुल गया है. सारे स्रोत एक जगह मिलकर हो गयी है, पुण्यधारा! कोई यदि आती है सी उन्माद भर जाता है. गर्व या गौरव या गरिमा का कण-भर भी मन में आता नहीं.

याद आ गया कि आज हरि साहू सामलाती में आ गया है. उसमें भी कोई विचित्रता नहीं, साग के धोरे में साग का पौधा धीरे-धीरे खुद ही उठकर खड़ा हो जाता है, हरसिंगार से फूल जैसे धीमे-से माटी पर झर जाता है, वैसे ही एकदम साधारण-सी यह घटना उसके देखने-सोचने के ढंग में मिल जाती है.

इसी हवा-पानी से गढ़े जायेंगे इस युग के छोटे-छोटे बच्चे. वे नये युग के कारीगर होंगे. भविष्य के घर-बारी आदमी, ये ही नन्हीं कोमल कलियां, कोई मां के पल्लू की ओट में मुंह छुपा रहा है, कोई पाटी-किताब लिये घर लौट रहा है. उसकी छाती फूलकर चौड़ी हो गयी. अबकी उसने देखा, आकाश में एक-एक तारे उग आये थे. फीके-फीके दिखते-दिखते अब उज्ज्वल होते जा रहे हैं. ऐसे ही उठेंगे इस धूल-माटी से इस देश के ज्योतिष्क, स्नेह-शांति से बढ़कर वे मैत्री के प्रतीक बनेंगे. उनके विचार या विश्वास में न विरोध होगा और न संदेह.

और वह होगी मां, जैसे वो दूर तट पर देवदारु की जोड़ी की ओट से चांद उगता आ रहा है, ये नन्हे-नन्हे तारों के ऊपर अपनी सुनहली हंसी उंडेले दे रहा है. वहां सब कितना सहज और स्वाभाविक है.

विचारों-भावनाओं में खोये हुए अचानक उसे उचाट-सा लगा. उसकी देह सिहर उठी, वह तन-तनाकर मुड़ गयी और देखा, शायद कोई उसके मन की भावनाओं को सुन रहा है, अस्त-व्यस्त होकर उठते समय कहीं कोई पास छुपा बैठा देख रहा है.

छवि ने थर-थराकर तटबंध के ऊपर दृष्टि दौड़ायी. कोई नहीं. एक कुत्ता दौड़ा-दौड़ा आ रहा है!

और जो बड़ी बात उसकी चेतना में घुल-मिल सचमुच जैसे उस पर रंग चढ़ाये थी उसे मानो स्पष्ट छू दिया तो, कान और गाल गरम-से हो उठे हैं, देह थर्रा रही है, छाती धड़-धड़ कर रही है, छवि मन ही मन सोच रही है कि आज इस गांव में रवि है.

लजाती-लजाती जब धीरे-धीरे तटबंध पर चढ़ी, और फिर उतरकर घर की ओर चल पड़ी, तब घूम-फिरकर स्मृति लौट गयी दो वर्ष पीछे की ओर, जब रवि के साथ उसकी पहली देखा-देखी हुई थी.

घर की प्राचीर के दरवाजे पर फिर रुककर प्रतीक्षा करने लगी. मन ही मन वह खयाल बुनने लगी कि चबूतरे पर चटाई डाले वे बैठे होंगे, पास मां होंगी, गुरु की मां, बग़लवाली कोठरी में पल्थी मारे बापू बैठे होंगे, भागवत-पाठ से पूर्व जैसे वे आंख मूंद कुछ समय बैठते हैं, किसी अनदेखी शक्ति के ऊपर या खाली शून्य पर संपूर्ण आत्मसमर्पण की भंगिमा, सामने लालटेन और मयूरचंद्रिका का चिह्न लगी भागवत का एकादश स्कंध, सिर के ऊपर मुकुट की तरह बड़ा धान का गुच्छा, उसमें कौड़ियों की माला लपेटी होगी. उन्होंने रवि को स्वीकार कर लिया है, उनके व्यवहार से साफ पता चलता है. इस घर ने भी उन्हें अपना लिया है. उसी व्यवहार से साफ पता चलता है.

उसी रूप में, उसी परिवेश में वह उन्हें देखना चाह रही है, बाहर संबंध स्थिर न हो, शंखवाले ने शंख न फूंका हो, पुरोहित ने मंत्र न पढ़ा हो परंतु मन ही मन उसका समर्पण हो चुका है.

और दो डग जाते न जाते उसके मन में मानो विर्तक उठता है—और अगर वे राज़ी न हुए तो? उनका यदि कहीं और मन होगा तो? असंभव! खूब ज़ोर से मन ने प्रतिवाद किया. समुद्र में ज्वार ही चंद्रमा के आकर्षण का प्रमाण है. बचपन में पढ़ी साधारण भूगोल की बात यही बताती है. और यहां उन्हें उस दिन से देखा, तभी से अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में अनुभव करती आयी है ज्वार का, उसी खींच-तान में उसने जीवन के लक्ष्य का अनुभव किया है. वह भला कभी झूठ हो सकता है?

... पर वे क्यों आये हैं? □

प्रस्तुति : बीथिका/कांता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

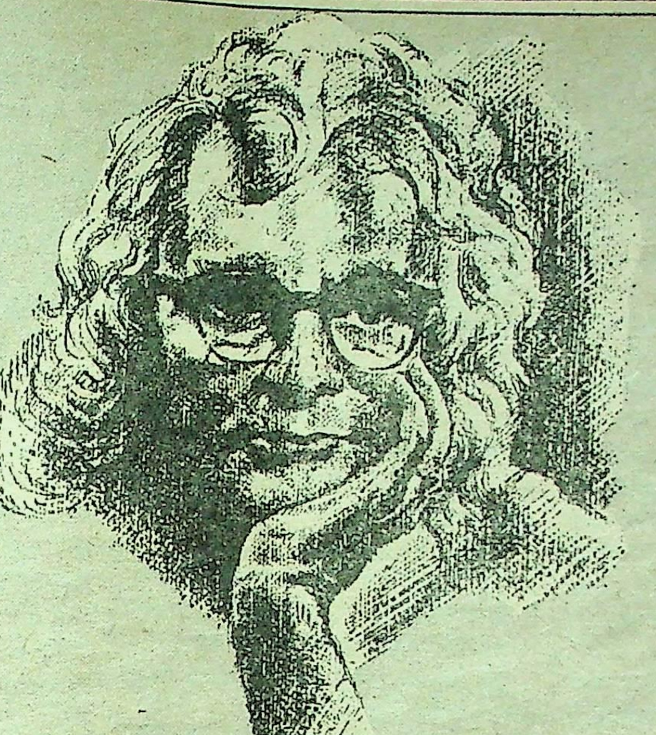

स्वयंवद्

इस सुंदर, साहित्य-पर्व के अवसर पर मैं सर्वप्रथम भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार के संयोजकों को हार्दिक बधाई देता हूं, केवल इसलिए नहीं कि उन्होंने मेरे कृतित्व को पुरस्कार के योग्य समझा, बल्कि इसलिए भी कि उन्होंने भारतीय भाषाओं के उपेक्षित साहित्य-साधकों को, जिन की भाषाओं को उन्हीं के देश में यथोचित स्थान एवं सम्मान नहीं मिल सका है और जो अपने को अपने ही देश में निर्वासित तथा विस्थापित-सा अनुभव करते हैं, इस योजना से पुर्नवास दे कर संस्थापित तथा प्रतिष्ठित करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है.

अपनी कृति 'चिदंबरा' को पुरस्कार मिलना मैं केवल एक संयोग की बात मानता हूं. हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में आज इतने महान् सर्जक तथा प्रतिभाशाली लेखक विद्यमान हैं कि उन में अपनी गिनती करने में मुझे संकोच का अनुभव होता है. भारत के प्रायः सभी लेखकों के प्रेरणा-स्रोतों में समानता मिलती है, और उन के साहित्य में भी सामान्यतः एक ही प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास पाया जाता है, इस का अनुभव वर्तमान युग के भारतीय साहित्यों के किसी भी अध्येता को सहज ही मिल सकता है.

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर 19 दिसंबर, 1969 को व्यक्त विचार.

स्त्री का सबसे सुंदर हिस्सा देह नहीं, उसकी भावना है.

सुमितत्रनंदन पंत से इंदु जैन की अंतरंग बातचीत

इंदु जैन : पंतजी, आप की यह लंबी कविता 'आत्मिका' मेरे सामने है जो आत्मकथात्मक कविता है और इसमें आपने कुछ पंक्तियां कही हैं प्रेम के बारे में—

'कल्मष लांछन के कांटों में खिला प्रेम
का फूल धरा पर.
उसको छूना मौन द्रोह के भू-कर्दम में
गिरना दुस्तर.'

प्रेम का फूल है लेकिन कल्मष और लांछन के कांटों से घिरा हुआ—ये कल्मष और लांछन क्या?

पंतजी : यह कल्मष और लांछन आज के जीवन की स्थितियां हैं. जब कि आदमी प्रेमियों पर उंगली उठाना चाहता है और उनको सोचता है कि केवल पंक में सने हुए लोग हैं और वह प्रेम की ऊंची कल्पना नहीं कर सकता. मैं बहुत किशोरावस्था में ही कविता के प्रति आकर्षिक हो गा था और सौंदर्य के प्रति कविता में मैंने कविता की उपमा दी है स्त्री से. क्योंकि वह सौंदर्य की प्रतिनिधि है. सौंदर्य तो हिमालय के अंचल में पैदा होने के कारण मेरे घर का मेहमान रहा है, सदैव से. तो मैं यह कहना चाहता था कि— भाई, प्रेम की जो अवस्था आज है, जो स्थिति आज है, वह तो द्रोह से, मोह से, लांछन से, कर्दम से घिरीं हुई है. हूं! वह कभी सार्थक होगी. मैंने हमेशा स्त्री के लिए लिखा है कि उसका हृदय तो तिजोरी में बंद है. उसको तो ऐसा होना चाहिए जैसे फूल अपने नाल से बंधा रहता है, वैसे स्त्री को अपने प्रियजन से, बंधा तो रहना चाहिए— घर से, लेकिन अपने हृदय का सौरभ— जैसे फूल सबों को देता है, वैसे भी स्त्री को अपनी भावना समस्त लोगों को देनी चाहिए जिससे कि भावना का आदान-प्रदान हो सके. क्योंकि स्त्री का सबसे सुंदर हिस्सा देह नहीं, उसकी भावना है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंदु : लेकिन पंतजी, क्षमा करें. इतनी भावना रखी और स्त्री को इतना बड़ा महत्व आपने दिया है. आपकी 'भावी पत्नी के प्रति' कविता भी पढ़ी और इसके अलावा बीसवीं शताब्दी में नारी को एक बिलकुल नया रूप देने की जब हम बात करते हैं, तो आपकी कविता की पंक्ति बार-बार दोहरायी जाती है— **'देवि, मां, सहचरि, प्राण'**— इस तरह से आपने नारी के रूप को देखा, लेकिन फिर भी विवाह नहीं किया, न ही कोई प्रेम-प्रसंग हम सीधा जोड़ पाते हैं आपसे. नारी को अपनी जिंदगी से इतना अछूता आपने कैसे रख दिया?

पंतजी : मैंने नहीं रखा, वह परिस्थितियों ने रखा. मैं पहाड़ में पैदा हुआ हूं—तो स्त्री-पुरुष दो अलग-अलग धाराओं की तरह—यहां तो गंगा-जमना मिल जाते हैं. वहां कभी भी नहीं मिलते. यह तो गांधीजी के आंदोलन के बाद लड़कियां रास्ते पर चलने लगीं, नहीं तो वे घर के अंदर बंद रहती थीं. तो वहां तो ऐसा संभव ही नहीं था कि उनकी ओर आकर्षित हों. लेकिन यह जो मैंने कविता लिखी है, यह बहुत प्रौढ़ावस्था की लिखी है. तब तक मैं बहुत कुछ सोच-विचार कर चुका था—प्रेम पर, स्त्री-पुरुषों के संबंध पर. यह तो मेरी तब की कविता है, तब मैंने लिखा है कि भई, 'प्रेम तो अभी इस पृथ्वी पर फूल की तरह खिल ही नहीं पाया है. उसको तो द्रोह और मोह के जो कांटे हैं और जो पंक है लाछन का, वह उसे पनपने ही नहीं देते.' इसमें मेरा व्यक्तिगत कुछ नहीं है. यह भी मानव जीवन का तब का इतिहास है और अब भी यह इतिहास है. मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूं कि मनुष्यता का विकास तभी होगा जब स्त्री स्वतंत्र होकर इस धरती पर विचर सकेगी, उसे भय नहीं रहेगा.

इंदु : पंत जी, लेकिन इतने संवेदनशील कवि में और जो संवेदन का पुंज मानता हो स्त्री को.....और एक सहगामिनी की इच्छा होती है हर एक व्यक्ति के भीतर, वह किसी भी वजह से—चाहे वह परिस्थिति की वजह से नहीं हुई पूरी, तो क्या उसकी एक छटपटाहट आपकी कविता में नहीं उभरी होगी.

पंतजी : खूब उभरी है मेरी कविता में. आप तो जानती हैं, वह मेरी कविता 'ग्रंथि' में है, 'उच्छ्वास' में है, 'आंसू' में है और मैंने स्त्रियों पर बहुत...मैं तो स्त्रियों को बहुत प्यार करता हूं, यह दूसरी बात है कि किसी स्त्री को अपना नहीं सका. स्त्रियों को तो मैं बहुत अधिक प्यार करता हूं. क्योंकि मैं जानता हूं कि भविष्य में मनुष्य को अगर कोई स्वस्तिक बना सकती है तो स्त्री बना सकती है, कब? जब वह अपने शील में, सौम्यता में हो, अपने सौंदर्य में रहे, और मनुष्य को प्यार करना सिखलाये, न कि अपनी देह से, जैसे इस युग में देह को प्रमुखता दी गयी है और देह की साज-बाज से मनुष्य को भटकाये.

इंदु : यही शायद आपकी इन पंक्तियों में आता है—

'हो न सका चरितार्थ प्रेम का धरा
स्वर्ग नारी उर में स्थित'

पंतजी : यह (सहमति)

इंदु : **'हृदय नहीं विकसित, शोभा के देह भाव से मन अवगुंठित.'**

पंतजी : यह (सहमति)

इंदु : तो देह भाव से मन अवगुंठित हो जाता है, लेकिन देह को नकारा तो नहीं जा सकता.

पंतजी : नहीं, नकारा नहीं जा सकता.

इंदु : तो क्या आपने आदर्श को शायद इतना ऊंचा तो नहीं रख लिया कि...?

पंतजी : बिलकुल ऊंचा नहीं रखा. अगर केंद्र में हृदय हो जाये तो देह तो अपने आप आ जायेगी, लेकिन यदि हृदय ही न हो, देह ही देह हो तो बतलाइए. यह कितना बड़ा संकट है.

इंदु : पंतजी, आपकी कविता में मैंने बराबर यह महसूस किया है कि उसमें नकार नहीं है, स्वीकार है. गांव में रहे तो गांव का स्वीकार. उसके बाद शहर में चले आये तो शहरी सभ्यता को भी, तिरस्कार आपने उसका भी नहीं किया, उसको भी स्वीकारा है. आपके रूपकों में जहां शिल्पी आता है, कलाकार आता है, वहां वैज्ञानिक का एक बड़ा भारी महत्व है. यह सब कुछ स्वीकार करते हुए क्या कोई एक आदर्श, क्या कोई परिकल्पना आपके मन में है, जिसमें आप गांव का, शहर का, तमाम पुरानी-नयी सभ्यताओं का एक तालमेल बिठाना चाहेंगे?

पंतजी : जी हां, यह तो मैं क्या चाहता हूं, यह तो यह युग चाहता है. विज्ञान ने जो कि एक जड़-जगत, एक बड़ी भारी बाधा भी मनुष्य के जीवन में, है न! उस बाधा को मिटा दिया है भौतिक विज्ञान ने. अब आप देखते हैं कि देश-काल मनुष्य की मुट्ठी में है. देश-विदेशों के लोगों के विचार, उनके धार्मिक दृष्टिकोण, नैतिक दृष्टकोण, संवैवादिक दृष्टिकोण, चाहे वे रेडियो से हो, चाहे वह सिनेमा से हो, चाहे देशांतर में घूमने से हो—मनुष्य एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं, यह दृष्टिकोण निकट आ रहे हैं. तो, पहले यह संभव नहीं था. भौतिकवाद और अध्यात्म का एक समन्वय तो इस युग के लिए अत्यंत आवश्यक ही है.

> भौतिकता, आध्यात्मिकता का समन्वय अत्यंत आवश्यक है. भौतिक विज्ञान ने मनुष्य को सभ्य बनाया. संस्कृत होने के लिए हमको अंतर्मूल जो मानव के हैं, हैं न, अंतर्जीवन के मूल्य—उनको खोज निकालना होगा.

हम में जो सबसे बड़ी हमारी मध्ययुगीन, सबसे भारी कमी रही है, वह यह कि हमने इस संसार को नकारा है, जीवन को नकारा है. हम कहीं मन के जंगल में खो गये हैं. हमने कहीं अध्यात्म को मन के शिखर से ऊपर माना है. लेकिन आज का अध्यात्म या आज का जीवन दर्शन कहता है कि भाई, चाहे इसे आप भगवान कहें, चाहे आत्मसंतुलन कहें, वह तो इसी जीवन के स्तर पर हमको प्रतिष्ठित करना है. अगर भगवान का नाम ही नाम आप लेते हैं, तो वह तो अधूरा है, भगवान के रूप का भी निर्माण कीजिए. भगवान का रूप आप दिगज्जीवन के रूप में ही निर्माण कर सकते हैं. तो, आज तो निर्माण युग है. इसमें तो विज्ञान और अध्यात्म, इनको मिल कर काम करना है. वैदिक युग में हम कहते थे— 'पद्मयाम' पृथ्वी-यह जो पृथ्वी है, यह खड़ी होने की जगह है—भगवान की. तो भगवान खड़े हों तो पृथ्वी पर तो, चाहे ग्राम-जीवन हो, चाहे नगर का जीवन हो. आज आपस में इनमें अदलाव-बदलाव हो रहा है. चेतना में भी. चाहे स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म हो. आपस में एक-दूसरे से टकराव उसमें हो रहा है. चाहे कम्युनिज्म हो, चाहे अध्यात्म हो. उनकी मान्यताएं एक-दूसरे में बदल रही हैं. जिसे हम कम्युनिज्म कहते हैं, आज वह कोरा कम्युनिज्म न रह सकेगा, जिसे हम अध्यात्म कहते हैं, मध्ययुगीन दृष्टि से, आज न वह अध्यात्म रह सकेगा. आगे का जो जीवन होगा वह बहुत विकसित होगा और इन दोनों संचरणों को समेट कर चलेगा. मैंने हमेशा अपनी दृष्टि में यह चीज रखी है. यह ठीक है कि मुझको इसमें पूर्णता कहिए या सफलता कहिए वैसी नहीं मिली है, जैसी मिलनी चाहिए. इसका कारण यह है कि यह तो बड़ी भारी संक्रांति का युग है, बहुत बदलाव का युग है और इसमें तो चीजें इतनी जल्दी-जल्दी बदल रही हैं कि मैं जहां खड़ा हूं कल देखता हूं कि दूसरी जगह खड़ा हूं और परसों पाता हूं कि अपने को कहीं तीसरी जगह खड़ा हूं. तो यह तो विश्व जीवन का ऐसा संचरण है इस युग में जिसको कोई टाल नहीं सकता.

भौतिकता, आध्यात्मिकता का समन्वय अत्यंत आवश्यक है. भौतिक विज्ञान ने मनुष्य को सभ्य बनाया, लेकिन संस्कृति नहीं बनाया. संस्कृत होने के लिए हमको अंतर्मूल जो मानव के हैं, हैं न, अंतर्जीवन के मूल्य-उनको खोज निकालना होगा. जो कि आपको भारतीय संस्कृति में बहुत पहले मिलते हैं, मध्ययुगीन संस्कृति में नहीं. तो इसलिए यह जो-समन्वय विज्ञान और अध्यात्म का होगा वह न विज्ञान ही रहेगा न अध्यात्म ही रहेगा, वह एक नयी मानवीय संस्कृति में विकसित होगा. इसलिए मैं सोचता हूं कि यह समन्वय अत्यंत आवश्यक है. विज्ञान ने देखिए ऐसी-ऐसी रोशनियां दी हैं कि बाहर के जगत का अंधकार आप एकदम हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती हैं. कोई ऐसा प्रकाश नहीं दिया है कि भीतर-जगत का अंधकार हरे या मनुष्य के हृदय का अंधकार हरे, तो इसके लिए तो आपको अंतर्जीवन के मूल्यों को ही खोजना होगा, जो कि आपके पास अध्यात्म में हैं. इसलिए यहं समन्वय अनिवार्य है. पश्चिम के जगत के लिए भी, पूर्व के जगत के लिए भी. हमको विज्ञान के मूल्य ग्रहण करने हैं. उनको भारतीय अध्यात्म के मूल्य ग्रहण करने हैं और इससे एक नयी मानवता के निर्माण में, मुझे ऐसी आशा है, कि बहुत सहायता मिलेगी.

इंदु : शायद यही वजह है कि आपने ये कविताएं लिखी हैं—मार्क्स के प्रति,...

पंतजी : बिलकुल.

इंदु : गांधी के प्रति...

पंतजी : बिलकुल.

इंदु : अरविंद के प्रति, इन सबका एक मेल बिठा सकें.....

पंतजी : मार्क्स का बहुत बड़ा एक इस युग के लिए दान है. है न! उसने जो दृष्टि दी है, वैज्ञानिक दृष्टि और श्री अरविंद ने तो भारतीय समस्त दर्शन को मथ कर आज के युग के अनुकूल बना दिया है, विवेकानंद ने भी ऐसा किया है. गांधी जी ने तो इसको कर्म की भूमि पर उतार दिया है. तो, मैं गांधीजी को इस तरह से इस युग के लिए संपूर्ण प्रतिनिधि के रूप में मानता हूं.

इंदु : पंतजी, आपने एक बड़ा एकाकी जीवन बिताया है. लेकिन साथ ही आपका मित्र-समुदाय भी बहुत बड़ा रहा है. दोस्तियां बनीं, दोस्तियां टूटीं. उनका प्यार, उनकी खुशियां दोनों आपने पायीं. उनके बारे में कुछ कहें.

पंतजी : बात यह है कि मैंने तो कभी एकाकी अनुभव ही नहीं किया है. आपसे सच कहता हूं. इतने बुढ़ापे में भी, इतनी उम्र में भी इतना आंदोलन विचारों का मेरे मन में रहा है कि मैंने कभी अपने को एकाकी अनुभव ही नहीं किया. और मेरे जो चारों ओर मित्र थे वे भी इस युग के एक-एक तरह से अपने-अपने विभिन्न विभागों के प्रतिनिधि रहे हैं. प्रसादजी-उन्होंने 'कामायनी' दे कर इस भौतिक युग को एक अंतर्दृष्टि देने का प्रयत्न किया है. निराला—निराला तो आप सभी लोग जानते हैं, निराला मेरे बहुत बड़े मित्र रहे हैं. लेकिन हम बहुत ही अलग-अलग स्वभाव के रहे हैं. लेकिन स्वभाव से मित्रता में कोई फर्क पड़ता नहीं. निरालाजी हमारे युग के एक 'जीनियस' कवियों में रहे हैं—छायावाद के.

ऐसे ही महादेवी रहीं, महादेवी की जो गीत-भावना है, वह तो अद्वितीय रही है. मैं सब लोगों से कहता हूं कि महादेवीजी छायावाद की नवनीत रही हैं. माखन रही हैं. इतनी मिठास, इतनी वेदना उनमें है और इतना सौंदर्यबोध उनके काव्य में मिलता है!

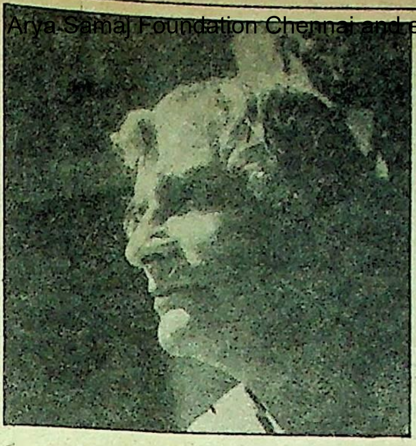

उसके बाद छायावादोत्तर कवि आते हैं—उनमें बच्चन. बच्चन तो मेरा बहुत ही बड़ा मित्र रहा है. मैं उसके घर में इतना रहा हूं कि बहुत ही ज्यादा रहा हूं और वैसे छोटे-मोटे मतभेद बराबर होते रहते हैं मित्रों में. लेकिन इससे हमारी मित्रता को कोई फर्क नहीं पड़ता. तेजी जी और बच्चन को मैं अपने परम मित्रों में मानता हूं. नरेंद्र तो मेरा छोटा भाई-सा रहा है. उसकी भी अपनी एक भावना का संसार रहा है. बच्चन, नरेंद्र, दिनकर—दिनकर को कौन भुला सकता है. 'इस युग का सूर्य हूं मैं' कहता है तो सूर्य तो दिनकर रहे ही हैं—तो हमारे जो मित्रवर आते हैं उसमें एक-से-एक, जिन्हें अंग्रेजी में 'इल्यूमिनरी' कहते हैं—प्रकाश केंद्र-वे रहे हैं और इसमें मैं अपने को बहुत सौभाग्यशाली मानता हूं.

इंदु : पंतजी, अगर आपको जिंदगी दुबारा पूरी की पूरी जीने को मिले तो कौन-सी ऐसी इच्छा है, जो अपूर्ण रह गयी. उसे जरूर पूरी करना चाहेंगे?

पंतजी : मैं चाहता हूं कि संसार से विषमता मिट जाये, मैं चाहता हूं कि यह संसार मनुष्य के रहने के लायक हो जाये—यह धरती मानवीय हो जाये. इसमें स्त्री-पुरुषों का चाहे संबंध हो, चाहे पुरुष-पुरुष का संबंध हो इस एक तरह का संतुलित और इस तरह का सजीव संबंध बन जाये कि जो हम स्वर्ग की कल्पना करते हैं, वह धरती पर ही साकार हो जाये.

और यह तो बिलकुल निश्चित ही है कि स्वर्ग और कहीं नहीं है, मनुष्य के भीतर है. उस मनुष्य को अपने भीतर के स्वर्ग को इस धरती पर प्रतिष्ठित करना है, समस्त आगे आनेवाले प्रयत्न इसी ओर रहें. यह आज जो इतना संक्रांति का युग और जो यह इतना बदलाव दिखता है, और ऐसे गुट और पंथ बन रहे हैं, यह बन रहे हैं, वह बन रहे हैं,—यह तो जैसा कि पतझर आता है न, वसंत से पहले. सब पत्ते झड़ते हैं! तो यह तो 'डिसइंटिग्रेशन' का युग है, विघटन का युग है, पुराने मूल्य विघटित हो रहे हैं.

इंदु : पंतजी, आपका हमेशा एक खास विन्यास रहा है कि कपड़ों के बारे में, बालों के बारे में और आप की एक पूरी रूप छटा बनी रहती है पढ़नेवालों के मन में हमेशा से. यह कैसे आपने विन्यास अपना बनाया?

पंतजी : क्या बतलाऊं, मैं तो यह कह सकता हूं कि मैं तो जन्मजात हिप्पी पैदा हुआ हूं. मैंने तो छुटपन से ही बाल रखे, नेपोलियन का चित्र देखा था जब मैं फोर्थ में पढ़ता था. तब से उसके बड़े घुंघराले बालों ने मुझे आकर्षित किया— तभी तो मैं उसके बालों के पीछे लगा.

और चूंकि मैं घर में सबका लाडला था, छोटा था, तो पोशाकें भी मैंने तरह-तरह की पहनी हैं. मेरे कोट भी खास ढंग के होते थे और टाई भी मैं पहनता था. और टोपी भी तरह-तरह की पहनता था. मखमल के कपड़े मुझे बहुत पसंद थे. मखमल के कपड़े बहुत पहनता था.

लेकिन फिर ऐसा हुआ, जब मैं साहित्यिक क्षेत्र में आया और वहां इलाहाबाद में एक बार द्विवेदी मेला हुआ, तो उसमें मेरे कुछ मित्रों ने वहां मेरी टाई खींचकर फेंक दी. तब से मैंने सोचा ऐसे ठूंठा कोट अच्छा नहीं लगता. तो बंद गले का कोट पहनने लगा और अब तो मैं, बात ये है, वृद्धावस्था में जितनी सादगी हो सकती है पोशाक में, वेशभूषा में उतनी सादगी पसंद करता हूं.

लेकिन छुटपन से मुझे रूप और भाव का बहुत बड़ा भारी संबल मिलता रहा है. और मैंने अपने को ही सजाया है. क्योंकि अगर मेरे घर में मेरी बीवी या यदि कोई होता, तो शायद उसे सजाता. खैर, यह कोई बात नहीं है. रूप का मैंने हमेशा आदर किया है और मुझे खुद उसमें अपना शरीर ही मिला और मैंने अपने शरीर को ही सजाया. मैं और क्या कह सकता हूं. एक छोटी-सी आत्म-रचना भी आपको सुना दूं!

नयी दृष्टि

खुल गये छंद के बंद
प्रास के रजत पाश
अब गीत मुक्त और युगवाणी
बहती अयास
बन गये कलात्मक भाव
जगत के रूप नाम
जीवन संघर्षण देता सुख
लगता ललाम
सुंदर, शील, सत्य
कला के कल्पित भावमान
बन गये स्थूल जगजीवन से हो एक प्राण
मानव स्वभाव ही बन मानव आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण
असुंदर को सुंदर!

—इसमें भी वही भावी जीवन की मेरी कल्पना है कि कला अपनी कल्पना में जिसका आह्वान करती थी अब वह जीवन में मूर्त होने जा रहा है.

(धर्मयुग और वार्ताकार के साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिराक गोरखपुरी : व्यक्तित्व और कृतित्व

फिराक की सृजनात्मक ऊर्जा

बिशन टंडन

स्वयंवद्

ऐसे समारोहों के अवसर पर पुरस्कार पाने वाले से आशा की जाती है कि वह उचित शब्दों में कुछ उचित बातें कहे जिनसे इस अवसर पर कुछ प्रश्नों पर रोशनी पड़े. जो लोग दुनिया की सेवा करते हैं, दुनिया उन्हें हुक्म देनेवाला मालिक या रहनुमा मानती है. राजनीति के या जमाने के वे बड़े लोग जो जमाने को बदल देते हैं, दुनिया उनकी इज्जत करती है; लेकिन दुनिया की कहानी बदलती रहती है और बदलने का यह सिलसिला शोहरत के मैदान में भी जारी रहता है. जैसे-जैसे समय बदलता रहता है बड़े-बड़े कर्मवीरों के नाम और शोहरतें धुंधली पड़ती जाती हैं. शोहरत मशहूर लोगों के साथ भी तन्ज या मजाक करती है. इतिहास एक व्यंग्य है. इतिहास अपने आप से भी छेड़ करने में नहीं चूकता. ये बातें सच उतरती हैं. इतिहास के योद्धाओं और नायकों और बड़े-बड़े विचारकों, बड़े-बड़े आविष्कारों को जन्म देनेवाले वैज्ञानिकों, दर्शनाचार्यों और बड़ी-बड़ी सभ्यताओं के रचयिताओं पर भी परिवर्तन सर्वशक्तिमान है. बड़े-बड़े उससे पार नहीं पा सकते हैं.

कवि की हैसियत से मैंने अपना काम कच्ची उम्र में नहीं बल्कि प्रौढ़ावस्था में शुरू किया. इस बीच मेरा जीवन उजड़ चुका था और बरबाद हो चुका था. इस नाजुक वक्त में कविता आरंभ करते हुए मुझे इस समस्या का सामना करना पड़ा कि जिस शांति और आनंद की ओर मैंने इशारा किया है उसका समझौता अपने दुखद जीवन से कैसे करूं. दुख को सुख का संदेश कैसे बनाऊं, यह काम था. यह सिलसिला बहुत धीरे-धीरे कायम हो सका.

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर 27 नवंबर, 1970 को व्यक्त विचार.

बंबई की एक महफिल का किस्सा है. वहां उर्दू के कई लब्ध-प्रतिष्ठ शायर उपस्थित थे. फिराक ने वहां एक शेर पढ़ा :

मौत एक गीत रात गाती थी
जिंदगी झूम-झूम जाती थी.

इस पर एक बहुत विख्यात शायर ने (उनका नाम मैं जान-बूझकर नहीं लिख रहा हूं; आजकल वह शायरी से अधिक प्रगतिवाद का झंडा फहराने में व्यस्त हैं) कहा, "फिराक साहब, गुस्ताखी मुआफ हो, हमें आप शेर सुनाइए, बकवास मत कीजिए." फौरन फिराक ने करारा जवाब दिया कि "मैं तो शेर ही सुना रहा हूं, बकवास तो आप कर रहे हैं." कुछ गुस्से में जरूर कही गई थी पर बात बिलकुल ठीक थी. आश्चर्य की बात नहीं. जो 'तू धूल भरा ही आया, ओ चंचल जीवन बाल, मृत्यु जननि ने अंक लगाया' में अतर्निहित गूढ़ भाव नहीं जानता वह यह शेर नहीं समझ सकता.

फिराक की शायरी समझना अगर मुश्किल नहीं तो आसान भी नहीं है. उसके लिए फिराक का व्यक्तित्व समझना आवश्यक है; और वह काफी दुरूह है. शायद इसी एहसास के साथ यह कहा गया है कि—

आने वाली नस्लें तुम पर रश्क करेंगी हम अस्रो
जब ये ख्याल आयेगा उनको, तुमने फिराक को देखा था

मैंने फिराक को देखा ही नहीं मुझे उन्हें बहुत अच्छी तरह जानने का सौभाग्य मिला. विश्वविद्यालय में पैंतालीस वर्ष पहले उनसे भेंट हुई थी. मिलना-जुलना शुरू हुआ. बाद में वह हमारे पड़ौसी भी हुए और मेरठ और दिल्ली में अधिकतर मेरे साथ ही ठहरा करते थे. आज जब उनके काव्य पर कुछ लिखने की धृष्टता कर रहा हूं तो स्मृतियों के अनेक चलचित्र मेरे अंदर उमड़-घुमड़ रहे हैं; शायद कभी उनको शब्द-बद्ध करूं.

टोपी से बाहर झांकते हुए बिखरे बाल, शेरवानी के खुले बटन, ढीला-ढाला (और कभी-कभी बेहद गंदा और मुसा हुआ) पैजामा, लटकता हुआ इजारबंद, एक हाथ में सिगरेट और दूसरे में छड़ी, गहरी और गोल-गोल डस-लेने-वाली-सी आंखों में उनके व्यक्तित्व का फक्कड़पन तो स्पष्ट हो जाता था पर उनकी गहन गंभीरता और विद्वता के प्रभाव का पैनापन वही समझ सकते थे जिन्हें उनको नजदीक से जानने का सुअवसर मिला हो. भारतीय दर्शन, साहित्य, संस्कृति, कला, संगीत आदि जैसे विषयों पर फिराक घंटों बातें करते रह सकते थे, जो उनके मिलने-जुलने वालों को विस्मय में डाल देती थी. फिराक की शायरी ऐसे ही व्यक्तित्व से उपजी है.

फिराक के काव्य की बात मैं एक बड़ी छोटी-सी, पर मेरी समझ में अत्यंत महत्वपूर्ण, घटना से शुरू करूंगा. विश्वविद्यालय में एक दिन मेरे एक मित्र ने बताया कि अगले दिन फिराक बी.ए. की अपनी कक्षा को कविता को समझने (एप्रीसियेशन आफ पोएट्री) पर वार्ता देंगे. मैं उनकी कक्षा का विद्यार्थी नहीं था पर पहुंच गया उनको सुनने. पहले तो लड़कों से नोक-झोंक हुई. कुछ परीक्षा-प्रेरित विद्यार्थी फिराक से इस वार्ता पर आपत्ति प्रकट करने लगे. उनका कहना था कि परीक्षाएं पास हैं और कोर्स बहुत बाकी है. इस पर फिराक ने कहा कि 'कोर्स' स्टूडेंट्स फ्रेंड्स यूनीवर्सिटी रोड पर किताबों की एक दूकान से 'की' खरीदकर खत्म कर लेना, बहुत-सी ऐसी किताबें मिलती हैं. इस बार यह आपत्ति की गई कि अन्य अध्यापक इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ने को मना करते हैं. फिराक कब चूकने वाले थे, बोले, वह तो इसलिए मना करते हैं क्योंकि खुद उन्हीं से पढ़कर पढ़ाते हैं. पूरी कक्षा में जोर से हंसी फूट पड़ी और जब वह हल्की पड़ी तो फिराक बोले, "देखो मैं जो आज तुम्हें पढ़ाऊंगा वह इस विभाग में बच्चन को (प्रसिद्ध हिंदी कवि जो उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे) छोड़कर कोई नहीं पढ़ा सकता." उसके बाद साहित्य और कविता की जो व्याख्या फिराक ने की वह सब ने दत्तचित्त होकर सुनी; कक्षा समाप्त होने पर सब स्तब्ध थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांट ने कहा है कि संसार का बोध हमें अपनी परिस्थितियों और वातावरण में असंबद्ध और बेतरतीब ढंग से बिखरी वस्तुओं से होता है. पर यही अव्यवस्था और बिखरापन मानव की विचार-प्रक्रिया में पककर व्यवस्थित और सम-स्वर हो जाता है. और अगले चरण में व्यवस्था और एक-रूपता का यही बोध मनुष्य की कल्पना की सहायता से कविता और ललितकलाओं में परिणत हो जाता है. वास्तव में यही आंतरिक एकात्मता विश्व की पूर्णता की परिचायक है. फिराक ने कहा है—

विश्व एक है ये नियम कभी न ऐ मन भूल
इक तारा थर्रा उठा जब तोड़ा इक फूल.

कार्लाइल ने भी कुछ ऐसी ही बात कही है कि "पूरा समाज गुप्त और अर्ध चैतन्य ढंग से जिन बातों को धुंधले ढंग से अनुभव करता है कवि उन्हीं अनुभवों को धुंधलके से उभारकर खुली रोशनी में प्रस्तुत करता है."

फिराक का सारा काव्य इसी अस्तित्व को अस्तित्व के रूप में समझने का प्रयास है. तभी तो वह जीवन को—विस्तृत, व्यापक जीवन को—काव्य का विषय मानते हैं. उन्होंने स्वयं कहा है कि "हिंदू संस्कृति और इस संस्कृति के मिजाज ने मुझे यह अनुभव कराया कि प्रेमी-प्रेमिका का संबंध, घरेलू जीवन, सामाजिक जीवन, प्रकृति के दृश्य, धरती, नदियां, सागर, पहाड़, लहलहाते खेत, बाग और जंगल, अग्नि, हवा, सूर्य, चंद्रमा, सितारे, मौसमों का जुलूस— किसी भी ईश्वर-पैगंबर, धार्मिक ग्रंथ, काबा या काशी से कहीं अधिक दिव्य और पवित्र है." इसी जीवन का "काव्यात्मक और कलात्मक अनुभव प्राप्त करना और दूसरों तक इसे पहुंचाना साहित्य का एकमात्र लक्ष्य है.... साहित्य हमारी चेतना की वह तपस्या है, वह साधना है जिससे हमारी विश्व या आत्मचेतना दिव्य बन जाये."

कलम की चंद जुंबिशों से
और मैंने क्या किया
यही कि खुल गये हैं कुछ रमूज-से हयात के

शायरी बस उसी का है इज़हार
रब्ते पिनहा जो कायनात से हैं.

विश्व या आत्म चेतना को दिव्य बनाना फिराक के लिए कोई संकीर्ण प्रक्रिया नहीं है. भौतिकता के चमत्कार के अनुभव को ही वह उच्च आध्यात्मिकता मानते हैं. पाकिस्तान में जब इस्लामी और रूहानी (आध्यात्मिक) साहित्य का नारा उठाया गया तो फिराक ने 'नुकूश' (लाहौर की एक मासिक पत्रिका) के संपादक को पत्र में लिखा कि साहित्य में आध्यात्मवाद व भौतिकवाद जैसे धड़ों का प्रश्न ही नहीं उठता. आज की समस्याओं की पृष्ठभूमि में "एक ही प्रकार की मुसीबत में गिरफ्तार मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दुनिया को एक ही उद्देश्य के साहित्य की आवश्यकता है...... वर्तमान का बोध और वर्तमान में जिस उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएं संसार भर के लिए निहित हैं, उन संभावनाओं का बोध यही वह साम्यवादी सत्यता (सोशलिस्ट रियलिज्म) है जिसके सहारे साहित्य की रचना होगी. यह सत्यता न इस्लामी है, न ईसाई है, न हिंदू है...." (हिंदी रूपांतर)

लेकिन फिराक की इस साम्यवादी सत्यता को किसी 'वाद' से जुड़ा समझने की भूल नहीं करनी चाहिए. अपने प्रगतिवादी मित्रों को एक बार उन्होंने यही चेतावनी दी थी—

"याद रहे कि साहित्य और संस्कृतियों के बावजूद अगर अपने सिलसिले और स्रोतों से विमुख हो गये तो सख्त घाटे में रहेंगे. संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद से लेकर टेनीसन..... टैगोर, गालिब और इकबाल तक के साहित्य में दूसरों को प्रभावित करने के ढंग और कलात्मक चमत्कार हमें मिलते हैं, यदि हमने उन्हें प्राप्त नहीं किया तो केवल प्रगतिशील उद्देश्य हमसे महान साहित्य की रचना नहीं करवा सकते....हमें प्राचीन साहित्य की आत्मा को अपने अंदर समोना है..... यदि हम प्राचीन साहित्य के तत्वों का भेद न पा सके, तो हमारा साहित्य प्रगतिशील होते हुए भी एक उखड़े पतंग के समान होगा."

इस भावनात्मक और वैचारिक पृष्ठभूमि की—वस्तुतः इनके अद्भुत सामंजस्य की—लंबी कहानी है. एक समृद्ध परिवार के दार्शनिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक वातावरण ने फिराक को बचपन से ही अत्यंत प्रभावित किया. 'रूहे कायनात' की भूमिका में स्वयं फिराक ने इसके बारे में लिखा है. प्रेरणा के स्तर पर 'रूप' की भूमिका में फिराक ने लिखा है— "मुझे याद पड़ता है कि मैं अपने बचपन में मामूली से मामूली चीज देखकर किसी अकथनीय प्रेरणा से विह्वल हो जाया करता था (इन चीजों की सूची में चूल्हा, घड़ा, घरोंदे, खेत, बहता पानी, सब्जियां, चिड़िया, जानवर, उनके बच्चों, लोक गीत, लोककथाएं आदि सभी कुछ सम्मिलित हैं) सारांश यह कि रास्तों में पड़े ठीकरों से लेकर सूरज और चांद तक कोई ऐसी वस्तु थी ही नहीं जो मुझे निमग्न न कर दे.... यही दिव्यता, हृदयग्राहयता, अकथनीय मान्यताओं की अनुभूति साधारण में असाधारण की झलक, यही अपनत्व शायद हिंदू संस्कृति का रहस्य है."

लेकिन भावनात्मकता का इतना उद्रेक होते हुए भी फिराक की आरंभिक काव्य-यात्रा ने बड़ी धीमी गति से प्रगति की. इसका स्पष्टीकरण फिराक ने अपनी पुस्तक 'मशाल' की भूमिका में दिया है......

"बात यह थी कि शायरी करने की बनिस्बत उर्दू शायरी ने हमें जो सरमाया दिया है, उसकी जांच-पड़ताल में मुझे गहरी दिलचस्पी थी. उस शायरी पर नजर डाली तो उसमें बहुत कुछ खूबियां नजर आयीं, लेकिन कमियां और खराबियां भी बहुत मिलीं." बाद में इसको और स्पष्ट करते हुए फिराक ने 'बज्मे-जिंदगी: रंगे-शायरी' की भूमिका में लिखा है—

"मुझे, उर्दू-काव्य साहित्य में और गद्य-साहित्य में भी अच्छी से अच्छी और सुंदर से सुंदर, ऊंची से ऊंची चीजें मिल चुकी थीं और मिलती रहती थीं. इन बातों के होते हुए भी मुझे मजमूई हैसियत से एक असंतोष का आभास होता रहता था. शायद इस कारण से कि मेरे अंदर हिंदू विचारों और हिंदू संस्कृति की गहरी से गहरी, बहुमूल्य सच्चाइयां और अनुभूतियां विद्यमान थीं जो उर्दू कविता में कम ही मिलती थीं. हिंदू संस्कृति का मिजाज और उस मिजाज की ध्वनि, उर्दू कविता में कदाचित ही मिलती थी."

इसको और स्पष्ट करते हुए 'रूप' की 1976 की भूमिका में फिराक ने लिखा है—

"मुस्लिम कल्चर बहुत ऊंची चीज है और पवित्र चीज है, मगर उसमें प्रकृति, बाल जीवन, नारीत्व का वह चित्रण या घरेलू जीवन की वह बू-बास नहीं मिलती, वे जादू भरे भेद नहीं मिलते, जो हिंदू कल्चर में हमें मिलते हैं. कल्चर की यह धारणा हिंदू घरानों के बर्तनों में, यहां तक कि मिट्टी के बर्तनों में, दीपकों में, खिलौनों में, यहां तक कि चूल्हे-चक्की में; छोटी-छोटी रस्मों में और हिंदू की सांस में इसी की ध्वनियां, हिंदू लोकगीतों को अत्यंत मानवीय संगीत और स्वर्गीय संगीत बना देती है.

बाबुल मोर नइहर छूटल जाए
ऊ ड्योढ़ी परबत भई, आंगन भयो विदेस.

यह तो हमें गालिब भी नहीं दे सके, चकबस्त भी नहीं दे सके.

उर्दू कविता में भारतीयता की हजारों सुंदर से सुंदर झलकियां तो खुद मुसलमानों ने दिखाई हैं. यह सब होते हुए भी मानवता और दिव्यता का संगम इन कविताओं में नहीं मिलता."

चर्चा आगे बढ़ाने से पहले एक बात कह देना आवश्यक लगता है. फिराक को हिंदू संस्कृति के प्रभाव ने कट्टरवादिता से बिलकुल अछूता ही छोड़ दिया है. उनका मानना है कि—

"हम काव्यात्मक और कलात्मक चेतना से, मनन और विवेक से ऐसे अनुभव प्राप्त कर सकें जिससे संसार से अलग किसी खुदा, ईश्वर, मजहब, पूजा-पाठ, सिज्दा-दंडवत या सांप्रदायिकता का कोई स्थान न हो. हिंदू-विचार सांप्रदायिक विचार नहीं है. किसी विशेष जाति या संप्रदाय को दूसरी जातियों और संप्रदाय से अलग करके हिंदू विचारों का निर्माण नहीं हुआ है. जब ये विचार ईश्वरवादिता से मुक्त हैं, तो संप्रदायवादिता से कैसे जकड़े रह सकते हैं." (भूमिका-बज्मे-जिंदगी: रंगे-शायरी)

फिराक की सृजनात्मक ऊर्जा का विवरण जानबूझकर कुछ विस्तार से दिया गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिराक ने उर्दू काव्य को जो बहुत कुछ नया दिया है उसका स्रोत इसी संवेदनशील अभिव्यक्ति और विवेकशील चिंतन के अद्भुत सामंजस्य में ही मिलता है. इसी पृष्ठभूमि से ऐसी कविता उपज सकती है—

संजोग बियोग की कहानी न उठा
पानी में भीजते कमल को देखा.
बीती होंगी सुहाग रातें कितनी
लेकिन है आज तक कुंवारा नाता.

लहरों में खिला कंवल नहाये जैसे
दोशीज़ये-सुबह गुनगुनाये जैसे
ये कोमल रूप का सुहानापन आह
बच्चा सोते में मुस्कराये जैसे.

फिराक के काव्य की विस्तृत व्याख्या यहां संभव नहीं, केवल कुछ विशिष्ट पक्षों की चर्चा ही हो सकती है. संक्षेप में, सबसे पहली बात तो यही है कि फिराक की शायरी में जो मानव को प्रतिष्ठा और मानवीयता को महत्व दिया गया है वह अन्यत्र इतना प्रभावशाली नहीं हो सका. 'इस भरी दुनिया में आदमी को आदमी होता नहीं दस्तयाब.' इस दुख भरी दुनिया का असली रूप 'जब आंख खुली फिराक देखा न गया.' तभी—

हजारों खिज़्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की
ये सब तस्लीम, लेकिन आदमी अब तक भटकता है

और शायर उसी के लिए चिंतित है-

जो उलझी थी कभी आदम के हाथों
वह गुत्थी आज तक सुलझा रहा हूं.

फिराक के लिए मानव देवता से भी बड़ा है—

गैबदां है मगर खुद को भी
नीयते आदमी नहीं मिलती.

शायर चाहता है—

पाते जाना है और न खोते जाना
हंसते जाना है और न रोते जाना
अव्वल और आखिरी पयामे तहजीब
इन्सान को इन्सान है होते जाना.

लेकिन उर्दू काव्य को फिराक की खास देन है प्रेम और सौंदर्य काव्य का नया रूप. यह अपने में बहुत ही विस्तृत विषय है और नीचे के संक्षिप्त विवेचन के उसके साथ न्याय नहीं हो सकता, फिर भी. फिराक की अधिकतर शायरी इश्किया शायरी है लेकिन यह उर्दू की सामान्य इश्किया शायरी से भिन्न है. प्राचीन इश्किया शायरी के विपरीत फिराक में प्रेम की अभिव्यक्ति एक जीवंत और गतिशील शक्ति के रूप में है. स्वयं फिराक ने लिखा है—

''....... महान इश्किया शायरी के लिए जरूरी है कि शायर का बोध और ज्ञान, अंत:प्रेरणा और सदाचार संबंधी दिलचस्पियां व्यापक हों. उसका व्यक्तित्व एक व्यापक जिंदगी और व्यापक कल्चर का वाहक हो. उसका दिल भी बड़ा हो और दिमाग भी बड़ा हो—यानी ऐसे दिल और दिमाग़ जिन्हें कल्चर ने रचाया-सजाया हो.''

(हिंदी रूपांतर)

उर्दू शायरी की कमियों और खामियों (इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है) की पड़ताल करके फिराक ने एक नयी हुस्न और इश्क की दुनिया बसाई जिसमें, ''केवल व्यक्तिगत भावनाओं के सुंदर वर्णन का नाम नहीं, बल्कि उन भावनाओं के सुंदर वर्णन का नाम है जो व्यक्तिगत होने पर भी सामूहिक हैसियत रखती हो.''

इस नयेपन की मैं कोई व्याख्या करूं इससे अच्छा होगा कि प्रसिद्ध समालोचक मुहम्मद हसन अस्करी ने इस विषय पर जो लिखा है उसको संक्षेप में उन्हीं के शब्दों में लिख दूं—

''फिराक साहब ने उर्दू शायरी को एक बिलकुल नया आशिक दिया है और उसी तरह बिलकुल नया माशूक भी. इस नये आशिक की एक बड़ी स्पष्ट विशेषता यह है कि इसके भीतर एक ऐसी गंभीरता पायी जाती है, जो उर्दू शायरी में पहले नजर नहीं आती थी...... उनके काव्य में ऐसी तीव्र प्रबुद्धता है जो उर्दू के किसी शायर से दब के नहीं रहती, चाहे ज्यादा ही हो. अतएव उनके आशिक में एक तरफ तो आत्मनिष्ठ मानव की गंभीरता है, दूसरी तरफ प्रबुद्ध मानव की गरिमा..... फिराक के आशिक और माशूक के पास जिस्म तो खैर है ही दिमाग भी है...... जिसे इश्क के अतिरिक्त दूसरी मशगूलियां भी निभानी होती हैं....... यहां दो शरीर मात्र ही एक दूसरे से नहीं मिलते, बल्कि दो दिमाग भी गुंथे हुए हैं. फिराक के आशिक को आप उस वक्त तक पूरी तरह नहीं समझ सकेंगे, जब तक फिराक के महबूब को भी न समझ लें. फिराक साहब ने महबूब को एक ऐसी निर्वेद स्थिति प्रदान की है, जो उर्दू-काव्य में उसे प्राप्त नहीं थीं........ उनका महबूब सिर्फ एक टाइप नहीं बल्कि एक पात्र है..... यह आशिक और माशूक दो मनोवैज्ञानिक अवस्थाएं हैं......''

इतना और जोड़ दिया जाए कि फिराक की इश्किया शायरी का प्रेरक इश्क तो है ''पर यह शायरी सिर्फ इश्क नहीं, बल्कि पूरे विवेक ने की है.'' फिराक ने प्रेम को पूरे जीवन के परिप्रेक्ष्य में देखा है: दूसरे शब्दों में कई मानसिक अनुभूतियों में से प्रेम भी एक है. यह भी स्पष्ट है कि यह केवल शारीरिक भावनाओं तक सीमित नहीं है. एक रूबाई में फिराक कहते हैं—

कहती हैं यही तेरी निगाहें ऐ दोस्त
निकली नयी जिंदगी की राहें ऐ दोस्त
क्यों हुस्नो-मुहब्बत से न ऊंचे उठके
दोनों एक दूसरे को चाहें ए दोस्त.

एक और शेर—

हुस्न परस्ती पाक मुहब्बत बन जाती है जब कोई
वस्ल की जिस्मानी लज्ज़त से रूहानी कैफीयत ले.

यह वड़ी पावन पूजा भी है—

पैगंबरे इश्क हूं समझ मेरा मकाम
सदियों में फिर सुनाई देगा ये पयाम
वो देख कि आफ़ताब सजदे में गिरे
वो देख उठे देवता भी करने को सलाम.

इस प्रकार फिराक की शायरी में 'इबहाम' और 'फसाहत' दोनों का सामंजस्य है. फिराक की इश्किया शायरी को इसी पृष्ठभूमि में समझने की कोशिश करनी चाहिए.

इश्क में सच ही का रोना है
झूटे नहीं तुम, झूटे नहीं हम.

मुझको गुनाहो-सबाब से मतलब? लेकिन इश्क में अक्सर आए
वो लम्हे खुद मेरी हस्ती जैसे मुझे देती हो दुआएं
छोड़ वफा-ओ-ज़फा की बहसें, अपने को पहचान ऐ इश्क!
गौर से देख तो सब धोखा है, कैसी वफायें कैसी जफायें!

कभी पाये-पाये हुए तुझे, कभी खोये खोये हुए तुझे
कभी बेनयाजे-तलाश है, कभी इश्क मायले जुस्तुजू.

माशूक (जिसकी चर्चा ऊपर हुई) को समझने के लिए—

एम फ़ुसूं-सामां निगारे-आश्ना की देर थी
ऐसी भरी दुनिया में हम तनहा नज़र आने लगे.

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो
तुम को देखें कि तुम से बात करें.

इस इश्किया शायरी का असली सौष्ठव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिराक के आशिक के विरह में दिखाई देती है. अधिकांश उर्दू शायरी में आशिक की जहनियत नीची रही है (संभवतः इसी आधार पर पं. नेहरू ने डा. महमूद को अपने एक पत्र में लिखा था कि उर्दू शायरी अधिकांशतः 'सेंटीमेंटल स्टफ' है) लेकिन फिराक का इश्क किसी मानसिक गिरावट का द्योतक नहीं है. यहां आशिक एक उदास संसार का निर्माण करता है जो रूमानी तो है, पर उसमें संवेदनशीलता और प्रबुद्धता है. उसने अपने लिए जो वातावरण बनाया है उसका चित्र देखिए (केवल गिने चुने उदाहरण दे रहा हूं, वैसे फिराक की कविता इनसे भरी पड़ी है) विरह में उदास हो जाना स्वाभाविक है: उदासी बढ़ती ही जाती है— न कटती है, न घटती है और फिर प्रेमी इसमें पूरी तरह तल्लीन हो जाता है. इसी स्थिति को महोदवी के संदर्भ में डा. शिवमंगलसिंह सुमन ने वेदना की विहवलता की संज्ञा दी है. फिराक और महादेवी के काव्य में गहरा अंतर होते हुए भी इस वेदना, पीड़ा और उदासी की विह्वलता, गहनता और भावना की तीव्रता में काफ़ी समानता है.—

मुझे खबर नहीं ऐ हमदमों, सुना ये है
कि देर देर तक अब मैं उदास रहता हूं.

शामे-ग़म कुछ उस निगाहे नाज़
की बातें करो
बेख़ुदी बढ़ती चली है राज़ की बातें करो.
साग़रे-सुबह-चकां लाओ कि कुछ रात कटे
नूरे-ख्य़ाम को छलकाओ कि कुछ रात कटे.
सुकूते-शाम मिटाओ बहुत अंधेरा है
सुखन की शम्अ जलाओ बहुत अंधेरा है.

यह रात वो है कि सूझे जहां न हाथ को हाथ
खयालो दूर न जाओ बहुत अंधेरा है.

विरह बहुत गहरा हो जाने पर फिराक का आशिक विक्षिप्त नहीं होता, अपने में ही डूबता जाता है, तल्लीन होता जाता है — (कोष्ठक में महादेवी की पंक्तियां हैं)

शिव का विष-पान तो सुना होगा
मैं भी ऐ दोस्त, पी गया आसूं.
(आंसुओं का क्षार भी मैं,
बांटती नित स्नेह का रस)
शबे-हिज्र भी यूं तो मगर पिछली रात को
वो दर्द उठा फ़िराक कि मैं मुसकुरा दिया.
अपने हवास में शबे-गम कब हयात है
ऐ दर्द-हिज्र तू ही बता कितनी रात है.
('पूछता क्यों शेष कितनी रात')

देखिए तन्हाई का आलम—

'आये तुम आज भूली हुई याद की तरह'
(सजनि कौन तम में परिचित-सा, सुधि-सा
छाया-सा आता)

कौन करे है बातें मुझसे तनहाई के पर्दे में
ऐसे में किसकी आवाजें कानों में रस घोले हैं.
(अलक्षित आ किसने चुपचाप सुनी अपनी
सम्मोहन तान)

तन्हाई की रातों ने अक्सर मुझको मिलवाया है
मुझसे', उस समय—

कल मुझसे और मेरे दिल में ता-देर
रही सरगोशी-सी
कुछ मैंने उसे समझाया है
कुछ उसने मुझे समझाया है.
मैं हूं, दिल है, तनहाई है,
तुम भी जो होते अच्छा होता.
शामें किसी को मांगती हैं आज भी फिराक
गो जिंदगी में यूं मुझे कोई कमी नहीं.
(तेरी सुधि बिन क्षण सूना)

विरह की रात में—

जागे हैं फिराक आज गमे-हिज्र में ता-सुबह
आहिस्ता चले आओ अभी आंख लगी है.
('कन कन में बिखरी सोती है, अब उसके जीवन की प्यासा जगा न दे हे दीप कहीं, उनको तेरा यह क्षीण प्रकाश' महादेवी को भी क्षीण प्रकाश से प्रिय के जाग जाने की चिंता है)

प्रिय से मिलने की इच्छा है पर कब—

झपकाते हो आंख जब सितारों के चराग़
ऐसे में हो काश मुझको तेरा दीदार.
(करुणामय को भाता है तम के पर्दे में आना हे तम की दीपावलियो क्षण भर को तुम बुझ जाना)

और फिर वे क्षण भी आते हैं जब अपनी बेखुदी ही सबसे अधिक प्रिय हो जाती है. प्रिय पास आ भी जाये तो भी उसकी कमी खटकती है; कभी कभी पहचाना भी नहीं जाता.

आज बहुत उदास हूं मैं यूं कोई ख़ास गम नहीं.
हाय ये बेख़ुदी ये ग़म आये जो वो तो हम नहीं.
(पंथ देख बिता दी रेन, मैं प्रिय पहचानी नहीं)

बस प्रेमी अपने को ही ढूंढने लगता है, प्रेमी और प्रेमिका का अंतर मिट जाता है.

तुझे पाके मैं खुद को पाऊंगा,
कि तुझी में खोया हुआ हूं मैं
ये मेरी तलाश है इसलिए कि
मुझे है अपनी ही जुस्तजू.
न ये भेद हुस्न का खुल सका,
न भरम ये इश्क का मिट सका
किसी रूप में ये है तू कि मैं,
किसी भेस में ये हूं मैं कि तूं.
(मुझ में नित बनते मिटते प्रिय
तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या.)

फिराक की इससे भी बड़ी देन है सौंदर्य-काव्य. उर्दू में उनसे पहले उच्च श्रेणी का ऐसा काव्य नहीं मिलता, इसीलिए उन्हें शायरे-जमाल भी कहा गया है. नर्म-ओ-नाजुक शायरी तो उर्दू में बहुत है और फिराक के कलाम में भी यह बिखरी पड़ी है. पर भावना और भाषा दोनों स्तरों पर जो नयापन फिराक लाये वह विस्मयकारी है. भावों और शब्दों की सुंदर पैठ, अद्भुत रूपकों और उपमाओं का उपयोग, सौंदर्य की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएं और उनका सजीलापन उर्दू क्या भारतीय काव्य में भी अन्यत्र कम ही मिलेगा. मेरी समझ में इसका कारण यह है कि फिराक सौंदर्य के उपासक हैं. वह कहा करते थे— ''सौंदर्य सतही होता है पर कुरूपता अंतरतम को बेध डालती है.'' (ब्यूटी इज स्किन डीप बट अगलीनेस इज सोल डीप) 'हिंडोला' में, जो उनके बचपन का आत्मकथ्य है, उन्होंने इसको स्वीकारा है.

यही 'शऊरे जमाल' आगे चलकर उनकी शायरी में ज्वालामुखी की तरह फूटा. भावना का उद्रेक और कल्पना की गहनता देखिए—

उसका सरापा हमसे पूछो
चेहरा ही चेहरा पांव से सर तक.

'रूप' की रूबाइयां तो सौंदर्य की सजीव प्रतिमाएं हैं. केवल कुछ ही उहादरण देना पर्याप्त होगा (दो तीन रूबाइयां पहले उद्धृत कर चुका हूं). पहली ही रूबाई में-'पड़ती है जब आंख तुझपे ऐ जाने-बहार, संगीत की सरहदों को छू लेता हूं' जैसा चित्र तो उर्दू शायरी के लिए बिलकुल नया है.

आ जाता है गात में सलोनापन और
चंचलपन, बालपन, अनिलापन और
कटते ही सुहागरात देखें जो उसे
बढ़ जाता है रूप का कुंवारापन और.

हम्माम में उर्यानिये-तन का आलम
पैकर धुंधलके में झलकता कम कम
एक हलकी थरथरी-सी सर से पा तक
शबनम से धुली शफक़ खाती है क़सम.

नग्न-तन का ऐसा सजीला चित्रण चित्रकला में भी शायद न मिल सके. लेकिन फ़िराक के लिए सौंदर्य केवल प्रेयसि या अभिसारिका में ही नहीं है. 'रूप' की अनेकों रूबाइयों में गृह-लक्ष्मी, बच्चे को खिलाती हुई मां, अलगनी पर कपड़ा सुखाती गृहिणी, तुलसी पर जल चढ़ाती नारी, गाय को दाना खिलाती व दुहती ग्राम्यबाला के भी ऐसे ही सजीव चित्र हैं.

फिराक प्रकृति से अत्यत प्रभावित हैं. प्रकृति उनके लिए एक दिव्य ज्ञान है ('हर जलबे से एक दर्स नमूं लेता हूं') और सत्य का आवरण है. प्रकृति के प्रति तल्लीनता उनकी कविता में स्पष्ट दिखाई देती है.

हर एक जलबे में गेबो शहूद वो मिलाय
हर एक नज़ारा एक आइना खांनये हैरत
तारों को, हवाओं को, फ़जाओं को सुला के
ऐ रात कोई आंख, अभी जाग रही है.

बाहय (प्रकृति) और अंतर के सौंदर्य से मिलकर ही ऐसी शायरी हो सकती है.

जिस तरह नदी में एक तारा लहराय
जिस तरह धरा में एक कौंदा बल खाय
बरमाये फिज़ा को जैसे एक चंद्र किरन
यूं ही शामें-फिराक तेरी याद आये.

और अंत में जोश मलिहाबादी ने अपनी आत्मकथा 'यादों की बारात' में फिराक के लिए जो कहा है कि ''जो शख्स यह तस्लीम नहीं करता कि फिराक का महान व्यक्तित्व हिंदुस्तान के माथे का टीका, उर्दू जुबान की आबरू और शायरी की मांग का सिंदूर है, वो खुदा की कसम निरा घामड़ है.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलख अकेला

फणीश्वरनाथ रेणु

स्वयंवद्

संभव है कि ऐसे अवसरों पर साहित्यकार से साहित्य के अथवा जीवन मात्र के बारे में कोई बड़ी, गुरु-गंभीर बात, कोई शाश्वत संदेश, कोई प्रबोधन अपेक्षित होता हो. मेरे पास वैसी बड़ी या गहरी कोई बात कहने को नहीं है. पचास-एक वर्ष पहले कदाचित् मुझ से भी वैसी बात की अपेक्षा होती, और उसे पूरा करने के लिए मैं स्वयं भी दूर की कोई कौड़ी लाने का प्रयास करता. पर आज, आज मानता हूं कि साहित्य एक अत्यंत ऋजु कर्म है. उस की अकृत्रिम सरलता ही उस की शक्ति है. कर्म की वह ऋजुता एक जीवन-व्यापी साधना से मिलती है. सोचता हूं कि जब साहित्यकार की खोज समग्र मानव जाति की खोज के साथ तादात्म्य पा लेती है तभी उसे वह सरल शक्ति भी सिद्ध होती है—तभी वह उसे स्वायत्त कर पाता है. और मानव की खोज केवल सुरक्षा और आहार और जोड़े और बसेरे की खोज नहीं है जो कि उस के और पशु के बीच समान है. मानव की खोज—उस बिंदु से जिस पर वह पशु से अलग हो जाता है और मानव नाम का अधिकारी होता है—मूल्यों के किसी अजस्र और अक्षय स्रोत के लिए है. कोई कह सकता है कि यह तो विशिष्ट मानव की ही खोज हो सकती है और साधारण जन के सरोकार तो बुनियादी सुख-सुविधा के ही होते हैं. मैं जानता हूं कि ऐसा कहने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है और नये सुखवाद की जो हवा चल रही है उस में मूल्यों की सारी चर्चा को आभिजात्य का मनोविलास कह कर उड़ा दिया जा सकता है.पर मैं ऐसा नहीं मानता और मेरा सारा जीवनानुभव इस धारणा का खंडन करता है. मेरा विश्वास है कि इस अनुभव में मैं अकेला भी नहीं हूं.

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर 28 दिसंबर, 1979 को कवि अज्ञेय द्वारा व्यक्त विचार.

'विशाल भारत' में एक ऐसे लेखक की कहानियां प्रकाशित होती थीं, जो अपनी हर कथा के नायक का नाम 'सत्य' ही रखता था. सो, दूर-देहात के इस किशोर पाठक (पाठकराम!) को यह ढंग जरा भी पसंद नहीं था. लेकिन न जाने क्या बात थी कि उसकी कहानी देखकर पाठक (उपर्युक्त) का मन ललच जाता, ललचने लगता...

शायद, लेखक के नाम में कोई विशेषता थी. विशेषता थी, पर इस नाम से थोड़ी कोफ्त ही होती थी. रामलीला या यात्रा में, मुंह पर मुखोस लगाकर प्रकट होने वाले पात्रों के वास्तविक चेहरों को देखने के लिए मन जिस तरह अकुलाता था, वैसी ही अकुलाहट ऐसे नामों से होती थी... अज्ञात, अदृश्य, अकेला, विचित्र अथवा अज्ञेय.

तब, संभवतः भाषा....

हां, भाषा में ही कोई ऐसी बात रही होगी, क्योंकि कथा के वक्तव्य या कथनोपकथन का अधिकांश शब्दार्थ समझ में कभी नहीं आया. इसके बावजूद मन के परदे पर कथा का गति-चित्र कभी धुंधला होकर नहीं उभरा.

इस नकाबपोश विचित्र लेखक की कहानियों से पहले, 'माधुरी' के पुराने अंकों में प्रेमचंद की कई कहानियां पढ़ चुका था. बुढ़िया और बंदर 'वाली कहानी, कर्बला!...कहां उन [illegible]ानियों की भाषा-भाव की सादगी और [illegible]ां यह अलख, अचल, अगम, अगोचर, अजर ... अज्ञेय की भाषा, जिसके अनेक शब्दों का 'सुद्ध उचारन' भी नहीं कर पाता. और, कर्बला कथा का किशोर नायक वह गरीब, करीम, हबीब, रहीम, हमीद, या जो भी नाम रहा हो उसका, कहानी पढ़ते समय जो पाठकराम की आंखों के आगे साकार खड़ा हो गया था, फिर उसमें ही समा गया था. और, इधर अज्ञेय का यह अद्‌भुत नायक 'सत्य!' ऐसा आदमी कभी देखा नहीं!...

ओ? ?...तो, जनाब आली कवित्त भी बनाते हैं. 'विशाल भारत' में ही 'सत्य' के लेखक का एक गीत छपा था. गांव का कोई भी पाठक उन दिनों पद्य नामक चीज को पढ़ता नहीं था. अर्थात यों ही नहीं. गा-गाकर पढ़ता था...बिना गाये अरथ कैसे खुलेगा? अजोधा मंडर रामायण की चौपाई गाता था. लछुमन गुरूजी हमेशा तार स्वर में गाते रहते, भगवान भारतबर्स में गूंजे हमारी भा-र-ती-.ई-ई-इ-ई!! पाठकराम को भी यही शिक्षा मिली थी. मन-ही-मन गुनगुनाकर चमत्कृत हुआ. गीत गुनगुनाते समय पदों से...मृदंग की ध्वनि निकलती है. दौड़कर गांव के प्रसिद्ध पखौजिया जनकदास को बुला लाया. वह सस्वर पढ़ने लगा. अनपढ़ जनकदास, मृदंग बजाकर गीत का अर्थ खोलता गया...

जागो ! जागो !!
धिन्ना! धिन्ना !
जागो सखि, बसंत आ गया !
धिन्ना कत्तक तिन्ना तिरकित ता,
धिनक-धिनक-धिन-धा.
जागो !...
धिन धा !!

कथाकार के इस गीत को मृदंग की संगत के साथ यहां प्रस्तुत करने का कारण है.. बहुत दिनों के बाद देखा, इस गीत को कथाकार ने अपनी एक कहानी में टांक दिया: रसमादकता से मन मंदिर हो गया पाठकराम का.

वसंत आ गया. सखि जागे या न जागे... पाठकराम किशोरावस्था पार कर गांव से शहर आ गया. उसकी जवानी जागी और जगी रही. 1943 में नजरबंद होने के बाद भागलपुर सेंट्रल जेल में एक दिन हाथ में आई एक जीवनी: शेखर की.

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय. सत-चित् आनंद-सत्य..

'विशाल भारत' की कहानियों के सत्य ने अपना नाम बदल लिया था—शेखर!

पाठकराम जेल में शेखर की जीवनी पढ़ता और बगल के जेल में, उस की पार्टी की नेशनल एक्जक्यूटिव के एक मान्य सदस्य सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय की जीवनी सुनाते, हंसी-ठहाके के साथ. फिर भाषण देने लगते, ह्युमेनिस्ट...मानवतावादी. हम जेल में हैं और उधर लेनिन के साथ मिलकर क्रांति-मसविदा बनाने वाले महान क्रांतिकारी एम.एन.राय साहब के चेले चांदी काट रहे हैं!...

हर जगह 'अहम सवाल'?

पाठकराम पर इसका कोई भीतरी असर नहीं पड़ा, क्योंकि वह (नमक-हराम?) मन-ही-मन, चोरी-चोरी मानवेंद्रनाथ राय को भी श्रद्धा और भक्ति का फूल चढ़ाया करता था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंवइ आदमी, जयकार करते समय सब से अंत में "सब संतन की, जै" कहना नहीं भूलता. 'आरिजिन आफ दि फेमिली' पढ़ने के बावजूद वह एट्टी परसेंट सनातनी ही रहा, सब दिन.

याद है, जेल से निकलने के बाद कर्म-क्षेत्र में कहीं किसी कर्मठ कामरेड ने टोका था, "आपका वह लेखक... कौसल्यायन... सांस्कृत्यायन...कात्यायन...अरे वह 'शेखर एक जीवनी' का लेखक कहां है? है मालूम?"

आपका लेखक? जवाब दिया, "मेरा ही नहीं, आपका भी. हमारा लेखक. हिंदी का लेखक."

"मारिए गोली. मेरा लेखक क्यों होगा वह? कहां है वह? है मालूम. वार में! पूर्वी फ्रंट पर. जाइयेगा?"

'वार' के विशेषार्थ, साम्राज्यवादी युद्ध और जनता की लडाई.

सच्ची बात यह है कि इस संवाद से पाठकराम पुलकित ही हुआ था. कामरूप कामाख्या की ओर गया, जिधर जाना हर ग्रामगीत में मना है (हो मोरे राजा! पूरब मत जा!) लौटकर कब 'सत्य' या 'शेखर' की जीवनी सुनाइएगा?

पांच-सात साल बाद.

देश स्वतंत्र होकर बंट चुका था. और दानवी लीला भी समाप्त हो चुकी थी. किसी ने सुनाया, उर्दू में एक अद्भुत किताब लिखी गई है, 'और इनसान मर गया.'

"उर्दू में ही 'पेशावर एक्सप्रेस' कहानी लिखी गई है."

"बंगला की एक पत्रिका में प्रबोध कुमार सान्याल का उपन्यास प्रकाशित हो रहा है, धारावाहिक."

"और हिंदी में?"

"हिंदी में? हां, हिंदी में भी चीजें आई हैं. फिलहाल, पढ़िए यह कहानी 'शरणार्थी!'"

पाठकराम ने अपने प्रिय मित्र प्रतुलकुमार गुहाठाकुरता उर्फ छानू से पूछा था, "की र छानू? पोडेछिस? बुझते पेरेछो?"

पाठकराम के मित्र प्रतुल को आप रामपाठक कह सकते हैं, क्योंकि वह भी एक परम पाठक था. उसने गंभीर होकर जवाब दिया था, "बुझे छी! ताहले, हिंदी में भी है"...लाख चेष्टा करने पर वह अज्ञेय का सही उच्चारण नहीं कर सका था, किंतु...अगौंय!

अज्ञेय की कई किताबें मांगकर ले गया. उस दिन आया तो प्रसन्न था. बोला, "मैं अब नाम पुकारने में गलती नहीं करूंगा."

"बोलो तो, सुनूं!"

"मुहम्मदबख्श!!"

कई साल बाद, फिर प्रतुल ने ही एक दिन बतलाया, क्रांतिकारी पार्टी में हिंदी के दो लेखक थे. एक जनाब पिक्रिक एडिस धोते थे और दूसरे साहब श्रृंगार-प्रसाधन की सामग्री बनाते यशपाल, अज्ञेय!!

जय-दोल, अरे यायावर रहेगा याद.

याद है. इतनी सरस यात्रा-कथा पहली बार पढ़ रहा था... कानवाई, पूर्णियां की सडक से नहीं गुजरेंगा?... यों, सिलीगुड़ी से पूर्णियां को रास्ता जाता है, और वहां से कटिहाल होकर फिर कहीं स्टीमर से गंगा पार की जा सकती है...किंतु इस सड़क की अवस्था के बारे में जो-कुछ पता चला था, उसके आधार पर यही निश्चय किया गया कि सिलीगुडी से ट्रेन में लदकर कलकत्ते...

यायावर का कारवां गई कलकत्ते की ओर मुड़ गया. पाठकराम का मन उदास हो गया, यायावर, पूर्णियां के तीतरों को नाम पुकारते नहीं सुन सकेगा.

एशियाई लेखक सम्मेलन की प्रारंभिक बातें फिर से नहीं दुहरा रहा. निवेदन है, पाठक उसमें 'दिल्ली दूर नहीं अब' के बाद जोड़ लें कृपया.

शीघ्र लौटकर सुना, अज्ञेयजी प्रयाग आये थे. इसके बाद ही दूसरा दल जो अब तटस्थ और उदास था, सम्मेलन में उत्साहपूर्वक सम्मिलित होने की तैयारी करने लगा...

दिल्ली. हिंदी के एक बड़े कथाकार के साथ यात्रा कर रहा हूं. मेरा सौभाग्य...

दिल्ली. यही है दिल्ली स्टेशन. दिल्ली. अब दूर नहीं...स्टेशन के बाहर, कुलियों को सामान दिखला रहा था, मेजबान को नमस्कार कर रहा था, भूली-खोयी चीज को खोज रहा था कि एक मीठी मुस्कराहट के साथ सत-चित सज्जन सामने आये, "नमस्कार! मैं अज्ञेय हूं."

उन्होंने मुझे चुप देखकर मेरे दिल्ली में रहने का ठौर-ठिकाना पूछा. मैं कोई जवाब दूं कि अश्क भाई जी ने पुकार कर कहा, "अमां, तूलिका भाभी वहां अकेली खडी कब से पुकार रहीं हैं, और तुम इधर..."

चलते-चलते सुना, अज्ञेयजी बोले, "जिन्हें लेने के लिए कोई नहीं आये हैं, वे मेरे साथ जा रहे हैं."

मन का जवाब मुंह में ही रख लिया. कह देता तो क्या होता, पता नहीं. कह देता, "जी हां. धन्य हैं वे लोग, जो आप के साथ जा रहे हैं."

विशाल भवन, विज्ञान-भवन. भवन के हर कोने में लेखक. उतने लेखकों के बीच एक ही पाठक निकला, वह भी लिफ्ट-आपरेटर जवान सरदारजी. लिफ्ट को ऊपर उठाने और नीचे उतारने के समय भी वह लगातार एक उर्दू नाविल के पृष्ठ-पर-पृष्ठ पढ़ता जा रहा था.

पाठकराम को बड़ी प्रसन्नता हुई पाठक सरदार को पढ़ते देखकर. लिफ्ट में देखा, अज्ञेयजी चुपचाप किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं. चुप रहे हम. सरदारजी की पढ़ाई में बाधा नहीं पहुंचाई हमने. हम एक साथ ऊपर गये....अज्ञेयजी ने सरदारजी के नाविल का नाम पढ़ लिया था. 'नकाबपोश'.

उतने तमतमाये हुए चेहरों के बीच, बहुत थोडी निर्विकार मूर्तियों को देखा. उसमें एक यशपाल का चेहरा है, दूसरा है अज्ञेय का.

बाहर एक काउंटर पर पेशेवर फोटोग्राफरों ने, सम्मेलन की कारवाई तथा अकारवाई के समय खींची तस्वीरों की दुकान लगा दी थी. लेकिन, ढूंढकर थक गया, अज्ञेय की लुकी-छिपी तस्वीर भी कहीं नहीं दिखाई पड़ी.

बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध यात्रा-कथा लिखने वाले मनोज बसु पर दृष्टि पडी. हिंदी के यायावर की याद आई. 'शनिबारेर चीठी' के प्रवीण संपादक रजनीकांत दास को देखकर उनकी एक कहानी की घटना आंखों के सामने फिर से घट गई. किंतु तुरंत ही 'हीलीबान की बत्तखें' गर्दन लंबी कर के उचकती हुई-सी चारों ओर जुट गई और 'कक-कक' करने लगीं...

"कहानियों के सत्य में उतनी व्याप्ति नहीं होती, वह एक क्षण का, एक मनःस्थिति का सत्य है, एक दौडती लहर का गति-चित्र. वह गति-चित्र आपको दीख जाय और देखने में आपका मन भी थोडी देर के लिए उलझ जाय, तो लेखक को और कुछ नही चाहिए." -अज्ञेय.

लेखक को और कुछ नहीं चाहिए. किंतु पाठकराम को शब्द चाहिए. और उसने सुन रखा था कि अज्ञेय और कुछ दे दे, पर शब्द नहीं देता. नहीं देता तो पाठकराम क्या करेगा? लाठी मार कर वसूल तो नहीं सकता. ...महंत, पादरी, पुरोहित, डिक्टेटर, धूर्त, चतुर, चालाक सब—कुछ हो सकता है वह, किंतु, इससे... उसके कथाकार को छोटा कैसे मान लिया जाय?

हिंदी के कई कथाकारों के भाषण हुए, अंग्रेजी में ही...अज्ञेय जब अपना वक्तव्य पढ़ रहा था तो गोपाल हालदार एकटक उसकी मुखमद्रा को परखने की चेष्टा कर रहे थे... यशपाल बोलने लगा. भाषण के बीच में न जाने क्या बोला कि सभी रूसी लेखकों ने हेडफोन से अनुवाद सुनकर एक दूसरे की ओर देखा. उनकी आंखें चमकीं. फिर कागज पर जल्दी-जल्दी नोट्स लेने लगे.

ताराशंकर वंद्योपाध्याय ने पाठकराम से कहा था, "मैं जानता हूं, जैनेंद्रजी को, अज्ञेय को, यशपाल को...और कारो नाम मने नेइ."

नेपाली लेखकों का दल अपनी अपनी भाषा में आपस में सलाह कर रहा था, "अज्ञेयजी सित कुराकानी गनु पदद."....अज्ञेयजी से बातें करनी होंगी... किसलिए? अज्ञेय इन्हें शब्द देगा?... दे भी सकता है, पुरोहित ठहरा.

महंत, चक्राधिपति, पादरी, पुरोहित, डिक्टेटर, हिपोक्रेट, केलिफोर्नियन आड़ू खानेवाले... अदृश्य... अलख... अकेला... लेखक...अज्ञेय! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं जीवन का रस लेने के लिए लिखता हूं

डा. शिवराम कारंत से बी.आर. नारायण की विचारोत्तेजक बातचीत

स्वयंवद्

आज इस पुरस्कार का विजेता होने के नाते अपने लेखन और पुरस्कृत पुस्तक के विषय में इस अवसर पर कुछ कहना आवश्यक है.

मैंने अपना अधिकतर लेखन कन्नड़ भाषा में ही किया है जो मुझे परिवार और परिवेश से सहज रूप से प्राप्त थी. इसमें कुछ कठिनाई हुई. आप सबकी भांति, मैं भी अपने विचार और भावनाओं को समुचित कुशलता से, अपनी मातृभाषा में अपने इर्द-गिर्द के व्यक्तियों के सामने प्रस्तुत करने लगा. किंतु जब, और जिस प्रकार, परिवर्तित परिवेश के अनुकूल मेरा व्यक्तित्व सधने-संवरने के क्रम में भिन्न अस्तित्व में ढलने लगा, तो मुझे इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार करना पड़ा कि जीना और जीवन किन तत्वों से बना है. मेरे लिए यह एक गंभीर कार्य-व्यस्तता थी. इस विषय में परंपरा से प्राप्त विचारों से मेरी सहज तुष्टि नहीं होती थी. मैं अपने अनुभवों पर गंभीरता से विचार करता. और, ऐसा करना, बहुधा, मेरी मान्यताओं को झकझोर देता था.

मेरी पुस्तक 'मूकज्जी' में यौन के मानवीय, अतींद्रिय व अन्य विविध पक्षों की चर्चा है, जो हमारे अतीत इतिहास में विकसित होते रहे गुहा-मानव से प्रारंभ होकर वर्तमान युग तक के लंबे इतिहास-काल को समेटती है. यहां चर्चा है यौन की सर्जक शक्ति की, यौन के धार्मिक प्रतीक के रूप की, वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में यौन-स्थिति की. इन सबका तर्क-संगत पद्धति से विवरण है—यौन, एक सर्जक-शक्ति; यौन, एक धार्मिक प्रतीक; यौन देवी-देवता के रूप में; यौन पौराणिक गाथाओं में; यौन वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में आदि.

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर 20 जनवरी, 1979 को श्री कारंत द्वारा व्यक्त विचार.

आपको लिखने की इच्छा कब हुई? यानी सृजनात्मक साहित्य की ओर आपका ध्यान कब गया? और कैसे गया?

लिखना सृजनात्मक होना चाहिए, यह विचार कब आया, यह कह नहीं सकता. जब कभी कोई अच्छी कहानी या निबंध पढ़ता, तो लिखने का मन होता. 'तिरुमलांबा' और 'वेंकटाचार्य' की पुस्तकें पढ़ने पर भी लिखने की इच्छा हुई. शुरू में एक उपन्यास लिखा था. जब मैं विद्यार्थी ही था तभी से लिखने लग गया था. बाद में कालेज छोड़कर गांव जाने के बाद एक पत्रिका निकालने और उसे लेखों से भर देने की इच्छा हुई. सृजनात्मक साहित्य तो एक बड़ी बात है, तब उद्देश्यपूर्ण साहित्य लिखने की ओर भी मेरा मन गया होगा, यह कहने में मुझे संदेह होता है.

शुरू में आपने कई प्रकार के काम किये. लिखने के साथ-साथ अभिनय करना, नाटकों में नये-नये प्रयोग करना, बच्चों के लिए 'बालवन' चलाना, ऐसे अनेक काम के साथ लिखना भी प्रारंभ किया.

ऐसा लगता है कि नाटक लिखना कुछ पहले शुरू हुआ. कन्नड़ में नाटक लिखने का प्रारंभ लगभग सन् 1914 में हुआ. उसके कुछ बाद बंबई के नाटक शुरू हुए. 'आशा-निराशा', 'एकच प्याला' जैसे मराठी नाटकों का मुझपर विशेष प्रभाव पड़ा. तब गांधीजी के आंदोलन का प्रभाव था. इसलिए ऐसा लगता था कि नाटक लोगों के मन पर प्रभाव डालने के अच्छे साधन हैं. यह विचार आने से कि लिखने से समाज का सुधार हो सकता है, नाटक की ओर मैंने विशेष ध्यान दिया. तिलिस्मी और जासूसी साहित्य की ओर भी मेरी रुचि थी. पर उसके लिए किसी खास उद्देश्य की जरूरत नहीं थी. दूसरे प्रकार के साहित्य के लिए एक उद्देश्य जरूरी था. यह अलग बात है कि वह सृजनात्मक साहित्य है या नहीं. पर उस जमाने में जो भी दिखाई देता, उससे प्रतिक्रिया की भावना बड़ी तीव्र होती. वे बुद्धिपूर्वक योजना बद्ध नाटक लिखने के दिन थे.

यानी वे समाज सुधारने के लिए लिखे गये.

जी हां, उस भावना को लेकर लिखने लगा. उस अवधि में, यानी सन् 1924 से 1930 तक नाटक ही लिखे. लगभग उसी ज़माने में उसी उद्देश्य को लेकर एक उपन्यास भी लिखा.

क्या एक उपन्यास को लिखने की जब इच्छा होती है तब आप कोई विशिष्ट अनुभव प्राप्त करते हैं, अथवा देखते हैं? आपका उपन्यास किसी एक घटना से आरंभ होता है?

यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि ऐसा होता है. एक समस्या मन में घर करके बैठी रहती है. यदि वह समस्या याद आ जाये तो लिखने में सुविधा होती है. मतलब यह है कि उस समस्या से संबंधित घटनाओं को दस लोगों में देखा हो, मन ने उसके बारे में सोचा हो तो, तब आपके सामने केवल कुछ व्यक्ति आते हैं. वे सब चरित्र जीवंत व्यक्ति ही होते हैं. आमतौर पर कई बार उनके स्वभाव और गुण को दिखाने के लिए एक काल्पनिक सन्निवेश को तैयार करते हैं. लिखते समय ऐसा लगता है कि एक व्यक्ति का नाम अपने आप आने पर भी वह नाम क्यों आ रहा है, यह सन्निवेश क्यों उठाया? कई बार ऐसा मैंने उपन्यास लिखकर पूरा करने के बाद सोचा है. परंतु लिखते समय ऐसा कोई विचार नहीं रहता. यदि यह पूछें कि वह नाम क्यों आया या वह घटना क्यों आयी? लिखते समय मेरे मन में अनुभूत व्यक्ति का मुख ऐसा है, पहले अमुक घर में ऐसी घटना देखी थी, ऐसी याद आती है परंतु लिखते समय यह कहा नहीं जा सकता कि वह सब प्रयास पूर्वक आता है. यही कहा जा सकता है, मन की तह में उसकी दास्तान रहती ही है.

संस्कार कहिए अथवा एक प्रकार के स्वाभाविक आकर्षण का केंद्र कहिए, उसे दिखाने के लिए अथवा उसके लिए एक प्रतीक के रूप में आपके उपन्यासों में वृद्धाओं के पात्र आते हैं, यह कहना उचित होगा?

मेरे लिए वे इसलिए प्रिय हैं कि वे एक विश्वास को लेकर एक लंबे अरसे तक उसके अनुसार जीवन चलाती हैं और जीवन चलाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए समय नहीं रहता. वह जीवन का अंतिम छोर होता है. उनके लिए वह आखरी अनुभव होता. सीमित भूमिका में अपने विश्वासों के आधार पर जीनेवाले व्यक्तियों से मिलने का प्रयास करता हूं. मैंने उनमें सौंदर्य को देखा है पर किसी को कभी यह नहीं समझना चाहिए कि उनका विश्वास मेरा विश्वास है. उनमें मेरी कुछ मान्यताएं हो सकती हैं कुछ न भी हो सकती हैं. उन मान्यताओं को कम आयु वालों में दिखा दें तो कृत्रिम हो सकता है क्योंकि यह प्रश्न उठता है कि थोड़े समय में उतना अनुभव, उतनी समझ, उनमें कैसे आ गयी?

आमतौर पर उस जमाने में लिखे उपन्यासों में एक बात विशेष रूप से उभरकर आयी है, वह है अन्यान्य संबंध में परस्पर प्रेम का महत्व.

मेरे लिए सबसे बड़ा भाग्य मित्र, संबंधी और कइयों द्वारा व्यक्त प्रेम और विश्वास है. मेरा अनुभव है कि इस प्रेम की तुलना में और कोई प्राप्य समाधान नहीं है. अपने जीवन को सहनीय बनाकर तृप्ति पाने के लिए और कोई उसके समान नहीं है. यश और कीर्ति की अपेक्षा तसल्ली देने वाली चीज, लोगों द्वारा कमाया गया प्रेम और विश्वास है. यह प्रश्न दूसरा है कि कोई क्यों हमें प्रेम करता है या विश्वास दिखाता है. उसमें आपकी स्थिति, सामाजिक दर्जा, बौद्धिक योग्यता कुछ भी नहीं रहता है. दूसरे प्राणियों के समान ही आप भी एक हैं. मेरा अनुभव है कि प्रेम या स्नेह ही जीवन है.

तो यह कहा जा सकता है कि जो भी स्वाभाविक है, वह अच्छा है.

यह कहना भी सरल नहीं है. प्रश्न उठता है स्वाभाविक क्या है? क्योंकि सामाजिक जीवन में ही हजारों समस्याएं आती हैं. एक व्यक्ति पूर्णरूप से जो चाहे कर नहीं सकता है. दूसरों पर उसका जीवन निर्भर रहता है. अतः अनेक प्रकार के सामंजस्य चाहिए. ऐसा व्यक्ति कौन है, उसकी शक्ति क्या है, उसे जाने बिना बनाये गये नियम टिक नहीं सकते हैं. हमारी आशा के अनुसार भी चलते नहीं हैं. हमारे विश्वास के अनुसार भी चलते नहीं हैं. जिस ढंग से चलना है उसी ढंग से चलते हैं. हमें चाहिए या नहीं चाहिए, यह पूछकर चलनेवाले ढंग से नहीं, वह जंगल में रहने वाले विभिन्न प्राणियों के समान रहते हैं. ज्यादा से ज्यादा यदि हम उसी स्थान में होते तो विवेक से रह सकते. पर अलग से न्यायाधीश के स्थान पर खड़े होकर तौलना नहीं चाहिए. मुझे ऐसा लगता है.

सामाजिक हित की दृष्टि से कुछ निर्बंध बना लेना आवश्यक है, उनका भी विरोध करके उन्हें बंधनकारी समझें तो क्या वह समाज का दोष है?

यह बहुत बड़ा प्रश्न है. यदि समाज को निर्बंध बनाना हो तो उसने किस आधार से, किस अनुभव से बनाया? उसे किस बात का ज्ञान है? इस प्रकार निर्बंध बनाने वाले को पूर्व स्थिति का ज्ञान होना चाहिए. लैंगिक संबंध को ही लीजिए. उसके सारे कायदे कानून बनाने वाले पंडित के अपने जीवन में, दूसरों के जीवन में, यह प्रवृत्ति किस प्रकार काम करती है? दूसरे दैहिक नियम क्या है? मानसिक परिणाम क्या है? नैतिक जिम्मेदारी कैसी है? इन सब का ज्ञान होना चाहिए. आपके निर्बंध वहां काम नहीं आते हैं.

ऐसा क्यों समझना चाहिए कि इन बंधनों को किसी एक ने बनाया?

यह बात नहीं कि एक ने किया है. हजार लोगों ने बनाया है, हजारों समाजों में हुआ है. इसके लिए एक ही मापदंड कभी नहीं रहा है. हमसे थोड़ा भिन्न मापदंड दिखने पर हम ही गडबड़ में पड़ जाते हैं. इसमें सदा के लिए एक स्वीकृत मान्यता हो, उसे मानने वाले सब समान हों, अथवा ऐसा ही हो यह कहने का हमें धैर्य ही नहीं होता. हमारे देश में तो ऐसा मिलता ही नहीं है.

लैंगिक संबंध छोड़ दीजिए. आपने ऐसे पात्रों का निर्माण किया है कि जो यह मानते हों कि मनुष्य से बढ़कर एक शक्ति है, देव जैसी कोई चीज है, अथवा हमें चलानेवाली कोई अज्ञात शक्ति है.

इसमें दो तीन बातें मिल गयी हैं. मनुष्य से बढ़कर एक शक्ति है, यह कहने में किसी को एतराज नहीं होना चाहिए. हम यहां पचास साठ वर्ष रह सकते हैं, सत्तर साल जीवित रह सकते हैं. हमसे पहले भी लोग थे, आगे भी रहेंगे, हमसे भी बड़ा एक गांव है, एक भूमंडल भी है, नक्षत्र हैं, ये सब हमसे ज्यादा शक्तिशाली हैं. इसके लिए मुझे कोई जवाब देने की जरूरत नहीं है. वह शक्ति है ही, उसके अंग के रूप में हम हैं. और दैव भी एक है. उस देव के बारे में आपकी कल्पना का आधार यह कहा जा सकता है कि वह है. आपकी कल्पना और मेरी कल्पना समान रही है. हम सब यह स्वीकार करते हैं कि हमसे कोई एक बड़ी चीज है. वह क्या है, यह जवाब पाने में, कठिनाई है. मेरी कठिनाई इस बात में नहीं है कि मुझसे एक बड़ी एक शक्ति है. कठिनाई यह है कि उसकी कल्पना की योग्यता मुझमें नहीं है. अमुक ने ऐसा कहा है पर मैंने किसी के वर्णन को स्वीकार नहीं किया है.

आखिर मेरे जैसे लोगों ने ही जिन्हें मालूम नहीं है, यह कहकर बड़ा वर्णन किया है कि उन्हें मालूम है. पर मैं साफ कहता हूं कि मुझे मालूम नहीं है.

क्या विश्वास से मन का समाधान होता है?

होता है. पर मन बदल गया तो वह समाधान नहीं रहता है. विश्वास के अनुसार सब चलें तो संतोष होता है, नहीं तो दुख.

आपका यह कहना है कि अलग-अलग संस्कृति के दो व्यक्तियों का एक साथ रहना संभव नहीं है.

यदि एक संस्कृति वाले हों तो एक साथ रहने में सुविधा होती है अथवा संस्कृति को कोई महत्व न दें तो भी सरल होता है.

आजकल हमारे यहां एक नया समाज वर्ग जन्म ले रहा है. आज हम बंबई में हैं तो कल कलकत्ता में होते हैं. पुरानी संस्कृति के संबंध

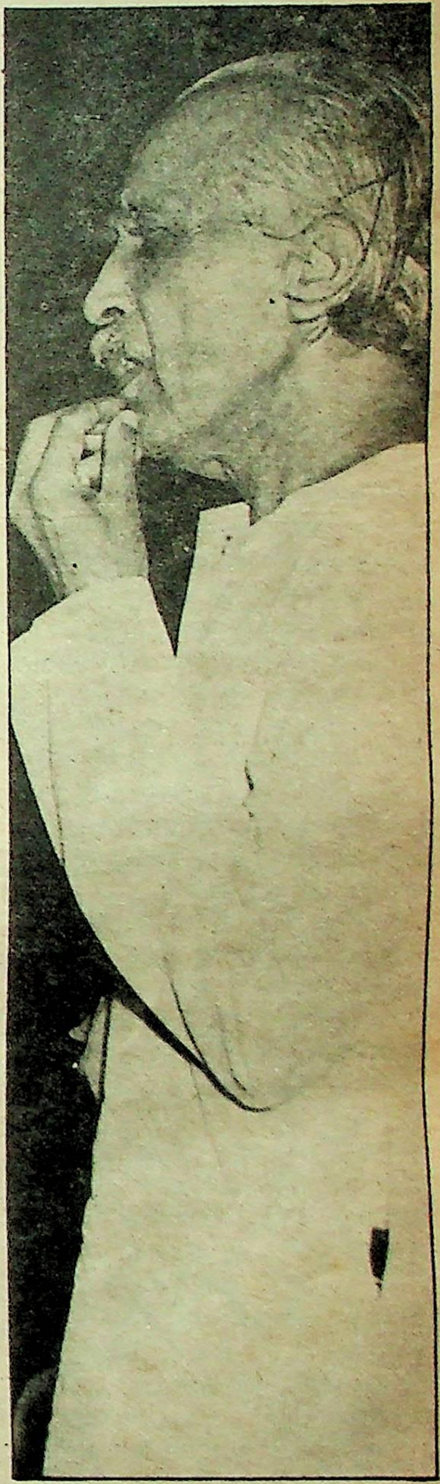

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थ
शिवराम कारंत

बैंगलूर की निवासी एक पढ़ी-लिखी लड़की ने मन ही मन मुझसे विवाह करने का संकल्प कर लिया था. उसने मित्रों द्वारा मुझसे बात करने का प्रयत्न भी किया. पर इस अश्वत्थामा से बात करने का साहस मित्रों में नहीं था. जो भी हो, मित्र ठहरे. उन्होंने सोचा कि समझदार होने पर भी यह लड़का ऐसे कर रहा है. उसे एक खूंटे से बांध ही देना चाहिये. मुझसे उस लड़की का परिचय कराया गया. मैंने मन से स्वीकृति भी दे दी थी. एक-दो माह तक हमारे बीच पत्र-व्यवहार भी चला. एक दिन वह सारी जिम्मेवारी अपने पिता के सिर मढ़कर मूक हो गयी. मेरे मित्रों ने उसके पिता से बात की. उन्होंने कहा कि यह कैसे संभव है? अभी तो उसे तीन साल और पढ़ना है.

इसके बाद एक छोटी आयु की लड़की मेरे सौंदर्य को देखकर मुझ पर आसक्त हो गयी. मध्यस्थ लोगों द्वारा बातचीत भी शुरू हुई. एक सप्ताह बाद वह अपने आप उत्सुक होकर आगे आयी और फिर वह भी इस व्यक्ति को एकदम अयोग्य समझकर पीछे हट गयी.

मैं कभी कभी मंगलूर बेसेंट स्कूल जाया करता था. उनके यहां नाटक-नृत्य और अभिनय का निर्देशन किया करता था. उस स्कूल की सुपरिंटेंडेंट रमाबाई मेरा बड़ा सम्मान करती थी. एक दिन उन्होंने मुझे नृत्य सीखने वाली एक लड़की के बारे में पूछा, "इस लड़की के बारे में आपके क्या विचार हैं?" मैंने कहा, "क्या कहा जा सकता है. लड़की चुस्त है पर ....उमर बहुत छोटी है." वह मेरे द्वारा निर्देशित नाटक, नृत्य और प्रदर्शनों में सदा भाग लेती थी.

गर्मी की छुट्टियों में एक दिन वे सब अपनी सुपरिंटेंडेंट के साथ एक दल बनाकर मेरे 'बाल वन' आयीं. वहीं एक-दो दिन रहकर खुशी-खुशी वापस लौट गयीं. तब फिर से रमाबाई ने उस लड़की की बात उठायी. मैंने अपना पहले वाला जवाब दुहराया. उन्होंने उस लड़की के पिता से बात करने का निश्चय किया. आगे तीन दिन बाद मैं भी मंगलूर गया. मेरे ठहरने की जगह पर वही लड़की आयी और बोली, "मास्टरजी आप हमारे घर आइए." मैंने कहा, अच्छी बात है. उनके घर जाने पर, उसने मुझे अलग बुलाकर एक विचित्र बात कही. "मैं आपसे विवाह करना चाहती हूं." मैंने धीरे से कहा, " यह बात उठाने से पहले तुमने इसके बारे में कुछ सोचा भी है? मेरा स्वभाव, मेरी स्थिति, तुम्हारी जिम्मेवारी—इन सबके बारे में सोचे बिना ही ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये." वहां से वह मुझे अपने पिताजी के पास ले गयी.

उसने तीन दिन पहले ही अपने मन की बात पिताजी से कह दी थी. उन्होंने भी यही बात उठायी. कहा, "देखिए पहले मेरी आमदनी अच्छी थी. अब वैसी स्थिति नहीं है. और फिर जाति का प्रश्न भी है."

उस शाम को जब हम घूमने गये तो मैंने उसको सारी जिम्मेवारी के बारे में बताया. लगा कि उसने अपने मन को पक्का कर लिया था अतः मैंने स्वीकृति दे दी. अगले 15 दिनों में हमारी रजिस्टर्ड मैरिज हो गयी. □

('पगले मन के दस चेहरे' से)
प्रस्तुति : बीथिका

... रखनेवाली जीवन की सुविधाएं भी चली जा रही हैं. ऐसे लोगों को भी दिक्कत नहीं आयेगी. पर किसी संस्कृति में विश्वास रखने वालों की—मान लीजिए एक ईसाई और दूसरा हिंदू है, उनके पाप पुण्य की बात जब सामने आती है तब कुछ कठिनाई होती है. उन सबको ताक में रखकर जीवित रहना आज संभव लगता है. परंतु हम यह कह नहीं सकते हैं कि ऐसी समस्याएं भविष्य में नहीं आयेंगी या कब आयेंगी.

यक्षगान पर आपकी बहुत रुचि है, उस पर जरा प्रकाश डालिए.

यह नाटक एक का माध्यम है. यह बालिद्वीप और थाईलैंड के नाटकों के समान ही उत्कृष्ट है. इसका सौंदर्य, इसकी वेषभूषा, गीत और प्रदर्शन शैली में है. मैंने अनेक प्रकार के नाटकों का प्रयोग किया है. अतः मैं इसके सौंदर्य और इसकी सीमा से परिचित हूं. इस कला के लिए मैंने परिश्रम किया है. मुझे उससे संतोष मिला है.

आपके उपन्यासों पर पाठकों की जो प्रतिक्रिया होती है उस पर आप कुछ कहेंगे?

बात यह है कि मैं किसी से यह पूछता नहीं कि मेरा उपन्यास आपको कैसा लगा? या आप पर क्या प्रभाव पड़ा? हां, कुछ लोग अपनी प्रतिक्रिया बताते हैं. उसमें सब प्रकार की बातें होती हैं, कुछ लोगों की ध्वनि से समझ जाता हूं कि उन्हें कुछ पसंद आया या पसंद ही नहीं आया. उनकी प्रतिक्रियाओं को मैं कंधे पर ओढ़कर नहीं चलता.

आपकी कुछ रचनाओं का दूसरी भाषाओं में अनुवाद हुआ है. उसके बारे में आपका क्या मत है?

देखिए, दूसरी भाषाओं का अनुवाद गले के नीचे उतरना कठिन है. उसके लिए समय भी चाहिए. शरत् आदि के उपन्यास जल्दी जनप्रिय इसलिए हुए क्योंकि भारतीय भाषाओं में उस समय अच्छे उपन्यास नहीं थे. पुरस्कार आदि प्राप्त करने के बाद अनूदित उपन्यास भी जनप्रिय हो सकते हैं.

'मूकज्जिय कनसुगलु' उपन्यास में 'मूकज्जी' पात्र के मुख से अनेक मौलिक विचारों की व्याख्या हुई है. क्या वे विचार आपके हैं?

मूकज्जी ही क्या मैंने तो सभी पात्रों का निर्माण किया है. मैंने इस उपन्यास में चार हजार साल की संस्कृति या उससे भी लंबी अवधि की संस्कृति के विकास को टटोलकर देखने का प्रयास किया है. उसके लिए मूकज्जी एक निमित्त मात्र है. उसमें आये प्रतीकों को समझना आवश्यक है.

आप लिखते क्यों हैं?

जीने के लिए, अच्छी तरह जीने के लिए, और जीवन का रस लेकर जीने के लिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना धर्म, रचना कर्म, जीवन, समाज और आत्मबोध के संबंध में पुरस्कार विजेताओं के उद्गार : पुरस्कार समर्पण समारोह के मंच से...

साहित्य सृजन, पुरस्कार और मैं

जी. शंकर कुरुप

19 नवंबर, 1966

एक ही रत्न की कई मुखिकाएं होती हैं न? भारतीय हृदय की विविध मुखिकायें हैं—हमारी समस्त भाषायें. हो सकता है राजनैतिक अविवेक के कारण भाषाओं की विविधता बाधा बन रही हो. मगर आत्माभिव्यक्ति को विविध और भाव-समग्रता प्रदान करनेवाली उपाधि के रूप में भाषा को देखने वाले लोगों के लिये यह वैविध्य अवश्य ही अनुग्रह प्रतीत होगा. रत्न की मुखिकायें प्रकाश किरणों को अनेक वर्णों में, विविध सांद्रता में, प्रतिस्फुटित करती हैं. अगर रत्न के एक ही मुखिका होती तो क्या यह संभव हो पाता? मैं इस संदर्भ में एजरा पाउंड को याद करता हूं. उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि कोई भी एक भाषा पूर्ण रूप से समस्त अनुभव-मंडल को प्रकाशित नहीं कर सकती. सुमित्रानंदन पंत, उमाशंकर जोशी, नजरूल इस्लाम और जी. शंकर कुरूप एक ही भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपरा के विभिन्न नाद हैं. विभिन्न भाषाओं के ये नाम भारत के विशाल एवं अगाध अंतःस्थल के भावों को समग्र रूप से अभिव्यक्त करने में सहायक सिद्ध होते हैं. इस सत्य के अनुभव-गोचर होने पर ही हम अपने क्षुद्रता-बोध एवं सीमित-दर्शन से विमुक्ति प्राप्त कर सकते हैं. उस समय ही हाथी अपने बड़प्पन को पहचानकार मस्तक ऊंचा कर खड़ा रह सकता है.

मनुष्य का प्रकृति से, मनुष्य का प्रकृत्यतीत शक्ति से, मनुष्य का मनुष्य से जो रागात्मक संबंध है, उसी की बोध-धारा है किसी भी जनता के साहित्य की मुख्य त्रिवेणी. उस प्रवाह की कई उपनदियां होती हैं. कई शाखाएं होती हैं, कई गति-परंपराएं होती हैं. सब कुछ उसी में, सब कुछ उसी को. यही बोध-धारा संस्कृति की जीवन सिरा-स्वरूपा त्रिवेणी है.

क्या मेरी सर्गात्मक भावना इसके लय और 'रिद्म' के लिये कुछ योगदान करने में समर्थ बन गयी है? अल्पमात्र परिमाण में ही सही, यदि ऐसा है, तभी मैं अपने को इस अभिनंदन के योग्य मान सकता हूं.

कु.वें. पुट्टप्पा

20 दिसंबर, 1968

राज्य की दृष्टि से मैं कर्नाटक का हूं. भाषा की दृष्टि से कन्नडिग हूं : लेकिन संस्कृति और राष्ट्र की दृष्टि से मैं भारतीय हूं. मेरा कर्नाटकत्व भारतीयत्व से कभी द्वेष नहीं रख सकता. अविरोध रूप में भारतीयत्व की सेवा करने में ही कर्नाटकत्व अपने अस्तित्व की रक्षा कर पाता है. भारती मां है और कर्नाटक उसकी पुत्री है. भारत को हानि पहुंचे तो कर्नाटक जिंदा रह नहीं सकता. पुत्री कर्नाटक का बुरा होता है तो भारतमाता उसको सहन नहीं करेगी. आपसी हितरक्षा में सबकी हितरक्षा निहित है.

कर्नाटक को 'भारतजननी की तनुजाता' मानने वाला यह कवि इस तरह भी उद्घोष करता है कि 'भरतभूमि है मेरी मां' आगे चलकर वह यों कह देता है. 'मत विभिन्नता की दरारों को भूल जाऊंगा : भाषा के भेदों को भुला दूंगा : बाधा डालने वालों को उखाड़ दूंगा : स्वतंत्रता के मंदिर के निर्माण में जीवन को ही देवी के चरणों में चढ़ा दूंगा.' कन्नड़ कवि की तरह अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने भी गाया है, इसमें मुझे रंचमात्र भी संदेह नहीं है.

किसी भी भाषा के किसी भी कवि ने इस सौहार्द्रता को धक्का पहुंचाने वाले अपस्वर में कुछ गाया है तो वह खंडनीय है. वह आसुरी साहित्य बन जाता है. सच्चा साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐक्यकारी होता है. सामरस्य, समन्वय, सहानुभूति और सर्वोदय की भावनाओं को प्रचारित करना दैवी साहित्य का लक्षण है. असूया, द्वेष, स्वार्थता, निष्करुणा और निरुकंपा जैसे भावों को उत्तेजित करने वाला साहित्य आसुरी साहित्य बन जाता है. अतः वह दमन योग्य बन जाता है.

उमाशंकर जोशी

20 दिसंबर, 1968

कविता शब्द-निर्मिति है और सृजनात्मक शब्द के माध्यम से किसी कवि-आत्मा के गहरे स्पंदन पाठकों की चेतनता में आनंद का रूप लेकर अनूदित हो जाते हैं, या कहें कि स्वयं पाठकों का चिदानंद हो जाते हैं.

कवि तो एक तीर्थयात्री है, शब्द जिसका पथप्रदर्शक है. नहीं, इससे कहीं अधिक है वह. शब्द ही वह तत्व है, जिसके द्वारा, मात्र जिसके द्वारा ही, कवि अस्तित्वमय है. और, फिर वह कभी इस अनुभूति तक पहुंचता है जहां शब्द और कर्म का अंतर कम होता होता दोनों एक छोर के बिंदु पर मिलते हैं. शब्द स्वयं ही कर्म हो जाता है. ऋग्वेद का समास-पद 'कवि-ऋतु' मुझे बहुत रुचता है. कवि वह है जो उस पार देखता है, जो उस अपर-पारिय परिदृशा का गान करता है. ऋतु ही कर्ता है, अर्थात कर्मठ व्यक्ति. इस अर्थ में कविऋतु है गायक-कर्ता—वह जिसका कर्म ही गान है. कल रवींद्रनाथ ऐसे थे. आज ओक्टावियो पाज ऐसे हैं.

आज की मानव-स्थिति, कम-से-कम सृजनात्मक कलाकार से तो यही अपेक्षा रखती है. और, यदि वह कला की उपलब्धि में सफल होता है तो वह अखंडित और संपृक्त जीवन की आशा को सार्थक करता है. समसामयिक समाज का तंत्र-प्रविधि-आश्रित ढांचा प्रेम की लघु नहरों को सुखाता जा रहा है. भीड़ भरे नगरों में मनुष्य अपने को अकेला अनुभव करता है. वह अंदर के एकांत से वंचित हो गया है—शांति का वह केंद्र जहां स्थित रह कर वह मानव की तरह व्यवहार कर सके. आज कविता का यह कर्तव्य है, जिस सीमा तक कि पहले कभी नहीं हुआ था, कि वह संबंधों के अंतरावलंबन के ताने-बाने को प्रकाश की परिधि में लाये और अपनी अंतर्दृष्टि तथा अंतप्रेरणा के आधार पर उस अपूर्व सामंजस्य की इंगिति दे जो मानव और अ-मानव, शरीर और अ-शरीर, जीवन की अपरिहार्य दारुण निर्दयता और सततवाही प्रेम के बीच है. यह कविता का ही कार्य है कि वह नर्क से स्वर्ग तक का मार्ग जो आत्मशोध की मंजिल से गुजरता है, संसार को दर्शाये.

विश्वनाथ सत्यनारायण

16 नवंबर, 1971

'शब्द ओठों पर आये और कविता में तुतलाये'—यह पंक्ति मुझ पर लागू हो सकती है. पालने से उतरते ही मैं तुकबंदी करने लगा था. अपने जन्म के गांव से चालीस मील दूर मछलीपटनम में मैं तीसरी श्रेणी में पढ़ता था. जब मेरे पिताजी मुझ से वहां मिलने पधारे तो उन्होंने मुझे उसी तरह कविता गढ़ते पाया. वे क्रोध से भर उठे.

मेरे पिता तेलुगु के विद्वान थे. महाभारत और भागवत उनकी उंगलियों की पोरों पर थे. शायद उन्हें लगा कि यदि मुझे तुकबंदी करने की धुन लग गयी तो मैं भी एक दिन वैसा भिखारी कवि बन जाऊंगा जैसे बहुधा उनके पास आया करते थे. धमकी दी गयी कि मुझे अंगरेजी अध्ययन सीखने को तिलांजलि देनी होगी.

मेरी और उनकी संधि हो गयी. यदि मुझे कविता ही चीतना है तो मेरा उद्देश्य होना चाहिये कि मैं तेलुगु में रामायण लिखूं.

संभवतया तेलुगु के पुराने रामकाव्य जो उस समय उपलब्ध थे, पिताजी को पसंद नहीं थे.

इस प्रकार पिताजी के सम्मुख मैंने यह पवित्र प्रतिज्ञा की कि यदि मेरी क्षमता इस स्तर की हो पायी, तो मैं तेलुगु रामायण का सृजन करूंगा. मैंने प्रतिज्ञा – 1913 में की थी और 1934 में मैने 'रामायण कल्पवृक्षम्' लिखना आरंभ किया.

इक्कीस वर्ष का अंतराल.

विद्यार्थी काल में मुझे तेलुगु के प्राचीन साहित्य के उच्चस्तरीय अध्ययन-मनन का समुचित अवसर प्राप्त हुआ. मेरे गुरुजी श्री वेंकट शास्त्री की विद्युत-ऊर्जा जैसी उपस्थिति ने मछलीपट्नम के वातावरण को इस प्रकार के अध्ययन के अत्यंत अनुकूल बना रखा था.

तेलुगु भाषा में रचना करने वाले सैकड़ों कवि हैं. किंतु प्रवीण कवि-गुरु केवल आठ-नौ हैं. उन्होंने कवि-गुरु की पदवी कैसे प्राप्त की? इसका रहस्य क्या है?

हमारे साहित्य में किसी कवि-गुरु की शैली के अनुरूप लिखने वाले को महान कवि कहा जाता है. किंतु कवि-गुरु किन की शैली अपनाते हैं?

अतः मैं अपनी रामायण का सृजन यदि करूंगा तो अपनी ही निजी शैली में.

किंतु ऐसा कर पाना सहज कार्य नहीं है. मैंने एक लाख पद्य लिखे. उन्हें फाड़ डाला और जला दिया.

तब एक समस्या और उभरी. वे सृजेता-गुरु संस्कृत के महान विद्वान थे. मेरे लिये संस्कृत भाषा का उतना ही ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो गया जितना तेलुगु-भाषा में विज्ञ लेखक होने के नाते आवश्यक था.

मैंने संस्कृत में रचित काव्य, नाटक और संस्कृत-व्याकरण का अध्ययन किया. पर प्रश्न था कि मैं इस लंबी यात्रा में किसी पड़ाव तक पहुंचा हूं या नहीं?

जितना ही मैं रामायण को पढ़ता उतना ही विस्मित रह जाता. उसमें अनगिनत कथायें गुंथी हुयी हैं. वे क्या हैं? प्रत्येक कथा का क्या अर्थ है और क्या रहस्य? यह समझे-बूझे बिना मैं कैसे आगे बढ़ूं.

लोकातीत और धार्मिक अर्थों से परे उस कथा के वर्णन में ही सैकड़ों प्रसंग और दृष्टांत भाव-बद्ध हैं. कोई एक घटना विशेष क्यों और किसी विशेष स्थल पर ही कैसे घटित हो? केवल विद्वता-भर काम न आयेगी. जितना अधिक मैं रामायण को पढ़ता उतना ही भयभीत हो उठता.

क्या मेरे अग्रजजन इन सब बातों से अनभिज्ञ थे? इन सबके 'क्यों' से क्या मैं अपने प्रयत्न से हाथ धो लूं? मैंने अपने पिताजी से पवित्र प्रतिज्ञा की थी. उसे तोड़ देना पाप होगा. मेरे हृदय को एक टीस ने मथा. मुझे लगा कि एक अनिवार्य बाध्यता प्रेरित कर रही है "रामायण लिखो, तुम जीवन के उच्चतम उत्कर्ष को अनुभव करोगे."

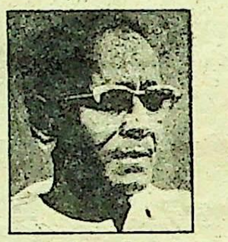

ताराशंकर बंद्योपाध्याय

15 दिसंबर, 1967

अपनी वर्तमान संस्कृति, साहित्य और वैदग्ध्य की बात जितनी ही सोचता हूं उतना ही लगता है मानो हमारे कंठ से उच्चरित आत्मकीर्ति की अहमियत ज़ोर तो पकड़ रही है किंतु हमारे उस छाया से घिरे हुये जीवन में कर्म की ध्वनि या वर्ण न किंचिन्मात्र गूंज रही है, न हल्के से भी कहीं रंग रही है. जनसाधारण तो आज भी उस रामायण-महाभारत के काल से उन दो महाकाव्यों के बंधन में आवद्ध होकर, उत्तर में हिमालय के शीर्ष-देश से दक्षिण में कन्याकुमारिका के प्रांत बिंदु तक तथा पश्चिम में गुजरात से पूर्व में मणिपुर तक विस्तृत भौगोलिक मृतिका पर एक गहरी एकता के बंधन में आबद्ध हो एक ध्रुवबोध को अनजाने ही अपने संस्कारों में पवित्र होमाग्नि की तरह स्थापित कर, जीवन बिता रहे हैं. अंग, बंग, कलिंग के समुद्र सरिताओं के तट पर, पंजाब, बंबई, गुजरात के प्रांतरों में, एक ही जीवन अपनी रक्तधारा में तथा हृदय के स्पंदन में, एक ही निशब्द मंत्रोच्चारण करता चला आ रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

समाधान शायद वहीं कहीं है. यदि देश के आलोकित तथा तिमिरावृत दोनों प्रकार के विच्छिन्न जीवन रूपों को पारस्परिक सान्निध्य में लाकर प्रेम और विश्वास के स्वर्ण-सूत्र से बांधने का पथ आविष्कार किया जाये, तो हमारी संस्कृति के एक बृहत जीवन क्षेत्र की मुक्ति शायद संभव होगी. यदि जीवन की यथार्थता को तथा सनातन आकांक्षाओं को, दोनों को, हम अपनी आंतरिक प्रचेष्टा, गहरी श्रद्धा तथा निरलस श्रम द्वारा जानने तथा समझने का प्रयास करें तो शायद हमारी संस्कृति में एक बार फिर ज्वार आयेगा और उस दिन भारत-वर्ष की किसी भी प्रांतीय भाषा में जो भी साहित्य रचा जायेगा वह तुरंत ही अखिल भारतीय साहित्य बन जायेगा. उस अखिल भारतीय साहित्य मूर्ति में मैं सार्वभौम मनुष्य का केवल चिरंतन रूप ही नहीं देखूंगा, वल्कि 'जनानां हृदये सन्निविष्टः' जो जनार्दन है, उसे भी देखूंगा.

बिष्णु दे

10 फरवरी, 1973

मेरे साहित्यिक जीवन की यह विचित्र विडंबना है कि मुझे तीन पुरस्कार प्राप्त हुये और उनमें तीसरा है यह ज्ञानपीठ का 1971 का इतना विशाल पुरस्कार. भाग्य की विडंबना इसलिये भी है कि युवावस्था में जब दिमाग चढ़ा हुआ था, तो मुझे अंग्रेजी और फ्रांसीसी लेखकों के रंग-ढंग के अनुरूप विद्वता या साहित्यिक मार्ग पर चलकर बाजारू सफलता प्राप्त करने के विचार से मानसिक अवरोध की प्रतीति होती थी. और सच बात तो यह है कि मैंने भाग्य की इस विडंबना का स्वाद जीवन भर चखा है. रवींद्रनाथ ठाकुर से प्रभावित होकर वह विद्यार्थी बालक जो उनके लेखों को पढ़कर प्रचलित शिक्षा-पद्धति के खोखलेपन के प्रति सजग हो स्कूल की पढ़ाई छोड़ने को तत्पर था और जो अपने धैर्यशाली पिता से इस विषय पर घंटों बहस करता था, अंततोगत्वा अपने वयस्क जीवन को एक परंपराबद्ध प्राध्यापक के रूप में प्रारंभ करने को बाध्य हुआ.

लेखक के रूप में यद्यपि उस बालक की किशोरावस्था में भी कभी यह इच्छा नहीं रही कि वह मुंह-जोर उद्धत बालक बने किंतु उसका विश्वास था कि किसी भी प्रकार की ऐसी रूढ़िग्रस्त पद्धतियों से उसका मेल नहीं है जिनके माध्यम से सहज ही पुरस्कार मिल जाते हैं. पर, देखिये कि मैं आपके समक्ष हूं. क्या यह एक विचित्र दुरभिसंधि नहीं जिसमें [illegible] की पुट है? यदि आप मुझ पर हंसें या कम-से-कम मुस्कायें ही तो मुझे जरा भी नहीं खलेगा. किंतु विश्वास रखिये कि मैंने भरसक प्रयत्न किया है कि मैं अपनी सीमित शक्ति भर अपने प्रति और अपने पाठकों के प्रति ईमानदार रहूं.

रामधारीसिंह दिनकर

1 दिसंबर, 1973

कविता युग के संचित ज्ञान का आख्यान नहीं है.

कविता का क्षेत्र ज्यों-ज्यों नवीन होता जाता है, कवि त्यों-त्यों अधिक गहराई में उतरता जाता है, और ज्यों-ज्यों वह गहराई में उतरता जाता है, त्यों-त्यों यह बताने में वह अधिक असमर्थ होता जाता है कि यह सत्य है और वह सत्य नहीं है. कविता की जो यात्रा गहराई की ओर है, वही उसे अनेकांत की ओर लिये जा रही है. कवि यह जान गया है कि कोई भी बात जोर से बोलने के योग्य नहीं है. इसलिये अब वह निश्चित और अनिश्चित, ज्ञात और अज्ञात के संधिस्थल पर काम करता है. मनुष्य इतनी बार धोखा खा चुका है कि उसे अब किसी भी ज्ञान पर विश्वास नहीं रहा और सत्य को उसने इतनी बार बदलते देखा है कि वह कहीं भी दुराग्रहपूर्वक अड़ने को तैयार नहीं है. इसका प्रभाव कविता पर पड़ना स्वाभाविक था. कविता अब सत्य का उद्घोष नहीं, उसके अनुसंधान का प्रयास है.

जिस सभ्यता में हम जी रहे हैं, वह चौकोर व्यक्तित्व-वालों की नहीं, विशेषज्ञों की सभ्यता है. ज्ञान के वृक्ष की डालियां अब बढ़कर इतनी स्वतंत्र हो गयी हैं कि एक डाल पर बसनेवाला पक्षी दूसरी डाल के पक्षी की बोली समझने में असमर्थ है. एक समय ऐसा भी था, जब गैलीलियो, वैज्ञानिक होने पर भी, कविता करते थे. और लियोनार्डो द विची को, कलाकार होने पर भी, विज्ञान की सारी बातें मालूम थीं. भारत में तो कवि अकसर ज्योतिषी भी हुआ करते थे.

'खानखाना अब्दुर रहीम केवल शायर ही नहीं, ज्योतिषी और सिपहसालार भी थे. लेकिन अब समय ऐसा आ गया है कि भौतिकी के सारे आविष्कार गणित के फारमूलों में बोले जाते हैं. मगर सभी वैज्ञानिक इतने बड़े गणितज्ञ नहीं होते कि वे इन फारमूलों को समझ सकें. नतीजा यह है कि वैज्ञानिक की बातें सभी वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आतीं. इसी प्रकार कवियों की कविताएं भी कुछ खास-खास कवि ही समझ पाते हैं. यह स्थिति कविता के लिये सामान्य नहीं, अच्छे-खासे सुधी पाठकों के लिये भी दुखदायी हो रही है. काश, कोई ऐसा कवि पैदा होता, जो इलियट और रिल्के के स्वप्नों को तुलसी की सरलता से लिखने का मार्ग निकाल देता.

दत्तात्रय रामचंद्र बेंद्रे

8 नवंबर, 1974

मैं कर्नाटक के उस धारवाड़ क्षेत्र से आया हूं जहां के दो महाकवि अपने समकालीन कवियों से बहुत ऊंचे थे. इनमें एक पंप थे, जन्म से ब्राहमण पर आस्था और निष्ठा से जैन, और दूसरे थे कुमारव्यास जिन्होंने अपने कर्म विषयक महाकाव्य को ही ईश्वर के प्रति आत्मार्पण के महाकाव्य में ढाल दिया. इन दोनों ही महाकवियों ने महाभारतगत समस्याओं को अपना विषय बनाया है. एक ने अनेक वीर पुरुषों का विभिन्न वर्णों और विभाओं में चरित्र-चित्रण किया है, दूसरे ने नियति, श्रद्धा और स्वतंत्रता के घात-प्रतिघातों द्वारा बड़े सुदर्शन प्रकार की रश्मियों को आविर्भूत किया है. पंप का महाकाव्य जैन कथा पर आधारित है पर किस रूप में अंत होता है उसका? व्यास के महाभारत की नाई, कलिकाल के आगमन और सर्वनाश की सूचना से. मैं जो उसके ही देश का हूं. क्या इससे भिन्न किसी भले भवितव्य को अभिव्यक्ति दूं? मैं तो अनुभव करता हूं कि एक नवीन कृतयुग का आगमन होने वाला है.

यह सारा विश्व, संसार, समूचा भूमंडल एक है. जीवन, मनुष्य, संपूर्ण मानवजाति भी एक है. यही एकमात्र सत्य है, वास्तविकता है : हमें इसका ही अनुसंधान करना है, और फिर इसी का साक्षात्कार. साक्षात्कार किया जा सकता है तो सत का ही. जो असत है वह निराशा और कुंठा को जन्म देगा. जब तक हम इस सत्य के प्रति अनुरक्त नहीं होते, इसे ही अपना जीवन-प्राण नहीं बना लेते, तब तक वह शक्ति हमें प्राप्त नहीं होगी जिससे हम अपना और दूसरों का भला कर सकें. जीवन की यही दिशा और यही उसका रूप है जो हमें यथार्थ सौंदर्य का दर्शन करा सकेंगे और जीवन को आनंदमय बना सकेंगे.

अपने कवि-जीवन में मुझे 'उषः' और 'उड़ान भरता काल' शीर्षक दो कविताओं पर काफी ख्याति मिली है. दोनों कवितायें हमारे यहां के अबोध बालक-बालिकाओं को पढ़नी होती हैं : और जो अध्यापक पढ़ाते हैं वे संभवतः और अधिक अबोध रहते हैं.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पी.वी. अखिलंदम्

17 सितंबर, 1977

सच मानिये, मेरी रचनाओं के अधिकतर पात्र ऐसे ही हैं जिनका मेरे व्यक्तिगत जीवन के साथ कोई न कोई संबंध रहा है. मैंने उन्हीं लोगों का चित्रण किया है जो मुझे प्यार देते हैं या क्षुब्ध करते हैं, जो मेरे सहायक बने हैं या जिन्होंने मेरे साथ छल-कपट किया है. यह अवश्य है कि अनुपात-भेद कुछ-न-कुछ सब कहीं रखा है.

अपने जीवन में मुझे अपने भाग के हर्ष भी मिले हैं और क्लेश-विषाद भी. लेखक का जीवन तो यों भी उस व्यक्ति के जैसा होता है जो एक ही समय में दो घोड़ों पर चढ़ने का प्रयत्न करता हो. वह यदि अपने आदर्शों पर चलते हुये आंतरिक भावनाओं को लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त करने में लगता है तो व्यवहारगत जीवन में असफल हुआ रह जाता है : और यदि धनार्जन की ओर उन्मुख होता है तब यह एकपतिका सृजनेश्वरी तत्काल विच्छेद पर उतर आती है. इसकी तो अपेक्षा होती है कि उसका संपूर्ण ध्यान, अविभक्त रूप में, इसे ही मिले: यहां तक कि अपनी सांसारिक आवश्यकताओं की ओर से भी वह विमुख हुआ रहे.

यह दो घोड़ों के बीच संतुलन बनाये रखने का कार्य सचमुच ही कठिन और जोखिम का होता है. भगवती सरस्वती ने मुझे अनेक बार कठिन परीक्षा में डाला है. मुझे जीवित रहने के लिये विवश होकर समय-समय पर निरे सामान्य काम करने पड़े हैं : मगर कभी भी न देवी सरस्वती की आराधना छोड़ी न ही उसे व्यापार-व्यवसाय का रूप देना सोचा.

एस.के. पोट्टेकाट

28 नवंबर, 1981

मैं वर्ष 1980 का ज्ञानपीठ पुरस्कार एक ऐसे संधि काल में ग्रहण कर रहा हूं जबकि हमारा देश राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के वात्याचक्र से गुजर रहा है. मैं यह बात विशेषकर इसलिए कह रहा हूं कि कला, साहित्य और संस्कृति के संबंध में आज की नयी पीढ़ी की धारणाएं पुरानी पीढ़ी से बिल्कुल ही भिन्न हैं. इन धारणाओं के साथ उनके मूल्य भी बदल गये हैं. कुछ लोग तो यहां तक सोचने लगे है कि विज्ञान और टैक्नोलोजी की अवधारणा प्रगति के इस युग में साहित्यकार का स्थान है ही कहां?

विज्ञान और टैक्नोलोजी के नये-नये आविष्कारों के परिणाम स्वरूप हमारे रहन-सहन के तरीके एक बड़ी सीमा तक बदल गये हैं. आगे ये और भी बदलते रहेंगे. परिवर्तन की अभी और भी संभावनाएं हैं. किंतु यदि हम गंभीरता से विचार करें तो पायेंगे कि ये परिवर्तन हमारे भीतर की आसुरी प्रवृत्तियों को ही बढ़ावा दे रहे हैं.

जैसे विशाल वट वृक्ष की जड़ें होती हैं उसी तरह भारतीय भाषाओं का साहित्य भी सारे देश में व्याप्त है किंतु एक प्रदेश की सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों और उपलब्धियों को अन्य प्रदेशों के लोग प्रायः नहीं समझ पाते. हम अमेरिका, रूस, स्वीडन आदि देशों के साहित्यकारों के बारे में तो जानते हैं किंतु अपने पड़ौसी प्रदेशों के कवियों, कथाकारों के संबंध में लगभग अनभिज्ञ हैं. यह बड़ी दयनीय स्थिति है.

साहित्य का उद्देश्य मनुष्य को जागृत करना और उसकी अंतरात्मा को ऊंचा उठाना है. साथ ही, साहित्य का यह भी उद्देश्य है कि विशाल भारत देश के विभिन्न प्रदेशों के लोगों को समता, सहयोग और पारस्परिक सांस्कृतिक समन्वय के द्वारा एक साथ निकट लाये, चाहे वे बंगाली हों, पंजाबी हों या तमिलनाडु के निवासी हों. यह भ्रातृभाव केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं है. प्रेम की परिधि विशाल होती है. उसमें पशु-पक्षी और यहां तक वनस्पतियां भी समा जाती हैं. हमारे ऋषि-मुनियों, पुराणकारों ने इस विश्वव्यापी प्रेम का प्रसार किया.

मैं आदि-शंकराचार्य के प्रदेश में उत्पन्न हुआ हूं. शताब्दियों पूर्व आचार्य शंकर ने अद्वैत सिद्धांत के द्वारा न केवल संपूर्ण भारत में दिग्विजय प्राप्त की थी अपितु भारत के चारों कोनों में चार मठों की स्थापना की और भारतवासियों को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में आबद्ध किया.

आज के मनुष्य का मानसिक रुझान इस ओर है कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए और सांसारिक सुख-सुविधा की पूर्ति के लिए किसी भी बुरे-से-बुरे साधन को अपनाया जा सकता है. प्रकृति के प्रेम की विज्ञान की वेदी पर बलि दे दी गई है. वनों का बुरी तरह विनाश किया जा रहा है और मरुस्थलों की परिधि बढ़ती जा रही है. हम इस बात से अनभिज्ञ हैं कि कंटीली झाड़ियां और मरुस्थल अब हमारे मस्तिष्क में भी घर कर गये हैं. अब भी समय है कि हमारे साहित्यकार, कलाकार आगे आयें और भारत देश को इस महान विपत्ति से बचायें.

महादेवी वर्मा

28 नवंबर, 1983

प्रायः प्रत्येक युग में साहित्यकार को चुनौती मिली है. कभी धर्म ने, कभी राजनीति ने, कभी समाज ने उसके समक्ष ऐसी समस्यायें उपस्थित की हैं जिनसे बिना संघर्ष किये वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता. अतः हर महत्वपूर्ण साहित्यकार को क्रांत द्रष्टा होना ही पड़ता है. उसने अपने विद्रोह के लिये दंड भी स्वेच्छा और सुख से झेला है.

आधुनिक युग में साहित्यकार को सबसे कठिन चुनौती विज्ञान से मिली है. विज्ञान भौतिक जगत के तथ्यों की खोज है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को प्रकृति पर विजयी होने की शक्ति देती है. पर यह शक्ति दिशाहीन और अनियंत्रित रहती है. उसमें धर्म के समान न पाप-पुण्य का द्वंद्व है, न दर्शन के समान सत्य-असत्य का और न समाज के समान उचित-अनुचित का. इसी से आधुनिक विकसित देश, विज्ञान से प्राप्त शक्ति को दोधारी तलवार की तरह चला रहे हैं. उन्होंने ध्वंस को अपनी शक्ति का प्रमाण मान लिया है. अतः विज्ञान की संहारक शक्ति आतंक ही उत्पन्न कर रही है.

जीवन के मंगल विधान के लिये मनुष्य में संवेदन की तरलता की आवश्यकता होती है जिसे विज्ञान का ताप सुखा रहा है. यदि मनुष्य में संवेदनाशीलता की रागात्मकता नहीं रहेगी तो ध्वंस के ज्वालामुखी पर बैठी मानव जाति किसी भी क्षण समाप्त हो सकती है.

वैज्ञानिक साधनों ने एक देश से दूसरे की दूरी इस सीमा तक कम कर दी है कि जहां पहुंचने में वर्षों लग जाते थे वहां अब कुछ घंटों में पहुंचा जा सकता है. परंतु इस भौतिक निकटता ने मानव के मन को अन्य मानवमन तक नहीं पहुंचाया, वरन उन्हें इतना अपरिचित बना दिया कि एक मनुष्य निर्लिप्त भाव से अनेक निर्दोष मानवों को नष्ट करने में न करुणा का अनुभव करता है न पश्चाताप का.

भारत प्राचीन देश है. उसकी विशेषता है कि वह आक्रामक होकर कहीं नहीं गया. वैज्ञानिक साधनों की शोध से पहले ही उसने 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना में आस्था रखी है और वह अपने दर्शन, संस्कृति, कला, साहित्य आदि का अक्षय संदेश लेकर ही दुर्गम पर्वतों और अगाध समुद्रों को पार कर अन्य देशों में पहुंचा है.

आज भी उसका संकल्प वही है. आज भी वह जीवन की मांगलिक संजीवनी में विश्वास रखता है. मारक अस्त्र-शस्त्रों में नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की अकिंचन कवयित्रि होने के कारण मुझे उत्तराधिकार में वही करुणासिक्त मंगलसाधना प्राप्त है.

मास्ति व्यंकटेश आयंगार

13 अप्रैल, 1985

बहुत वर्षों तक मेरी यह मान्यता रही है कि वह युग, जिसमें धर्म एवं दर्शन द्वारा मानव जाति की रक्षा की जा सकती थी समाप्त हो गया है. अपने आप में सीमित धर्म केवल आपसी झगड़ों को जन्म दे सकते हैं. यहां तक कि एक ही धर्म के संप्रदाय और इन संप्रदायों के उपसंप्रदाय एक दूसरे से भिन्न होते हैं और एक दूसरे के प्रति विरोध की भावना को पालते-पोसते हैं, जो घृणा तक का रूप धारण कर लेती है. यही बात विभिन्न दर्शनों के संबंध में भी सत्य है. विज्ञान यह सोचता दिखायी देता है कि वह मनुष्य जाति की रक्षा कर सकता है. इसने महान कार्य किये हैं लेकिन अपनी प्रकृति के अनुसार मात्र परिणामों पर पहुंच सकता है. यह पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकता. धर्म एवं दर्शनों का उद्देश्य विश्वव्यापी सुख-समृद्धि के लिये प्राणिमात्र को शिक्षित करना है, चूंकि ये अपने कार्य में असफल हो गये हैं, इसलिये साहित्य को यह कार्य अपने हाथ में लेना है. वास्तव में साहित्य को एक धर्म तथा एक दर्शन सूत्रित करना चाहिये, जिसकी दिशा में मानवजाति आज प्रचलित विभिन्न धर्मों और दार्शनिक शाखाओं में मार्ग की खोज कर रही है. साहित्य यह कार्य कर सकता है क्योंकि यह संसार को इसके विद्यमान रूप में स्वीकार करता है और चूंकि यह इसे समग्र रूप से स्वीकार करता है, दिखायी देने वाले विरोधाभासों के मिलन बिंदु को देखता है. वर्षों पूर्व मैंने इन विरोधाभासों की सूची तैयार की थी, तुम और मैं, शरीर एवं आत्मा, जीवन और मृत्यु, यह संसार और दूसरा संसार, पुरुष एवं नारी, मूलवृत्ति एवं कारण, संस्कारों और मानवीय क्रियाकलाप में कारण एवं कल्पना, धर्म एवं विज्ञान, धार्मिक विश्वास एवं धर्म निरपेक्षता, संपत्ति एवं सामाजिक भलाई, पूंजीवाद एवं साम्यवाद, व्यक्ति एवं राज्य, कानून एवं दया, कट्टरता एवं प्रगति, सनक एवं विश्व प्रेम, आनंद एवं आत्म नियंत्रण—साहित्य को मार्ग प्रदर्शन करना है, शक्ति-संपन्न वर्गों से बाहर हमारे उचित कदमों पर जनसाधारण की ओर से दृष्टि रखनी है तथा प्रशासन चलाने के लिये सही आदमियों का चुनाव करने में उसकी सहायता करनी है.

तकषी शिवशंकर पिल्लै

10 नवंबर, 1985

मैं किसी भाषा का विद्वान नहीं हूं, न ही किसी विषय विशेष का ज्ञाता हूं. मैं मात्र एक ग्रामीण हूं जिसका पालन-पोषण केरल के कुट्टनाड क्षेत्र के एक दूरस्थ ग्राम में हुआ. यह ग्राम मात्र 25 वर्ष पूर्व गाड़ी चलने योग्य सड़क द्वारा सुगम बन सका है. मैं अनुभव करता हूं कि मैं कला, साहित्य, काव्यात्मक अनुभूतियां तथा इस प्रकार के अन्य महान विषयों के संबंध में बात न करूं. यदि मैं अपने साहित्यिक क्रियाकलापों के पचपन वर्ष के अनुभवों तक ही इस व्याख्यान को सीमित रखूं तो आप मुझे क्षमा कीजियेगा. मैं अपने जीवन को मात्र साहित्यिक क्रियाकलापों का जीवन ही कह सकूं. यदि आप मेरे पैरों की ओर देखें तो आप उन पर मिट्टी के ऐसे दाग पायेंगे जिन्हें साफ नहीं किया जा सकता. कुछ समय के लिए मैंने मुफ़स्सल वकील के रूप में भी कार्य किया है.

मेरी अभिव्यक्ति का माध्यम ग्रामीणों की भाषा रही है. व्याकरण की जटिलताओं में उलझे बगैर मैंने सरल वाक्यों का प्रयोग किया. गांव का आदमी अपने विचारों में स्पष्ट था और मैं भी उसके विषय में स्पष्ट था. यदि वह भटकता तो स्वाभाविक रूप से मैं भी भटक गया होता, लेकिन मेरे मामले में एक स्पष्ट अंतर यह था कि मैं सृजन करना चाहता था. प्रत्येक ऐसी रचना के लिए एक समर्पण प्रक्रिया, जिसकी मुझे पर्याप्त रूप से पुनःसृष्टि करनी होती थी.

मैं जीवन और मनुष्य से प्रेम करता हूं यह सामान्य है. यह अस्पृश्यों, दलितों, अभागों तथा निम्न वर्गों का जीवन था जिसने मुझे लेखन के प्रारंभिक वर्षों में प्रभावित किया. यह प्रतिक्रिया अत्यंत गहरी थी. मुझ में आक्रोश था. मुझे अपने साहित्यिक जीवन के उस समय की याद है जब मैं समझता था कि भिखारी, कोढ़ी और इसी प्रकार के अन्य अभागे लोग हैं, जिन्हें परिवर्तन के लिए उस समय व्याप्त सामाजिक प्रणालियों के विरुद्ध क्रांति का नेतृत्व करना है. उस समय मैं किशोर था. मेरा उस समय का लेखन अभी भी बाजार में उपलब्ध है. बाद में मुझे समसामयिक इतिहास से ज्ञात हुआ कि क्रांति का नेतृत्व शोषित कामगार वर्गों को करना था. यदि मैं यह दावा करूं कि उपन्यास में कृषि के मोर्चे पर वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाला मैं भारत में प्रथम लेखक था, तो आप मुझे क्षमा करें.

पन्नालाल पटेल

16 दिसंबर, 1986

आरंभ में मैंने कविताएं लिखीं, किंतु उसमें मैं सफल नहीं हो पाया. तत्पश्चात् मैं कहानी-लेखन की ओर आकर्षित हुआ. और अचानक मैं अपनी पहली कहानी से ही लेखक बन गया. फिर तो अविरत रूप से कथा-साहित्य के प्रणयन का सिलसिला जारी रहा. गुजराती साहित्य-संसार ने यह देखकर मेरे लिए 'चमत्कार' का प्रयोग करना शुरू कर दिया.

मेरी जन्मभूमि दक्षिण राजस्थान में है. मेरा जन्म डूंगरपुर जिले के बागड़ अंचल के अंतर्गत मांडली नामक एक छोटे-से गांव में हुआ है, जहां मुश्किल से सौ घरों की बस्ती है. मांडली गांव गुजरात से सटा हुआ है. अतएव हम वहां के निवासी आधे गुजराती हैं. मेरी पढ़ाई गुजराती में हुई और आजीविका के लिए मैं गुजरात में ही स्थिर हुआ. मेरा साहित्य-सृजन गुजरात में हुआ. मेरी महिमा-मंडित एवम् सर्वाधिक प्रशंसित कृति 'मानवीनी भवाई' की मैंने अपनी जन्मभूमि मांडली में खेत के मचान पर बैठे-बैठे रचना की थी. पावस ऋतु की परि-समाप्ति होने वाली थी. मैं अपने खेत के मचान पर बैठ कर पक्षियों को उड़ाता जाता था और इस उपन्यास का लेखन-कार्य करता जाता था. संयोग की बात है कि 'मानवीनी भवाई' की रचना आज से ठीक चालीस साल पहले, यानी सन् 1946 में हुई थी. वर्षा ऋतु के बाद मैं उसकी पांडुलिपि लेकर बंबई गया और प्रकाशक को उसे छापने के लिए दे आया 1947 के ऐतिहासिक वर्ष में उसका प्रथम प्रकाशन हुआ है. जिन दिनों मैं बंबई के एक अस्पताल में खाट पर पड़ा हुआ था, तब मेरे प्रकाशक ने मुझे इस कृति की प्रथम प्रति दी थी. उस समय मेरे मन में यह तनिक भी विचार नहीं आया था कि मैंने एक अनोखी कृति की रचना की है.

साहित्य शब्द-निर्मिति है. शब्द ही साहित्यकार की संपदा है. संसार के सभी साहित्य-स्रष्टाओं ने 'शब्द' की प्रचुर मात्रा में महिमा गायी है. मुझे इस 'शब्द' का परिचय है. अपने विगत अर्द्ध शती के लेखन-कार्य की कालावधि में मैंने इस 'शब्द' को पूरी तरह समझने और पाने का प्रयत्न किया है. किंतु मैं यहां यह कहना और स्वीकार करना चाहता हूं कि मैं अद्यापि इस 'शब्द' को पा नहीं सका हूं. उसकी उत्पत्ति कहां से होती है और किस प्रकार यह रचनाकार के चित्त में अनायास ही प्रकट हो जाता है—यह सब रहस्यमय है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह के अवसर पर
कवियत्री अमृता प्रीतम द्वारा दिया गया भाषण.

गीत मेरे! कर दे मेरे इश्क का कर्ज अदा

अक्सर याद आता है, जब मैं बहुत छोटी थी, नानी कहा करतीं : जब तू पैदा हुई वर्षा ऋतु में, पंद्रह भादों को, तो देवता सो रहे थे. बाद में सुना कि शिशिर, बसंत और ग्रीष्म—ये तीन ऋतुएं तो देवताओं का दिन होती हैं और वर्षा, शरद और हेमंत उनकी रात होती हैं, देवता इन तीनों ऋतुओं में सोये रहते हैं.

लगता है सारी जिंदगी जो भी सोचती रही, लिखती रही, वह सब शायद देवताओं को जगाने का ही एक प्रयत्न था—उन देवताओं को जो इनसान के भीतर सो गये हैं.

क्यों लिखती हूं मैं?

मेरी नजर में यह मैं से आगे मैं तक पहुंचने की एक यात्रा है. यात्रा—उस 'मैं' तक पहुंचने की जिसमें सबसे पहले 'मैं' की पहचान जमा होती है, फिर 'तू' की, और उसके बाद 'वह' की पहचान : यानी दुनिया जमा होती है.

यही वह जगह है—जहां गैर से गैर दर्द भी अपना हो जाता है. इसीलिए एहसास की शिद्दत, अनुभूति की सघनता, 'मैं' का सहज कर्म हो जाता है. एक फूल की महक-सा सहज धर्म.

यही वह जगह है—जहां, यथार्थ की हदों से परे की कल्पना भी यथार्थ की हदों में आ जाती है.

और यही वह जगह है, वह बिंदु है, जहां एक लेखक का चिंतन पाठक का अपना चिंतन बन जाता है, जो यथार्थ पाठक के लिए आखिरी यथार्थ था वह आखिरी नहीं रहता. सचाई यह है कि एक असंभव की हद में आ जाता है.

यह ठीक है कि पाठक की अपनी जिंदगी का जाना-पहचाना यथार्थ, और यह उसका एक काल्पनिक यथार्थ, आपस में टकरा उठते हैं. मगर इसी टकराव से उसके मन में ऐसे कई सवाल भी पैदा हो उठते हैं जो होने चाहिए. मेरी नजर में कलम का मकसद भी यही है : कि यथार्थ जो है उसे दिखा पाना, और जो होना चाहिए उसे भी दिखा सकना.

पहले वक्तों में लोग बच्चे की पैदाइश के वक्त होने वाली मां की कोठरी में एक कोरा कागज और कलम-दवात रख दिया करते थे. और घर का बुजुर्ग उस कोरे कागज के पास खड़े होकर दुआ मांगा करता : 'विद्या माता, बच्चे के जन्म के वक्त जब यहां तुम आओगी तो बच्चे की अच्छी-सी तकदीर लिख जाना!'

कितना बड़ा विश्वास था यह इनसान का! कागज पर लिखे हुए अक्षरों में विश्वास!

और लिखे हुए अक्षरों के लिए यही सम्मान का भाव, यही अक्षरों में विश्वास बना लेखक और पाठक का कदीमी रिश्ता.

और मेरी नज़र में तो लेखक सही मायनों में तभी लेखक है जब विद्या माता की तरह उसमें इनसान के चिंतन की तकदीर लिखने की शक्ति हो.

ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों में एक कहानी चलती है कि पुराने वक्तों में आसमान बहुत नीचा हुआ करता था. इतना नीचा कि धरती का इनसान सिर उठाकर नहीं चल सकता था. तब धरती पर इतना अंधेरा भी रहता था कि खाने के लिए इनसान को हाथों से टटोल-टटोलकर जड़ी-बूटियां खोजनी पड़ती थीं. तब पंछियों को यह खयाल आया कि अगर किसी तरह आसमान को धकेलकर कुछ ऊंचा कर दिया जाये तो धरती के इनसान धरती पर सिर उठाकर चल सकेंगे.

और कहते हैं पंछियों ने लंबे-लंबे तिनके इकट्ठे किये और अपना पूरा जोर लगाकर आसमान को ऊपर उठाना शुरू किया. और, आसमान सचमुच ऊपर उठ गया : और लोग, जो घुटनों के बल चलते थे, सिर उठाकर खड़े हो गये, चलने लगे.

साथ ही, आसमान के पीछे छिपा हुआ सूरज अब सामने आ गया और समूची धरती रोशन हो गयी.

यह कहानी पुराने वक्तों की होते हुए भी, मेरी नजर में हर काल की कहानी है, हर क्षेत्र की कहानी है—बेशक अपने-अपने अर्थों में. पंछी-रूहवाले इनसान अपने जतन से, इनसानी रिश्तों के अंधेरे जंगल में भी अपना आसमान ऊंचा उठाकर अपने लिए सूरज की रोशनी खोज लेते हैं.

और मैं तो सोचती हूं कि हर समाज, हर मजहब, और हर सियासत के अंधेरे में—जहां और जितनी बार रोशनी दिखाई देती है, वह उन कुछेक लोगों की ही वजह से है जिन्होंने अपने जतन से कहीं-कहीं अपना आसमान ऊंचा किया है.

लेखन की धरती पर तो, सचमुच कुछ लेखक होते ही हैं—पंछी-रूही जैसे—और उनकी कलमें ही वह तिनके होते हैं जिनके जोर से वे आसमान को ऊंचा उठाकर इनसान का सिर ऊंचा कर देते हैं.

अपनी कलम के बारे में तो सिर्फ इतना ही कह सकती हूं कि इसने दुनिया की कुछ उन कलमों का साथ दिया है जो आसमान को ऊंचा करने में यकीन रखती हैं.

आसमान को ऊंचा करने वाले अदीब कैसे होते हैं, इसकी गवाही दुनिया-भर का अच्छा अदब देता आया है. लेकिन आम जिंदगी में आम इनसान अपना हाथ उठाकर कब किसी आसमान को ऊंचा कर जाता है—यह एक गुमनाम इतिहास हुआ करता है.

यहां एक घटना का जिक्र करना चाहूंगी : एक दिन अचानक एक अजनबी मिलने आया. भारतीय ज्ञानपीठ के इस एवार्ड की खबर पाने के बाद. और, उस अजनबी की आंखों में पानी था, और हाथ में थोड़ी-सी मिट्टी. कहा उसने इतना ही : "यह उस धरती की मिट्टी लाया हूं, गुजरांवाला की, जहां तुम पैदा हुई थीं....." मैं भरी-भरी आंखों देखती रह गयी!

मिट्टी का धर्म सचमुच कितना बड़ा होता है! कौन समझेगा कि जिन मजहबों की बुनियाद पर धरती के टुकड़े कर दिये जाते हैं, वे मजहब इसके सामने कितने छोटे हैं! इनसान के दिल की खूबसूरती, उसके मन की महक—मिट्टी का धर्म होती है. और धर्म की आत्मा को तो किसी मजहब ने अभी तक पहचाना नहीं.

यह मिट्टी का दिया हुआ उपजाऊ धर्म अच्छे इनसानों का होता है, अच्छे अदीबों का, साहित्यकारों का धर्म!

कोई भी एवार्ड किसी अदीब का मकसद नहीं होता. मकसद तो उसका एक ही होता है—कि लोगों की रूह तक पहुंचे. लेकिन अगर कोई एवार्ड उसके मकसद के पूरा होने का ज़रिया बनकर जिंदगी में आता है, तो उसकी अहमियत होती है, सही मायनों में बहुत बड़ी अहमियत होती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हर कलम के सामने उसकी भाषा का एक सीमित दायरा होता है. हिंदुस्तान में खासकर. यहां बहुत-सी भाषाओं ने चिंतन को छोटे-छोटे दायरों में बांटा हुआ है. भारतीय ज्ञानपीठ की सबसे बड़ी अहमियत यह है कि उसने भाषाओं की इन छोटी-छोटी नदियों को एक बहुत बड़ी नदी से जोड़ दिया है: पूरे हिंदुस्तान की कला और चिंतन की महानदी से!

किसी भी अदीब के लिए आर्थिक स्वतंत्रता एक बहुत बड़ा मसला होता है. इस पहलू से भी भारतीय ज्ञानपीठ की अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता. लेकिन एक और पहलू है, बहुत बड़ा पहलू, कि कोई अदीब लिखता है तो किन कद्रों के लिए, किन मूल्यों के लिए. अदीब नैतिक मूल्यों को, उनके सतही और सिमटे हुए दायरों से निकालकर, गहरे और रूहानी अर्थों तक उठा ले जाने की जद्दोजहद करता है. इस जद्दोजहद में उसे समाज का कड़ा विरोध झेलना पड़ता है. भारतीय ज्ञानपीठ का यह कदम उस तमाम विरोध की नजर में भी ज़िंदगी के व्यापक अर्थों को पहचानने की एक संभावना पैदा कर देता है. और यह सचमुच एक बहुत बड़ी बात है.

इसलिए भारतीय ज्ञानपीठ के लिए मेरा एक लफ्ज 'शुक्रिया', एक अर्थ वाला नहीं है, तीन अर्थों वाला है.

आग की लपट को बहुत से लोग चिमटे से पकड़ने की कोशिश करते हैं: रिवायतों और संस्कारों के चिमटे से. बहुत से आलोचक भी उस लपट को किसी न किसी 'वाद' के चिमटे से पकड़ने का जतन करते हैं और फिर खीज उठते हैं कि वह लपट चिमटे की पकड़ में नहीं आती.

उस आग की लपट को, —सचमुच पकड़ा जा सकता है तो सिर्फ आग की लपट से ही. इसलिए कहना चाहूंगी उन सबसे, जो भारतीय ज्ञानपीठ और ज्ञानपीठ एवार्ड से संबद्ध हैं, कि आपकी नजर को वह नजरिया मुबारक: जो हिंदुस्तान की साहित्यिक जन-चेतना को लोगों के पास तक पहुंचाने का बहुत बड़ा माध्यम बना है.

जिंदगी के एक मुश्किल वक्त में मैंने एक नज़्म लिखी थी:

आज मैंने एक दुनिया बेच दी
और दीन खरीद लिया—
बात कुफ्र की कर दी
सुपनों का एक थान बुना था
गज एक कपड़ा फाड़ लिया—
और जिंदगी की चोली सी ली
आज मैंने आसमान के घड़े से
बादल का ढकना उठाया—
और घूंट चांदनी पी ली
गीतों से चुका जाऊंगी
यह जो मैंने मौत से—
एक घड़ी कर्ज ले ली.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी शायर या अदीब का सबसे बड़ा सुख...

अमृता जी का एक और भाषण

जो साहित्य अकादमी समारोह में पिछले माह ही दिया गया था:

जब हर सितारा गीर्दश से गुजर कर तेरे सूरज के पास आने लगे, तो समझना-यह मेरी जुस्तजू है—जो हर सितारे में नुमाइया हो रही है, मेरे हम वक्त दोस्तो!

किसी भी शायर या अदीब के तसव्वुर से लेकर उसकी तखलीक तक का फ़ासला सचमुच एक बहुत लंबी यात्रा है. कदम-कदम चलते हुए जाने खुदा कहां-कहां से गुजरना होता है.

आपकी चेतना जाने कितनी बार अपनी ही उपचेतना का द्वार खटखटाती है. यह चेतना की यात्रा उपचेतना की गहराई में उतरती हुई, और अवचेतना की एक झलक-सी देखती हुई जब सामूहिक चेतना की सरसराहट सुनती है, तो जाने कितनी हरियालियां और कितनी वीरानियां आपके कदमों से लिपट जाती हैं.......

जाने कितनी खामोशियां आप से आवाज़ मांगती हैं
जाने कितने गुमनाम चेहरे आपसे पहचान मांगते हैं
और एक आग आपकी रगों में सुलगती है, अक्षरों में ढलती है...

कायां के किनारे टूटने लगते हैं—और सीमा में छलक आयी असीम की शक्ति ही वह फासला तय करती है, जो रचना के क्षण तक का एक बहुत लंबा फासला है. अहसास की एक बहुत लंबी यात्रा.

मानना होगा कि किसी हकीकत का मंजर उतना है, जितना भर किसी की पकड़ में आता है......

वह कितनी शिद्दत का हासिल है? कितनी दीवानगी का हासिल? और किसी के संस्कार उसे किस पहलू से देख पाते हैं, और उसे किस कोण से कितना भर पहचान पाते हैं, यह एक ऐसा अनुभव है, जो इतने अलग-अलग रंगों में खिलता है कि हम उसे बड़ी आसानी से मौलिकता लफ़्ज दे सकते हैं, और यह उसी का तकाजा है कि कोई हरफ आखिरी हरफ नहीं होता.

इसीलिए बेइंतिहा किताबें दुनियां में हैं, लेकिन उनके होते हुए भी वह जगह हमेशा बनी रहती है, जो नयी तखलीक का इंतजार करती है.

कहते हैं एक बार भृगु ऋषि ने शुक्र से कहा—मेरी दृष्टि पूरी सृष्टि को देख पाई, और हर व्यक्ति के हर जन्म को. मौत के क्षण को भी, और आयु के बरसों को भी, लेकिन एक रहस्य पकड़ में नहीं आया कि एक आंसू की उमर कितनी होती है? वह कहां से आता है? कहां जाता है? और इंसान की आंखें कितने आंसू झेलती हैं? या एक ही आंसू होता है, जो इंसान की आंखों में बार-बार जन्म लेता है?

और कहते हैं— हैरान से भृगु-ऋषि की ओर देखते हुए, शुक्र की आंखों में एक आंसू भर आया था......

और फिर भृगु ऋषि ने मुस्कराकर कलम की ओर देखा, जो अपनी आंख में भर आये हर आंसू को हर बार अक्षर बना देती है, और फिर आहिस्ता से हंस देती है.......

जिन्होंने भी हाथ में कलम ली, और कलम की आंख में भर आये आंसू को देखा, और फिर हर आंसू को अक्षर बना दिया, उन हाथों की व्यथा, और उन हाथों का हासिल, अदब की तारीख बनता है.........

हम सब जानते हैं कि जड़ता सोई हुई चेतना का नाम है, और चेतना जागी हुई जड़ता का नाम. और मैं मानती हूं कि किसी शायर या अदीब का सबसे बड़ा सुख यह है कि वह रचना के क्षण में, उस क्षण को देख सकता है, जो सोई हुई जड़ता के जागने का क्षण होता है........

सिर्फ मुश्किल वक्त नाजुक नहीं होता. अचानक ही कहीं से इतनी पहचान मिले, इतना प्यार मिले—तो ऐसा वक्त भी उतना ही नाजुक होता है. इसलिए आज भी कहना चाहूंगी—

गीत मेरे! कर दे मेरे इश्क का कर्ज अदा
कि तेरी हर एक सतर से आये जमाने की सदा.

बहुत-बहुत धन्यवाद.

16 अप्रैल, 1983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी इस भारत यात्रा का अविस्मरणीय क्षण

मार्गरेट थैचर

महीयषी महादेवी वर्मा को पुरस्कार समर्पण करने के लिए ब्रिटेन की प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर को आमंत्रित कर समारोह के नये आयाम खुले. यह पहला अवसर था जब किसी अभारतीय के हाथों पुरस्कार समर्पित हुआ. इस अवसर पर कार्यक्रम इस तरह संयोजित किया गया कि मार्गरेट थैचर पहले और महादेवीजी बाद में सभास्थल में पहुंचें ताकि कवि का महत्व और गरिमा बनी रहे. यहां प्रस्तुत हैं श्रीमती मार्गरेट थैचर और महादेवी वर्मा के भाषणों के प्रमुख अंश

भारतीय ज्ञानपीठ का साहित्य-पुरस्कार भारतीय लेखक को प्राप्त होने वाला निर्विवाद रूप में सर्वोत्तम सम्मान है.

मैं जानती हूं कि इस वार्षिक पुरस्कार को अपने हाथों भेंट करने के लिए आपने सदा विशिष्ट भारतीय महानुभावों को आमंत्रित किया है— प्रायः या तो राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री, या एक अवसर पर स्वयं महादेवी वर्मा को, जो सर्वथा उचित था.

यह एक विशेष सम्मान की बात है कि आज संध्या आपने मुझे यहां पुरस्कार भेंट करने के लिए बुलाया. ऐसा पहली बार हुआ है कि भारतीय नागरिक के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति ने यह पुरस्कार भेंट किया हो. यह मेरे लिये बहुत अधिक प्रसन्नता की बात है और मेरी इस बार की भारत यात्रा की स्मृति में यह बात महत्वपूर्ण ढंग से जुड़ी रहेगी, जब भारत ने पहली बार राष्ट्र मंडल के शासन-प्रमुखों के सम्मेलन को आमंत्रित किया है.

भारतीय ज्ञानपीठ उस महावृक्ष की तरह है जिसकी जड़ें आपकी प्राचीन संस्कृति की भूमि में गहरी उतरी हैं और जिसकी शाखायें तथा पल्लव विकासमान भारतीय साहित्यकारों की उस विकासशील जीवन-परंपरा की प्रतीक हैं जो आज भारतीय भाषाओं में नये साहित्य का सृजन कर रहे हैं. आपकी भाषाएं भारत की जिस भाषागत व्यापक विविधता को और समृद्ध परंपरा को दर्शाती हैं वह भारतीय संस्कृति की महिमा के अंग हैं. 18वीं शताब्दी में जब से संस्कृत के महाग्रंथों का अनुवाद योरुप में पहुंचा, हम पश्चिम-वासियों को भारत की महान साहित्यिक विरासत का पता चला और हमने इससे प्रेरणा ग्रहण की. उसके बाद आपके प्राचीन और आधुनिक साहित्य ने अधिकाधिक अपना उचित स्थान हमारे साहित्य के सह-संबंधी के रूप में प्राप्त किया. इसने हमारे ज्ञान को विस्तार दिया है, हमारी समझ को गहरा बनाया और हमारे आनंद में वृद्धि की है. इस सबमें भारत की कविता ने अपना एक विशेष गौरवमय स्थान बनाया है.

मुझे बताया गया है कि अब तक जो साहित्यकार पुरस्कृत हुए हैं उनमें भारत की महान भाषाओं में 12 भाषाओं के रचनाकार सम्मिलित हैं. प्रत्येक पुरस्कार के द्वारा केवल लेखक ही सम्मानित नहीं हुआ है, बल्कि उस भाषा का और उस भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त संस्कृति का भी सम्मान हुआ है. इससे सारे राष्ट्र-वासियों को प्रोत्साहन मिला है कि वह अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के साहित्य को भी पढ़ें.

इस प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ ने महान राष्ट्रीय सेवा का यह काम किया है और कर रही है कि इस विशाल देश की एकता में योगदान देने वाली अनेक समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति देशवासियों की जानकारी विकसित हो.

श्रीमती महादेवी वर्मा, जिनका हम आज यहां सम्मान कर रहे हैं छायावाद के प्रमुख रचनाकारों में हैं. जिस काव्य धारा ने आधुनिक भारतीय कविता में 1920 और 1930 के दशकों में युगांतरकारी परिवर्तन किया. इसके अतिरिक्त वह साहित्य-शास्त्र की प्रेरणा हैं, संस्कृत काव्य की अनुवादक हैं, गद्य में रेखाचित्रों की सर्जक हैं, और भारतीय नारी पर लिखे गये उस निबंध-संग्रह की लेखिका हैं जिसने भारतीय क्लासिक (गौरव ग्रंथ) की मान्यता प्राप्त की है.

किंतु, विशेष बात तो यह है कि महादेवी कवि हैं. हिंदी की मूल कविता का अंग्रेजी अनुवाद बहुत ही असमर्थ प्रतिरूप है, किंतु इस स्मरणीय अवसर पर अपने भाषण को मैं महादेवी की उन पंक्तियों से समाप्त करना चाहूंगी जो उन्होंने अनेक वर्ष पहले अपनी 'उस पार' शीर्षक कविता में लिखीं. जीवन के तूफान में कूदने से पहले अपने मन की शंका व्यक्त करने के उपरांत उन्होंने दृढ़ निश्चय और साहस को अभिव्यक्ति दी जो स्वयं उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है और जो हम से भी बहुत कुछ कहती है:

तरी को ले जाओ मझधार
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार
वही पहुंचा देगा उस पार!

नमस्कार

—मार्गरेट थैचर
28 नवंबर, 1983

और महीयसी महादेवी ने कहा.....

इसे मैं सुखद संयोग ही मानती हूं कि अनेक वर्ष पहले विश्ववंद्य बापू के पुण्यकरों से मुझे जब हिंदी का सम्मानित पुरस्कार प्राप्त हुआ था, तब वे और हम सब अपनी स्वतंत्रता के लिए ब्रिटेन से अहिंसक संघर्ष कर रहे थे और आज उसी देश की प्रधान मंत्री श्रीमती थैचर मित्र-भाव से मुझे सम्मानित कर रही हैं.

हमारा संघर्ष कितना द्वेष, हिंसा आदि से रहित था यह उसी का प्रमाण है कि स्वतंत्र भारत और स्वतंत्र ब्रिटेन आज मित्रता के सूत्र में आबद्ध हैं.

मेरी कामना अपनी आर्षवाणी में यही है—

'संगच्छध्वं संवदध्वम् संवो मनांसि जानताम्.'

हमारी गति साथ हो, हमारी वाणी समान हो और हम एक-दूसरे के मन को जानें.

जय भारत!

— महादेवी वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

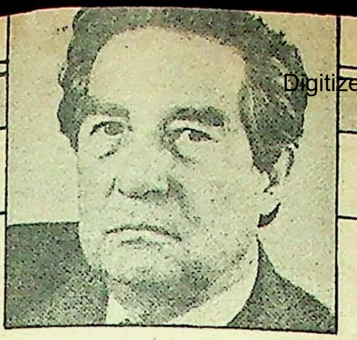

यह समारोह कई अर्थों में अनूठा बन गया है

आक्टोवियो पॉज

तीसरे पुरस्कार के सहविजेता गुजराती के मूर्धन्य कवि उमाशंकर जोशी ने 1968 में अपने भाषण में विश्व के जिन महान कवियों का जिक्र किया था उनमें एक नाम था—आक्टोवियो पॉज. और यह सुखद संयोग की बात कि 1985 में ज्ञानपीठ के बीसवें पुरस्कार को समर्पित करने वे ही कवि अपनी उपस्थिति से पुरस्कार समारोह को महिमामंडित करने आ पहुंचे. और इससे भी कहीं अधिक सुखद संयोग यह कि सुदूर मैक्सिको में बसे इस कवि ने पुरस्कार विजेता मलयालम कथाकार तकषी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना 'चेम्मीन' को वर्षों पहले अपनी भाषा-स्पैनी—में न केवल पढ़ा था बल्कि उसे सराहा भी था. यहां प्रस्तुत है कवि आक्टोवियो पॉज का अविकल भाषण और भारतीय पृष्ठभूमि पर लिखी उनकी महत्वपूर्ण कविता.

अपने एक सहयात्री, सुप्रसिद्ध लेखक और उपन्यासकार, तकषी शिवशंकर पिल्लै को भारतीय ज्ञानपीठ साहित्य पुरस्कार प्रदान करने का जो सम्मान आज मुझे मिला है, उसके लिए मैं अपने हृदय की गहराइयों तक झंकृत हूं. यह समारोह कई अर्थों में अनूठा बन गया है. पहला तो यह कि हम अपने जिस समकालीन लेखक का सम्मान कर रहे हैं, वह अपने विस्तृत और विराट साहित्यिक कार्य के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर पहले ही अपना स्थान बना चुका है. दूसरे, एक दूसरे देश तथा दूसरी भाषा का लेखक भारत के एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेखक को भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से यह पुरस्कार प्रदान कर रहा है. और तीसरा यह कि मलयालम के एक लेखक को स्पानी के एक लेखक के साथ जोड़कर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की एक अनूठी विशेषता को दर्शाया गया है. यह एक ऐसा राष्ट्रीय पुरस्कार है जिसे प्रतिवर्ष विभिन्न भाषाओं में तथा विविध साहित्यिक परंपराओंवाले लेखकों को दिया जाता है. इस प्रकार यह पुरस्कार भाषायी राष्ट्रीयता की सीमाओं से आगे निकल जाता है. कहा जाता है कि भाषा ही लेखक की मातृभूमि होती है पर यहां भारत में तो राष्ट्र की अवधारणा किसी एक भाषा के साथ जुड़ी हुई नहीं है. भारत तो अपने आप में एक विश्व है. भाषाओं की एक महासभा.

भाषाओं तथा परंपराओं की विविधता के बावजूद आधुनिक भारतीय साहित्य में एकात्मकता के भी दर्शन होते हैं. यह एकात्मकता हमें साहित्यिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्रोतों की विविधता में दिखाई देती है. पिछली सदी के मध्य से ही पश्चिम के साहित्य का प्रभाव इस पर लगातार पड़ता रहा है, इसके अलावा स्थानीय परंपराओं तथा बोलचाल की शैलियों के प्रभाव के बावजूद वह एकात्मकता अक्षुण्ण है, शैलियों और सौंदर्य दृष्टि की समानताओं में इस एकात्मकता के दर्शन होते हैं. इस दृष्टि से पिल्लै ने बाहरी प्रभावों का अपनी राष्ट्रीय मेधा से उपयोग करके एक ओजस्वी गल्प का निर्माण किया है. अपने बचपन तथा युवावस्था में वे क्लासिकी साहित्य की परंपराओं के संपर्क में आये. महाभारत तथा रामायण ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया, बाद में जब वे गद्य में लिखने लगे तो उन्होंने आधुनिक युग की श्रेष्ठ विधा, उपन्यास को चुना, उन्होंने अपने जन्म स्थान केरल के आम आदमी के जीवन के अंधेरे-उजाले पक्षों को अपनी कहानियों और उपन्यासों का कथ्य बनाया और बहुत कम समय में वे पूरे भारत में प्रसिद्ध हो गये. 1956 में 'चेम्मीन' के प्रकाशन के साथ ही उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी मिली. इस उपन्यास का अनुवाद कई भाषाओं में हुआ, स्पानी में भी. यह एक ऐसी कृति है जिसमें पिल्लै का यथार्थवाद, अगर मैं कहूं तो, और अधिक यथार्थ के साथ प्रकट हुआ है. मेरे कहने का तात्पर्य है कि भावातिरेक, फंतासी, मिथक आदि सभी मानवीय यथार्थों को स्वीकार करते हुए यह उपन्यास आगे बढ़ता है. यथार्थवाद अनिवार्यतः अयथार्थ की पर्याप्त मात्रा को अपने में समाहित किये रहता है, अन्यथा वह यथार्थवाद होगा ही नहीं.

पिल्लै की उपलब्धियां प्रशंसा के योग्य हैं. अपने मित्र नारायण मेनन की एक बात मैं यहां उद्धृत करने की अनुमति चाहूंगा. मेनन भारत के एक बड़े संगीत विद् होने के साथ-साथ एक प्रखर आलोचक और उतने ही विद्वान साहित्यकार भी हैं. (मुझे कवि येट्स पर लिखे उनके सारगर्भित निबंध की अब भी याद है जिसे हो सकता है वे स्वयं ही भूल गये हों) उन्होंने पिल्लै के बारे में लगभग बीस साल पहले लिखा था कि "पिल्लै अपनी उम्र के चालीसे में हैं. यह उनके जीवन के चरम निखार वर्ष हैं. वे आज अपने लेखन में विविधता ला रहे हैं, दिन-ब-दिन निखार ला रहे हैं. यह निखार उनकी मेधा का ही नहीं, उनकी विलक्षणता का भी पैमाना है. आप इतने सहज, प्रखर और गतिशील लेखनी वाले रचनाकार से जो भी उम्मीदें रखें, वे कम ही होंगी." मेनन की ये उम्मीदें गलत नहीं रहीं और आज हम उनकी इस भविष्यवाणी को पूरा होते देख रहे हैं. आधुनिक भारतीय साहित्य के इस निर्माता का हम सादर अभिवादन करते हैं. यह भारतीय साहित्य जो कई भाषाओं में लिखा जाता है और समस्त मानव जाति की साझी सचाइयों को निरूपित करता है, वास्तव में, अपनी प्रकृति से ही सार्वजनिक है.

आक्टोविया पॉज
10 नवंबर, 1985

अनुवाद : सु. उ.

शिव और पार्वती!

हम तुम्हें पूजते हैं
देवताओं की तरह नहीं,
मनुष्य में देवत्व की
प्रतिमाओं की तरह!
तुम वह हो—जो मनुष्य रचता है
स्वयं नहीं है,
—किंतु वह हो जायेगा वैसा
जब वह अपने कठोर श्रम का दण्ड काट
चुका होगा.
शिव!
तुम्हारी चार भुजाएं चार सरिताएं हैं
जल की चार उच्छल धाराएं.
तुम्हारा सारा अस्तित्व एक निर्झर है
जिसमें रूपसी पार्वती नहाती है,
मनोरम नाव सी झूलती है.
सूर्य-तले समुद्र धड़क रहा है—
यह शिव के विशाल होंठ हैं, हंस रहे हैं.
समुद्र में कौंध हैं—
ये जल पर पार्वती के चरण हैं.
हे शिव और पार्वती!
यह नारी जो मेरी पत्नी है
और मैं
आपसे कुछ नहीं मांगते, ऐसा कुछ नहीं
जो इस लोक से परे का हो.
हम मांगते हैं
केवल
समुद्र पर पड़ता प्रकाश,
सोती धरा और सोते सागर पर
नंगे पांवों उतरता प्रकाश.

स्पैनिश कविता जो कवि ऑक्टेवियो पाज़ ने पढ़ी, और पुरस्कार-मंच पर इंदु जैन ने प्रस्तुत की.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ पुरस्कार

संस्थापकों, संचालकों के विचार और विनयांजलि

ज्ञानपीठ की अध्यक्ष श्रीमती रमा जैन का पुरस्कार समारोह के अवसर पर पहला स्वागत भाषण

इस प्रथम पुरस्कार-समर्पण समारोह के अवसर पर मैं आप सबका हार्दिक स्वागत करती हूं और महाकवि कुरुप का श्रद्धापूर्ण अभिनंदन. इस अवसर पर प्रवर परिषद् के प्रथम अध्यक्ष राष्ट्रपति देशरत्न—डॉ. राजेंद्रप्रसादजी का स्वतः ही स्मरण हो आता है. उनकी प्रेरणा, शुभकामना एवं मार्गदर्शन से भारतीय ज्ञानपीठ को तथा मुझे सदा साहस प्राप्त हुआ है और इस पुरस्कार योजना को वर्तमान रूप देने में उनके सुझावों से बहुत बड़ा बल मिला है. उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करती हू.

यह मेरा सौभाग्य है तथा आत्मसंतोष की बात है कि 1961 में देखे गये स्वप्न को मैं सार्थक रूप में देख रही हूं. मुझे हर्ष है कि भारतीय ज्ञानपीठ ने इतने कठिन कार्य को हाथ में लेने का साहस किया और उसे सुखद परिणाम तक पहुंचाने का श्रेय डॉ. संपूर्णानंदजी के नेतृत्व, प्रवर परिषद् के सदस्यगण और भारत के साहित्यकारों को है, जिन्होंने अपनी अनेक व्यस्तताओं में-से भी समय निकालकर बराबर इस पुरस्कार योजना को सफल बनाने में सहयोग दिया है. डॉ. संपूर्णानंदजी एवं प्रवर परिषद् के सदस्यों के व्यक्तित्व से आप सभी परिचित हैं. भारतीय ज्ञानपीठ उनकी कृतज्ञ है.

इस समय देश में भाषा, जाति, प्रांत, धर्म आदि विषयों को लेकर कई विवाद खड़े किये जा रहे हैं. इससे देश की समग्र भावना को आघात पहुंचा है और आगे भी पहुंचने की आशंका है. इस प्रकार की धाराओं को रोका न गया, तो यह हमारे महान् जनतंत्र को भी जर्जरित कर सकता है. इस संदर्भ में यह विशेष महत्व व गौरव की बात है है कि प्रवर परिषद् में विभिन्न भाषी सदस्यों ने एकमत से महाकवि जी. शंकर कुरुप की मलयालम कृति 'ओटक्कुषल' का वरण किया.

देश की सांस्कृतिक एकता और विचारों का सामंजस्य, जो जीवन के यथार्थ थे, उन्हें संकुचित दृष्टि ने, राजनीति पर आश्रित भाषा और सीमा विवादों ने तथा अन्य दुराग्रहों ने धूमिल कर दिया है. उन सब सीमाओं को तोड़कर हम समाज, साहित्य और संस्कृति के महा आकाश के नीचे एक साथ एकत्र हैं. आज उत्तर का यह अंचल सुदूर दक्षिण के अंचल के साथ एक-प्राण हो रहा है और हम अपने मलयालम के कवि का नहीं, भारत के कवि का अभिनंदन कर रहे हैं!

महाकवि, देश के साहित्यकारों ने आपकी वाणी वाग्देवी की अर्चना के लिए जो भावांजलि आज प्रस्तुत की है, भारतीय ज्ञानपीठ ने इस पुरस्कार के रूप में उस पुष्पहार में श्रद्धा का एक सुमन गूंथा है. हां, हमारी भावनाओं का विस्तार इतना व्यापक है कि यह फूल उनका एक प्रतीक ही बन सकता है.

आज का यह अवसर भारतीय साहित्य के इतिहास में इसलिए स्मरणीय रहेगा कि देश की राजधानी में विभिन्न विद्वानों, साहित्यकारों, राजनयिकों और बुद्धिचेता नागरिकों ने देश के विभिन्न अंचलों से आकर साहित्य-मनीषियों की उपस्थिति में और उनके सहयोग से एक ऐसे साहित्यकार का अभिनंदन किया जो समस्त भारतीय साहित्य की प्रतिभा और राष्ट्र की एकता का प्रतिनिधि है. महाकवि कुरुप का अभिनंदन देश की संश्लिष्ट संस्कृति और उस संस्कृति की साहित्यिक अभिव्यक्ति का अभिनंदन है.

वास्तव में यह समारोह और यह अभिनंदन समूचे देश के साहित्यकारों की ओर से महाकवि का अभिनंदन है. पुरस्कार का निर्णय जिस पद्धति से किया गया है उसका दायित्व स्वयं साहित्यकारों और समीक्षकों ने उठाया है और सबके सहयोग से यह संभव हुआ है कि आज हम समूचे भारतीय साहित्य में-से एक कृति का चयनकर अखिल भारतीय साहित्यिक मानदंड की स्थापना की ओर अग्रसर हुए हैं. यह मानदंड संसार के साहित्य-क्षेत्र में भारतीय साहित्यकारों को एक सम्मानित आसन दिलायेगा. भारत की सांस्कृतिक विचार एकता को जनसाधारण में व्यापक और दृढ़ करेगा.

हमें इस बात की प्रसन्नता है कि भारत सरकार ने पुरस्कार की राशि को आयकर से मुक्त कर दिया है और इस प्रकार भारतीय साहित्य के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की है. ज्ञानपीठ इस सहयोग के लिए आभारी है.

19 नवंबर, 1966

ज्ञानपीठ के अध्यक्ष साहू शांतिप्रसाद जैन का पुरस्कार समारोह के अवसर पर पहला स्वागत भाषण

इस सभागार में जिस स्थान पर खड़े होकर मैं बोल रहा हूं, वह स्वागत-स्थली आज अपूर्ण है. अपनी दूरदर्शिता और कर्मठता से जिसने भारतीय ज्ञानपीठ को एक सार्थक व्यक्तित्व दिया, अपनी साहसिक कल्पना और क्रियाशीलता से जिसने इस साहित्य-पुरस्कार को राष्ट्र की गरिमा के उपयुक्त बनाया, उसका स्थान तो कभी भरा नहीं जा सकता. विज्ञान भवन की गैलरी और सभागार में, और इस मच पर के विगत नौ समारोहों की स्मृति में वह नाम सुवासित है. पारिवारिक स्तर पर उस स्मृति ने आपके स्नेह से विशेष रूप से जोड़ा है; आपकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवर्तिका श्रीमती रमारानी जैन.

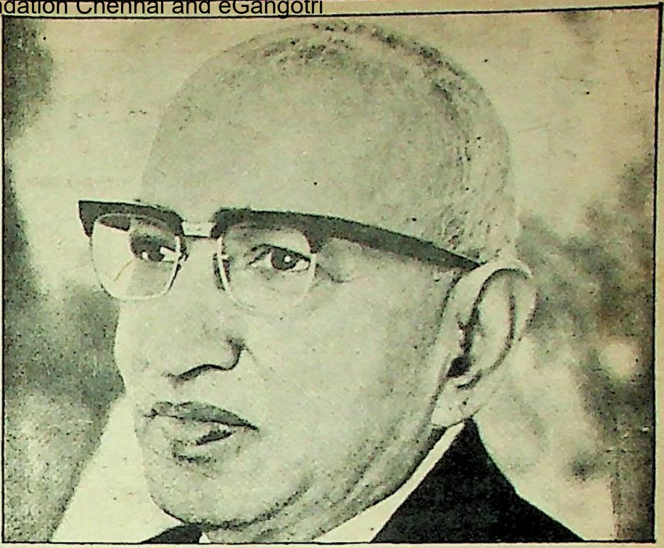

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शांतिप्रसाद जैन.

संवेदनाओं ने हमें बल दिया है. स्वागत के इन शब्दों और भावनाओं से उसी व्यक्तित्व की प्रतिध्वनि आप सुन रहे हैं, यह विचार ही मुझे यहां खड़े होने का संबल दे रहा है.

आदरणीय श्री खांडेकरजी, आप इतना कष्ट उठाकर यहां पधारे हैं और यात्रा तथा प्रवास के अनुकूल आपका स्वास्थ्य नहीं है, यह हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं. स्वास्थ्य की लगातार असमर्थता और परिस्थितियों की सतत प्रतिकूलता में भी आपने विविध शैलियों और शिल्पों में इतना विपुल साहित्य रचा है यह हम सबके लिए आश्चर्य का विषय रहा है. लोक-जीवन के प्रवाह के साथ संयुक्त रह कर आपने साहित्य को दिशा दी है. पुरस्कृत कृति 'ययाति' की पौराणिक कथा में आपने भारतीय साहित्य के मूल उद्देश्य अर्थात् जीवन की सात्विक साधना को, इस प्रकार गुंफित किया है कि आज का मानव उसमें अपने जीवन और अपने युग के विरोधों की झांकी पाता है, और पाता है त्रस्त आकुलता से मुक्ति का उपाय. आपका और आपके कृतित्व का हार्दिक अभिनंदन.

महामना महादेवीजी, आपने हिंदी साहित्य के माध्यम से भारतीय काव्य को जो प्राण-प्रतिष्ठा दी है, वह साहित्य के इतिहास में सदा अमर रहेगी. आपके पात्र-चित्रों की जीवंतता ने और आपके निबंधों में चिंतन की सहज स्फूर्ति ने देश-विदेश के पाठकों के मन में भारतीय प्रतिभा की दीपशिखा प्रज्वलित की है. आप हमारा हार्दिक अभिनंदन स्वीकार करें.

यह हमारा विशेष सौभाग्य है कि पुरस्कार समर्पित करने के लिए आप यहां पधारी हैं. एक ओर सुदूर महाराष्ट्र के शिरोडा के सागर-तट के दृश्य-विस्तार ने श्री खांडेकर को साहित्य रचना की प्रेरणा दी, तो दूसरी ओर त्रिवेणी की पावन धारा के प्रवाह ने महादेवीजी की प्रतिभा को नित नूतन उन्मेष दिया. आज वाग्देवी-सरस्वती के चरणों पर आप दोनों की उपस्थिति से जो संयुक्त जलधारा चढ़ायी जा रही है, अभिषेक का वह चरणामृत हम सबको सदा प्रमुदित और पावन करेगा.

ज्ञानपीठ पुरस्कार का यह दसवां वर्ष है. इस पहले दशक की पूर्ति पर ज्ञानपीठ को गौरव की अनुभूति की अपेक्षा, एक विशेष विनम्रता और कृतज्ञता का भाव प्रभावित कर रहा है. इन दस वर्षों में हमारे राष्ट्र के लगभग बीस मनीषियों ने प्रवर परिषद् को अपने अनुभव और मार्गदर्शन का लाभ दिया. पुरस्कार निर्णय की प्रक्रिया में दो सौ से अधिक साहित्यकारों-समीक्षकों ने पूरी निष्ठा और दायित्व भावना से सहयोग दिया. सहस्रों विद्वानों और साहित्य-प्रेमी पाठकों ने प्रस्ताव पत्र भेजकर हमें उत्साहित किया. सबसे बड़ी बात यह है कि समूचे राष्ट्र ने इस पुरस्कार की प्रामाणिकता, निष्पक्षता और सार्थकता को मान दिया. देशरत्न राजेंद्र बाबू तो प्रवर परिषद् के पहले अध्यक्ष ही थे, डॉ. राधाकृष्णन ने प्रवर परिषद् के गठन में सक्रिय रुचि ली, श्री वराहगिरि वेंकटगिरि ने पुरस्कार समारोहों की दो बार अध्यक्षता की, प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा ने इसी समारोह-मंच से श्री फ़िराक़ गोरखपुरी को पुरस्कार भेंट किया और ज्ञानपीठ के कार्यों का अभिनंदन करके हमें प्रोत्साहन दिया. पुरस्कार के दस वर्षों के संदर्भ में इन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरा कर्त्तव्य है.

मैं जानता हूं, यहां पधारकर इस उत्सव की शोभा को बढ़ाने वाले आप सब बहिनों और भाइयों के मन आत्मीय भावनाओं से पूरित हैं. भारतीय साहित्य के विविध रूप, देश की जिस मूलभूत सांस्कृतिक एकता को रेखांकित करते हैं, आप सब उसी के प्रतिनिधि हैं. आप सबका कृतज्ञतापूर्ण स्वागत.

प्रणाम!

26 फरवरी, 1976

ज्ञानपीठ के वर्तमान अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जैन का पुरस्कार समारोह के अवसर पर पहला स्वागत भाषण

ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए इस वर्ष यह विशेष गौरव की बात है कि पुरस्कार पहली बार एक महिला कृतिकार को समर्पित हो रहा है. श्रीमती आशापूर्णा देवी का स्थान बंगाल में, बांग्ला साहित्य में, बहुत पहले से ऊंचा है. वे प्रतिष्ठित और पुरस्कृत हो चुकी हैं. उनकी अनेक वर्षों की साहित्य साधना आज समस्त राष्ट्र की साहित्यिक-निधि के रूप में सम्मानित हो रही है, इससे ज्ञानपीठ पुरस्कार के उद्देश्यों की पूर्ति में वृद्धि हुई है

भारतीय पत्नी के लिए जीवन की जो सबसे अधिक संतापमयी दुर्घटना हो सकती है, उसके विषाद की छाया में भी श्रीमती आशापूर्णा देवीजी ने यहां पधारने का कष्ट उठाया है. यह हमारे अनुरोध की ही मानरक्षा है.

वास्तव में पुरस्कार प्राप्त कृति 'प्रथम प्रतिश्रुति' की कथा और भाव के अनुरूप आपने अपने को संतुलित करके इस कर्त्तव्य को निभाया है. भारतीय ज्ञानपीठ परिवार आपका कृतज्ञ है और आपके प्रति समवेदना प्रगट करता है.

यह भारतीय ज्ञानपीठ के लिए बहुत ही संतापपूर्ण अवसर है कि भाई शांतिप्रसाद, संस्थापक और रमाजी, अध्यक्षा, भारतीय ज्ञानपीठ हमारे बीच नहीं रहे हैं. यद्यपि उत्सव का आयोजन ठीक उसी प्रकार हो रहा है जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके मार्गदर्शन में उनके मानदंडों के अनुरूप होता रहा है, किंतु उनके न होने से जो सूनापन हृदय में टीस उत्पन्न कर रहा है उसको व्यक्त करने की क्षमता में अपने में नहीं पा रहा हूं. हमारे दुःख को सहस्रों भाई-बहनों ने आत्मीयता के साथ बंटाया है. आप सबकी सहानुभूति और सहयोग हमारा संबल है, उसी के सहारे आगे बढ़ने का साहस हमें प्राप्त हुआ है.

सभी भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों, समीक्षकों और सुधी पाठकों का बहुत बड़ा समुदाय, पुरस्कार निर्णय की प्रक्रिया में, प्रवर परिषद् को सहायक होता है. यह समुदाय भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की महत्ता और शक्ति का स्रोत है.

इस पुरस्कार ने एक ओर जहां भारतीय भाषाओं को एक संगम-स्थली दी है, वहां साहित्यकारों के बीच एक ऐसे सेतु का निर्माण किया है, जो एक दूसरे को आंतरिक परिचय की भूमिका पर जोड़ता है. पुरस्कार ने हमारी इस प्रतीति को साकार किया है कि भाषा और क्षेत्र के व्यवधान की धारा के नीचे सांस्कृतिक ...क मूलधारा सारे देश में समान रूप से प्रवाहित है. यह हमारे राष्ट्रीय समन्वय का दर्पण है.

सम्माननीय राष्ट्रपतिजी, आपके प्रति हम पुनः कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं.

श्रीमती आशापूर्णा देवीजी, आपका हार्दिक अभिनंदन!

प्रतिवर्ष पुरस्कार समारोह में पधारकर आप सब सहयोगी हमारे उत्साह का संवर्द्धन करते हैं—आप सबका स्वागत, अभिनंदन!

धन्यवाद! | **26 अप्रैल, 1978**

ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवर्तिका श्रीमती रमारानी जैन के देहावसान पर भारतीय ज्ञानपीठ ट्रस्ट की बैठक में पारित शोक-प्रस्ताव

भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासधारी मंडल की यह बैठक ज्ञानपीठ की अध्यक्षा श्रीमती रमा जैन के आकस्मिक निधन पर गहरे दुःख और संताप की भावना व्यक्त करती है. भारतीय ज्ञानपीठ न्यास के स्थापना के दिन से ही श्रीमती रमा जैन ने न्यास मंडल की तथा भारतीय ज्ञानपीठ की सांस्कृतिक-साहित्यिक प्रवृत्तियों की अध्यक्षता का दायित्व वहन किया. उनका नेतृत्व और सक्रिय दायित्व-निर्वाह भारतीय ज्ञानपीठ के लिए वरदान सिद्ध हुआ. यह उनकी एकांत निष्ठा, दूरदर्शिता और कार्यदक्षता का ही परिणाम है कि ज्ञानपीठ ने देश के सांस्कृतिक-साहित्यिक क्षेत्र में यश उपार्जित किया और समस्त भारतीय साहित्यों में से प्रतिवर्ष एक कृति को राष्ट्र के उच्चतम सृजनात्मक मानदंडों के अनुरूप एक लाख रुपये के पुरस्कार से सम्मानित करने का असंभव-सा दिखने वाला कार्य सफलता के साथ संपन्न किया. श्रीमती रमा जैन के निधन पर देश के कोने-कोने से परिचितों-अपरिचितों की जो सहस्राधिक शोक-संवेदनाएं और श्रद्धांजलियां प्राप्त हुई हैं, वे इस तथ्य की द्योतक हैं कि श्रीमती रमा जैन के व्यक्तित्व और कृतित्व का कितना बड़ा मान राष्ट्र के मन में है.

न्यासधारी मंडल तो उनके अभाव में आज किंकर्तव्य-विमूढ़ता की स्थिति में अपने को पाता है. श्रीमती रमा जैन जिस सौजन्य और आत्मीयता के साथ मंडल के सदस्यों से व्यवहार करती थीं और ज्ञानपीठ की समस्याओं का जिस माधुर्यपूर्ण कुशलता के साथ समाधान करती थीं, वह दुर्लभ है. उनकी स्मृति चिरकाल तक हमारे मनों में वास करेगी. हम उनकी स्मृति के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं. □

ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शांतिप्रसाद जैन के देहावसान पर ज्ञानपीठ ट्रस्ट द्वारा पारित शोक-प्रस्ताव

भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासधारी मंडल की एक तात्कालिक बैठक 3 नवंबर, 1977 को पूर्वान्ह 10 बजे 6, सरदार पटेल मार्ग, नयी दिल्ली में संपन्न हुई. बैठक की अध्यक्षता ज्ञानपीठ ट्रस्टी पं. मौलिचंद्र शर्मा ने की. निम्नलिखित श्रद्धांजलि प्रस्ताव स्वीकृत हुआ.

भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासधारी मंडल की यह बैठक ज्ञानपीठ के संस्थापक एवं अध्यक्ष-ट्रस्टी श्री साहू शांतिप्रसाद जी के असामयिक निधन पर अत्यंत शोक और दुःख प्रगट करती है और इसे ज्ञानपीठ के इतिहास की अत्यंत मर्म-भेदिनी घटना मानती है. लगभग दो वर्ष पूर्व घटित श्रीमती रमा जैन के देहावसान के अपरिमित विषाद की छाया संतप्त मन को अभी भी अभिभूत किये हुए थी कि श्री साहूजी के वियोग ने ज्ञानपीठ परिवार के हृदय को गहरी व्यथा से आहत कर दिया है.

लगभग 34 वर्ष पूर्व, सन् 1943 में, ज्ञानपीठ की स्थापना के संकल्प की घोषणा के दिन से 27 अक्तूबर, 1977 तक जीवन पर्यंत श्री साहूजी ने संस्था के हित को एक मनप्राण से सींचा, सदा इसके कार्यक्षेत्र का विस्तार किया, इसे भारतीय दर्शन, धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, कला एवं शोध-विज्ञान की सेवा का समर्थ माध्यम बनाया और उपलब्धि के नये मानदंडों की स्थापना की.

मन, वचन, कर्म से अत्यंत श्रद्धावान् और धर्मनिष्ठ, श्री साहू जी भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे. तीर्थवंदना और जीर्णोद्धार के कार्य उन्हें संतोष और शांति प्रदान करते थे. भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना के मूल में उनके चित्त की यह प्रेरणा थी कि भारतीय विद्या की अमूल्य निधि का सर्वांगीण परिचय तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक भारतीय वाङमय के वह क्षेत्र उजागर नहीं हो जाते जो अन्वेषण और अध्ययन से वंचित रह गये हैं. यही कारण है कि ज्ञानपीठ के लिए जो कार्यक्रम उन्होंने बनाया उसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्राचीन वाङमय की शोध-खोज, संपादन और प्रकाशन पर बल दिया. साथ ही साथ समसामयिक हिंदी लेखन और पत्रकारिता के प्रयत्नों को प्रोत्साहित करके उन्होंने नयी प्रतिभाओं के उदय को प्रश्रय दिया.

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार का प्रवर्तन उनकी विशाल राष्ट्रीय दृष्टि का द्योतक है. इस पुरस्कार के द्वारा उन्होंने समस्त भारतीय लेखन की श्रेष्ठ उपलब्धि को देश-विदेश की चेतना में स्थापित किया, उसे सम्मानित किया. इसका फल यह हुआ कि भारतीय साहित्य अपनी क्षेत्रीय सीमाओं को लांघकर अखिल भारतीय स्तर पर देश की सांस्कृतिक एकता का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब बना है. भारतीय उद्योग और व्यवसाय के विस्तार में उनकी प्रतिभा को जितना स्वागत मिला है, उससे भी अधिक उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों, सामाजिक सेवाओं और बहुमुखी प्रतिभा के प्रस्फुरण को मिल रहा है.

ज्ञानपीठ के न्यासधारी मंडल को उनके कृतित्व पर गर्व है और वह इसे अपना सौभाग्य मानता है कि उनके सहयोगी होने का गौरव उसे प्राप्त हुआ. श्री साहूजी के व्यक्तित्व की सरलता, मृदुता, उदारता और आत्मीयता ने हम सबके हृदय में अमिट छाप छोड़ी है. उनके अभाव से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति असंभव है.

हम श्री साहूजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके परिवार, स्वजनों और परिजनों के प्रति अंतरंग समवेदना व्यक्त करते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

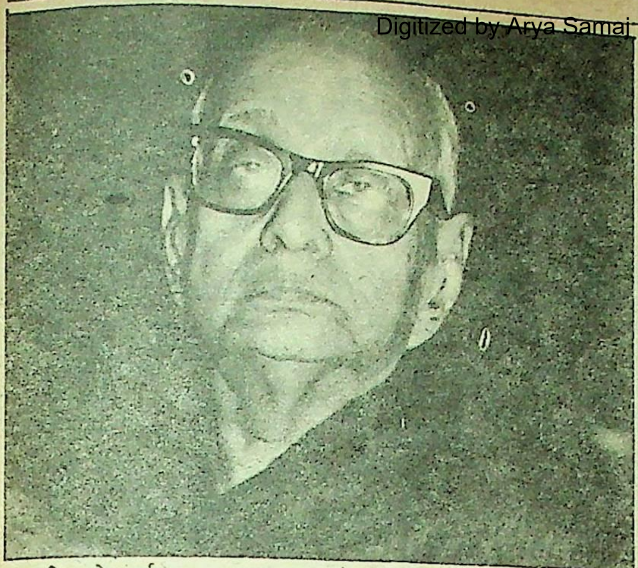

ज्ञानपीठ के वर्तमान अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जैन

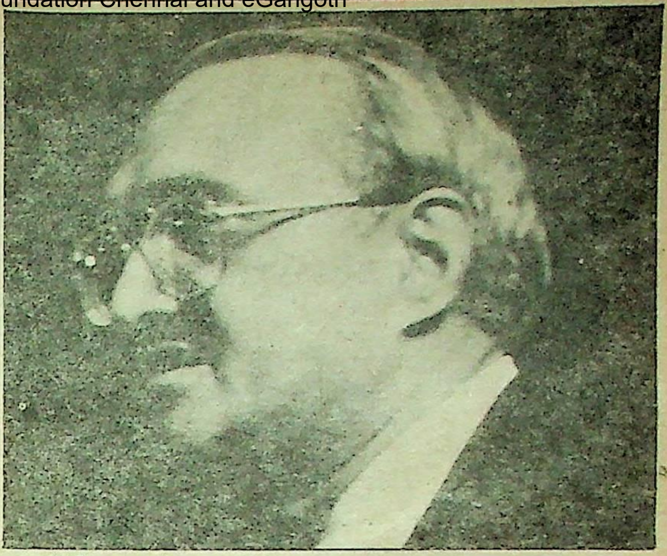

मैनेजिंग ट्रस्टी साहू अशोक कुमार जैन

श्री अशोक कुमार जैन, मैनेजिंग ट्रस्टी, भारतीय ज्ञानपीठ, का बीसवें पुरस्कार के अवसर पर धन्यवाद भाषण.

साहित्य जगत के प्रकाशपुंज श्री पिल्लै, आदरणीय अतिथि, कवि-शिरोमणि श्री पॉज़, प्रवर परिषद के मान्य अध्यक्ष श्री नरसिंहराव, परिषद-सदस्य, एवं देवियो और सज्जनो,

आप सब प्रबुद्ध और विशिष्ट महानुभाव यहां पधारे हैं. आप सबके प्रति आभार व्यक्त करना मेरा अत्यंत सुखद कर्तव्य है. यह तो ऐसा ही है जैसे सुरभित फूलों के गुलदस्ते भेंट किये जा रहे हों— देनेवाले को आह्लाद और पानेवाले का मन प्रसन्न.

मैं बोलने खड़ा हुआ हूं तो एक अजीब दुविधा मन में व्याप्त है पहले किसका उल्लेख करूं— उनका जिनकी साहित्यिक उपलब्धि का हम अभिनंदन कर रहे हैं, पुरस्कार विजेता श्री तकषी शिवशंकर पिल्लै, या उनका जो हमारे मुख्य अतिथि हैं-विश्व विश्रुत श्री ऑक्टोवियो पॉज़—दोनों ही सरस्वती-पुत्र हैं. इसलिए दोनों ही भाई-भाई हैं. इस बात को श्री पॉज़ ने अपने भाषण में बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है.

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां ऐसे दो साहित्यिक महारथी उपस्थित हैं जिनके देश दूर-दूर हैं, जिनकी भाषाएं अलग-अलग हैं किंतु जो हमें इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव करा रहे हैं कि 'विविधा में एकता' एक वास्तविक तथ्य है. इन दोनों की भावनाएं एक हैं, मनुष्य के भविष्य के प्रति दोनों की चिंता एक हैं, निर्बलों और नीचे के वर्ग के लोगों की दशा के प्रति दोनों के मन की आकुलता एक प्रकार की है, दोनों अपनी संस्कृति की जड़ों से जीवन का पोषण प्राप्त करते हैं—दोनों उस सत्य का साकार रूप हैं जिसे हमारे ऋषियों ने अनुभव किया था और अभिव्यक्त किया था—वसुधैव कुटुंबकम्—सारा संसार एक कुटुंब है.

हमने जैसा यहां सुना, श्री तकषी के साहित्य ने जीवन की कठोर वास्तविकता को समझने और पहचानने के लिए हमारे सामने नये गवाक्ष खोले हैं. उनके माध्यम से हमने जीवन के संघर्षों और त्रासदियों से साक्षात्कार किया है, किंतु यह भी सीखा है कि मनुष्य के उदार विचार और सात्विक प्रवृत्तियां उसे सब प्रकार के दुःखों और हीनता से मुक्त कर देते हैं. इन उदात्त विचारों से आत्मा पवित्र होती है. हम श्री तकषी के आभारी हैं कि उन्होंने आज के उत्सव के केंद्र में विराजमान होने का हमारा निमंत्रण स्वीकार किया.

मुख्य अतिथि के रूप में श्री पॉज़ की उपस्थिति ने आज ज्ञानपीठ समारोह को एक नयी गरिमा से मंडित किया है. समुद्रपार की इस मूर्धन्य प्रतिभा ने भारत के अपने एक लेखक बंधु का अत्यंत ओजस्वी शब्दों में अभिनंदन किया है. हमारे देश के लेखकों को इस बात से सदा प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी.

श्री पॉज़ ने हमारे इतिहास को, हमारी संस्कृति को बहुत गहरी दृष्टि से समझा है. उनसे बातें करके और उनके व्याख्यानों को सुनकर मेरी आस्था अनेकांत दर्शन के सिद्धांत में अधिक गहरी हुई है. उन्होंने एक 'सभ्य राजनीतिज्ञ' की परिभाषा इस प्रकार की है : वह व्यक्ति जो अपने सुचिंतित मत का परित्याग किये बिना इस मान्यता को स्वीकार करता है कि सारे दृष्टिकोण सापेक्ष हैं. इसी को हम 'स्याद्वाद' कहते हैं जो जीवन के सभी क्षेत्रों के लिए खरा है.

मित्रो, हमें इस बात का हर्ष है कि श्रीमती तकषी इस समारोह में पधारी हैं. वह एक भारतीय आदर्श पत्नी और आदर्श माता की प्रतिमूर्ति हैं. आदर्शों के प्रति अपनी एकांत-निष्ठा के कारण ही उन्होंने अपने परिवार की नाव को संघर्षों के ज्वार में से सुरक्षित निकाला है. विशेष बात यह कि अपने पचपन वर्षों के विवाहित जीवन में उन्होंने अपने पति की सर्जनात्मक प्रतिभा को फलांफूला रखा है और, सृजनशील लेखक कितने मनमौजी और निर्बंध होते हैं, यह हम सब जानते हैं. ऐसी महान नारी का हम अभिनंदन करते हैं. मैं ऋचा से अनुरोध करता हूं कि वह श्रीमती तकषी को हमारी आदर-भावना का प्रतीक फूलों का गुलदस्ता भेंट करें.

समान रूप से प्रसन्नता और गौरव की बात यह भी है कि हमें श्रीमती पॉज़ ने अपनी उपस्थिति से कृतज्ञ किया है. अपने कवि पति की सृजनशील प्रतिभा के पुष्पित और फलित होने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान उन्हीं का है. हमारे आदर और अभिनंदन की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें श्रीमती इन्दु जैन? गुलदस्ता भेंट कर रही हैं

भारतीय ज्ञानपीठ का पुरस्कार समारोह सदा ही एक स्मरणीय और आनंददायक अवसर बन जाता है. यह इसलिए कि इसे प्रबुद्ध साहित्यकार, कलाविद्, संस्कृति संपोषक, जन विशिष्ट नागरिक और ज्ञानपीठ के हितैषी इसे अपना आयोजन मानकर इसमें सम्मिलित होते हैं. आप सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूं □

14 नवंबर, 1985

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाग्देवी के मंदिर के ये चिरंतन दीपाधार

1. गो. शंकर कुरुप
(1901-1978)

1920-58 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'ओडक्कुषल' (कविता-मलयालम) के लिए वर्ष 1965 के पुरस्कार-विजेता.

2. ताराशंकर वंद्योपाध्याय
(1898-1971)

1925-59 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'गणदेवता' (उपन्यास-बांग्ला) के लिए वर्ष 1966 के पुरस्कार-विजेता

3. कु.वें. पुट्टप्पा
(1904)

1935-60 की दो सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से 'रामायण दर्शनम्' (कविता-कन्नड़) के लिए 1967 के पुरस्कार के सह-विजेता.

4. उमाशंकर जोशी
(1911)

1935-60 की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से 'निशीथ' (कविता-गुजराती) के लिए 1967 के पुरस्कार के सह-विजेता.

5. सुमित्रानंदन पंत
(1900-1977)

1945-1961 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'चिदंबरा' (कविता-हिंदी) के लिए वर्ष 1968 के पुरस्कार-विजेता

6. फिराक गोरखपुरी
(1896-1983)

1950-62 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'गुलेनग्मा' (नग्में, गजलें और रुबाइयां-उर्दू) के लिए 1969 के पुरस्कार-विजेता

7. विश्वनाथ सत्यनारायण
(1893-1976)

1955-63 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'रामायण-कल्पवृक्षमु' (कविता-तेलगु) के लिए वर्ष 1970 के पुरस्कार-विजेता.

8. बिष्णु दे
(1909-1983)

1960-64 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'स्मृति सत्ता भविष्यत्' (कविता-बांग्ला) के लिए 1971 के पुरस्कार-विजेता.

9. रामधारी सिंह 'दिनकर'
(1908-1974)

1961-65 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'उर्वशी' (कविता-हिंदी) के लिए 1972 के पुरस्कार- विजेता.

10. द.रा. बेंद्रे
(1896-1983)

1962-66 की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से 'नाकु तंति' (कविता-कन्नड़) के लिए 1973 के पुरस्कार के सह-विजेता.

11. गोपीनाथ महांती
(1914)

1962-66 की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से 'माटी मटाल' (उपन्यास-उड़िया) के लिए 1973 के पुरस्कार के सह-विजेता.

12. वि.स. खांडेकर
(1898-1976)

195[illegible]-1967 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'ययाति' (उपन्यास-मराठी) के लिए 1974 के पुरस्कार-विजेता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ साहित्य पुरस्कार विजेताओं की दिग्दर्शिका

13. प.वै. अखिलंदम्
(1923-1988)

1959-68 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'चित्तिरप्पवै' (उपन्यास-तमिल) के लिए 1975 के पुरस्कार-विजेता.

14. आशापूर्णा देवी
(1909)

1960-69 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'प्रथम प्रतिश्रुति' (उपन्यास-बांग्ला) के लिए 1976 की पुरस्कार-विजेत्री.

15. शिवराम कारंत
(1902)

1961-70 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'मूकज्जिय कनसुगलु' (उपन्यास-कन्नड़) के लिए 1977 के पुरस्कार-विजेता.

16. स.ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय'
(1911-1987)

1962-71 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'कितनी नावों में कितनी बार' (कविता-हिंदी) के लिए 1978 के पुरस्कार-विजेता.

17. वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य
(1924)

1963-72 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'मृत्युंजय' (उपन्यास-असमिया) के लिए 1979 के पुरस्कार-विजेता.

18. शं. कु. पोट्टेक्काट
(1913-1982)

1964-73 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'ओरु-देशंतिते कथा' (उपन्यास-मलयालम) के लिए 1980 के पुरस्कार-विजेता.

19. अमृता प्रीतम
(1919)

1965-74 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'कागज ते केनवस' (कविता-पंजाबी) के लिए 1981 की पुरस्कार-विजेत्री.

20. महादेवी वर्मा
(1907-1987)

भारतीय भाषाओं के सर्जनात्मक साहित्य में 'यामा' और 'दीपशिखा' जैसी कृतियों (हिंदी) के सृजन के लिए वर्ष 1982 के पुरस्कार की विजेत्री.

21. मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार
(1891-1986)

भारतीय भाषाओं के सर्जनात्मक साहित्य में 'चिक्कवीर राजेंद्र' जैसी कृतियों (कन्नड़) के सृजन के लिए वर्ष 1983 के पुरस्कार विजेता.

22. तकषी शिवशंकर पिल्लै
(1912)

भारतीय साहित्य को 'रंटिटंउषी', 'बाढ़ में' जैसी कृतियों (मलयालम) के रूप में अमूल्य योगदान के लिए 1984 के पुरस्कार विजेता.

23. पन्नालाल पटेल
(1912)

'मानवीनी भवाई' और 'पार्थने कहो चढ़ावे बाण' जैसी कृतियों (गुजराती) के रूप में अमूल्य योगदान के लिए 1985 के पुरस्कार विजेता.

24. सच्चिदानंद राउतराय
(1916)

भारतीय साहित्य को 'पाथेर', 'पांडुलिपि', 'कविता: 1962' जैसी कृतियों (उड़िया) के रूप में अमूल्य योगदान के लिए 1986 के पुरस्कार विजेता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत साहित्यिक कृतियों का दृश्य, काव्य मंचीय रूपांतर और... प्रस्तुति

विकट चुनौतियां : प्रयोग के साथी

कुंथा जैन

यह मान्य तथ्य है कि मनुष्य की सर्जनात्मक प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट उपादान साहित्य रचना है और यह भी कि सृजन प्रतिभा के साहित्येतर उपादान-संगीत, नृत्य, अभिनय व चित्र कला आदि साहित्य से मुख्य प्रेरणा पाकर रूपायित होते हैं.

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा साहित्य सेवा के अन्य माध्यमों में, प्रतिवर्ष एक लाख (जो अब डेढ़ लाख है) रुपये के पुरस्कार से, भारतीय भाषा की श्रेष्ठतम रचना को सम्मानित करना, विशेष महत्वपूर्ण है. इस पुरस्कार की पृष्ठभूमि में अनेक भावनाओं का सम्मिलित योग है. भारत की समस्त भाषाओं में रचा साहित्य उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक फैले भारत के अनेक भाषा-भाषी, लेखन-शिल्प के विविध क्षेत्रों में पारंगत साहित्य सर्जकों के प्रयास का फल है. इस प्रकार इनमें श्रेष्ठतम रचनाकारों को देशव्यापी सम्मान मिले और उनकी कृतियों में प्रतिबिंबित भारतीय संस्कृति की संश्लिष्ट छवि के दर्शन हों. पुरस्कार के उद्देश्य के ये आयाम ज्यों-ज्यों पुरस्कार पुजारी की ओर बढ़ता गया, स्पष्ट होते गये. इसने पुरस्कार को अद्वितीयता दी. इस प्रकार जो साहित्य पुरस्कृत हुआ, उसकी मोटी-मोटी जानकारी, लेखक का, भाषा का, कृति का नाम-धाम तो परिचय में आया, किंतु ज्ञानपीठ की एक बड़ी आकांक्षा यह रही कि जिस कृति को, वह जिस भी भाषा की हो और किसी भी विधा में, पुरस्कार दिया गया है, उस कृति का परिचय इस प्रकार के सरल और रोचक माध्यम से प्रस्तुत किया जाये कि पुरस्कार समारोह में भाग लेने वाले विभिन्न क्षेत्रों के, विभिन्न विषयों से संबंधित दर्शक कृति के अंतरंग की झांकी पा सकें. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये संगीत, नृत्य, अभिनय, चित्र-छाया आदि कला-विधाओं द्वारा कृति का संक्षिप्तीकरण दृश्य व काव्य प्रस्तुति द्वारा आयोजित करने का निश्चय हुआ. जिस प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ का साहित्यिक पुरस्कार—उसी प्रकार इस संदर्भ में स्वर्गीय रमा बहिन का व्यक्तिगत क्रियाशील उत्तरदायित्व लेने का साहस और उत्साह, पुरस्कार समारोह के इस आयाम को सफल बनाने में अनिवार्य रहे हैं.

ज्ञानपीठ का प्रथम पुरस्कार समारोह 19 नवंबर, 1966को राजधानी के विज्ञान भवन में आयोजित हुआ. पुरस्कार विजेता थे महाकवि शंकर कुरुप, जिनकी मलयालम में लिखी कविताओं का संग्रह 'ओडक्कुषल' सम्मानित हुआ. इस अवसर पर हिंदी साहित्य जगत के सर्व मान्य दो कवि श्री हरिवंशराय बच्चन एवं रामधारी सिंह दिनकर द्वारा शंकर कुरुप की दो कविताओं—'निमिष' और 'सागर संगम' का हिंदी में पाठ हुआ. नाटक क्षेत्र के नामी श्री ई. अल्काजी ने कवि कुरुप की एक कविता का अंग्रेजी में प्रभावशाली वाचन किया. संयोग से उन दिनों प्रसिद्ध नर्तकी यामिनी कृष्णमूर्ति (जो उस समय दिल्ली में नहीं रहती थीं) अपने किसी अन्य कार्यक्रम के संबंध में दिल्ली आयी हुई थीं. अत्यंत संकोच से उनसे प्रस्ताव किया कि क्या वह कवि की किसी कविता के भाव को नृत्य द्वारा प्रस्तुत करेंगी? समय बहुत कम था और वे कैसे तैयारी करेंगी? पर एक महाकवि की कविता पर नृत्य करने का अवसर पा वह विभोर हो उठीं. उन्होंने स्वीकृति दे दी. तब कवि की कविताओं 'सागर-गीत' और 'विश्व-हृदय' की कुछ पंक्तियों को संस्कृत श्लोक में इस प्रकार ढालकर यामिनी कृष्णमूर्ति को दिया गया कि वे उनकी 'शिव-तांडव' नृत्य रचना के छंद और ताल में बद्ध हो सकें और कविता के भावों को अभिव्यक्ति दे सकें. यामिनी न केवल नृत्य में पारंगत हैं, बल्कि कविता भी लिखती हैं, यह बाद में पता चला. जिस हार्दिकता और गौरवशीलता की अनुभूति से उन्होंने नृत्य द्वारा कविता को सार्थकता दी, वह स्मरणीय है.

दूसरा पुरस्कार 15 दिसंबर, 1967 को बांग्ला के गणमान्य लेखक ताराशंकर बंद्योपाध्याय को मावलंकर हाल, नयी दिल्ली में समर्पित हुआ. पुरस्कृत कृति 'गणदेवता' एक महत्तर उपन्यास है. 625 पृष्ठ और साठ पात्रों के इस उपन्यास का संक्षिप्त नाट्य रूपांतर यदि हिंदी में मंचित किया जा सके तो दर्शकों को बंगला साहित्य की इस अनुपम कृति की श्रेष्ठता की एक झांकी मिलेगी और सन् 1924 के आसपास का ग्रामीण बंगाल भी उनकी नजरों के सामने गुजरेगा.

उन्हीं दिनों दिल्ली की नाट्य संस्था 'दिशांतर' ओम शिवपुरी, मोहन महर्षि, सुधा शर्मा (बाद में शिवपुरी), रामगोपाल बजाज व अन्य कई अभिनय क्षेत्र में उभरती प्रतिभाओं के प्रयत्न से क्रियाशील थी. भारतीय ज्ञानपीठ का कार्यालय कलकत्ते में था और बंगला उपन्यास के नाट्य रूपांतर की प्रस्तुति में, बंगला के ख्याति प्राप्त श्री शंभू मित्र व उनकी पत्नी तृप्ति मित्र का सहयोग प्राप्त था. दिल्ली और कलकत्ते के दो छोरों को जोड़कर पूरी लगन से नाटक प्रस्तुति का प्रयत्न करना अपेक्षित था. श्रीमती रमा जैन और साहू शांतिप्रसाद जैन की व्यक्तिगत रुचि और उदारता इस प्रयत्न को सुकारथ कराने में सफल हुई. कलकत्ते का 9 अलीपुर पार्क प्लेस नाट्य रूपांतर की चर्चा का और दिल्ली में टाइम्स आफ इंडिया का हाल नाटक की रिहर्सल के स्थली बने.

तीसरा पुरस्कार समारोह 20 दिसंबर, 1968 को दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित हुआ. इस पुरस्कार के विजेता दो कवि थे : डा. के.वी. पुट्टप्पा और श्री उमाशंकर जोशी.

इस समारोह में दो विद्वत जन पुरस्कृत हुये, इसलिये दोनों कृतियों का मंचीय रूपांतरण प्रेषित होना था. एक कार्यक्रम से दूसरे कार्यक्रम का अधिक अंतराल वांछित नहीं था, अतः मंच संयोजन इस प्रकार का करना आवश्यक था जो मुख्य पुरस्कार समारोह, 'निशीथ' की प्रस्तुति और पुट्टप्पा की कृति 'रामायण दर्शनम्' के अंशों की प्रस्तुति, तीनों की पृष्ठभूमि में उपयुक्त रहे. इस कठिन कार्य को साधने में शांता गांधी का मंचीय अनुभव सार्थक रहा. उन्होंने बांसों का बना विचित्र आकृतियों का एक ढांचा समारोह से पहले ही मंच पर खड़ा कर दिया जो अपनी आकृति, सज्जा और रंग रचना के आधार पर, तीनों अवसरों की पृष्ठभूमि को अनूठी भाव-प्रखरता देता रहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदेवता के मंचन की तैयारी

निशीथ की नृत्य-प्रस्तुति

चिदंबरा : आत्मिका की नृत्य प्रस्तुति

चौथा पुरस्कार, महाकवि सुमित्रा नंदन पंत की कृति 'चिदंबरा' को समर्पित हो गौरवान्वित हुआ. 'चिदंबरा' पंतजी के कुछ लंबे काव्य-रूपकों को छोड़, उनकी समस्त कविताओं का संकलित प्रकाशन है. पंतजी की कविताओं का माधुर्य, संगीत और नृत्य के छंदो-बंदों में अभिव्यक्त होने की स्वतः प्रेरणा देता है. अतः कविताओं का मंचीय प्रेषण नृत्य और संगीत द्वारा हो, यह तो स्वाभाविक ही था. कविताओं को मनायोग से पढ़ने से जो तथ्य उभरा, वह यह भी कि ये कविताएं कवि की मानसिक यात्रा के चरणचिन्ह हैं. कवि की कल्पना, संवेदना जो उत्तरोत्तर विस्तृत क्षेत्रों और विश्वव्यापी यथार्थों से जुड़कर आध्यात्मिकता के शिखर छूने लगी. वह कविताओं की विविधता मुखरित है. कविताओं में कवि व्यक्तित्व का क्रमशः विकास प्रतिबिंबित होता दृष्टिगोचर हुआ. इस अनुभूति के आधार पर चिदंबरा की कविता का चयन कर उन्हें एक सूत्र में पिरोकर नृत्य रूपक का आकार दिया. नृत्य रूपक का आलेख पंतजी को दिखाया तो उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी कि अपनी जिस अंतर्यात्रा को उन्होंने अपनी लंबी कविता 'आत्मिका' (संस्मरण और जीवन दर्शन) में अभिव्यक्त किया है उसके पदचिन्हों को अंकित करती हुयी कवितायें उचित प्रासंगिक दृष्टि से चयन होकर, नृत्य रूपक की प्रस्तुति श्रीमती अमला शंकर के उदय शंकर कल्चर सेंटर द्वारा हुई. सर्जनात्मक नृत्य रचना के क्षेत्र में भी उदयशंकर अद्वितीय रूप से प्रतिष्ठित हैं. उदयशंकर और अमलाशंकर की रचना कल्पना चलचित्र में पंतजी उनके सहयोगी रहे थे.

कवि के रूप में. एक दूसरे की कला के प्रशंसक और परस्पर मित्र रहे थे. अतः पंत जी की कविताओं पर आधारित नृत्य रूपक की प्रस्तुति का उत्तरदायित्व अमला दी ने सहर्ष स्वीकार किया. साहित्यिक कृति की गरिमा को श्रीमती अमला शंकर ने जिस कलापूर्ण सौंदर्य और शोभायित रूप से नृत्य रूपक प्रस्तुत किया, वह दर्शनीय था. कविताओं का विविध धुनों में गायन, वाद्य संगीत योजना संयोजन, नृत्य रचना, परिधान और मंच सज्जा आदि का परिपूर्ण सफल संयोजन इस प्रस्तुति में समाविष्ट था.

प्रस्तुति के अन्य श्रेय में सम्मिलित हैं श्री रोबिनन दास, जिन्होंने संगीत निर्देशन किया. और उनके अन्य सहयोगी वाद्यवृंद. आलेख का श्रेय श्रीमती कुंथा जैन को है. नृत्य कलाकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं—ममता शंकर, तनुश्री शंकर, चंपक बागला, विशाखा गुप्ता राय, अनुपमा दास, अनुराधा फतहपुरिया और मधु छंदा, जिन्होंने नृत्य कला के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बनाया है.

29 नवंबर, 1970 की संध्या है. विज्ञान भवन का हाल दर्शकों से खचाखच भरा है. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी 'फिराक साहब' को पुरस्कार समर्पित करेंगी.

'फिराक' और 'शायरी' दोनों नाम रोमांचक हैं, और एक मिश्रित प्रकार का रस संचार करते हैं. सीधी-सीधी जीष्ट या नाट्य-प्रस्तुति से रस को दर्शन तक पहुंचा पायेगी क्या? विधि प्रेषण माध्यमों को फिराक और उनकी शायरी को 'रूपक' के सांचे में ढाला...रूपक के प्रेषण में कैमरे से लिये फिराक साहब के चित्र अन्य स्लाइडों का प्रोजेक्शन फिराक साहब की अपनी आवाज में कहे गये कुछ शेर व कविताओं का प्रसारण, उनके छायाचित्र के साथ कुछ कविताओं को अभिव्यक्त करते हुये पात्रों का मंच पर अभिनय, पार्श्व संगीत एवं प्रसिद्ध नर्तकी सोनल मानसिंह का नृत्याभिनय-रूपक के निर्देशक थे सुपरिचित मोहन महर्षि. कविताओं का चुनाव व आलेख-मोहन महर्षि और कुंथा जैन द्वारा हुआ. फोटोग्राफी एवं स्लाइडों का भार लिया इस क्षेत्र के प्रसिद्ध नाम रघुराय ने. प्रस्तुति में सहयोगी रहे श्रीमती शांता गांधी, गुरु केलुचरण, हफीज अहमद खां और अंजलि बनर्जी जैसे कला गुरु और संगीतज्ञ.

एक अविस्मरणीय कवि सम्मेलन

उन्नीस दिसंबर, 1969 को महाकवि सुमित्रानंदन पंत को पुरस्कार समर्पित करने के उपरांत जो कविसम्मेलन आयोजित किया गया उसमें भाग लेने वाले कवि थे : सर्वश्री सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भारत भूषण, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, सुरेंद्र तिवारी, रामदरश मिश्र, बालस्वरूप राही, गिरिजा कुमार माथुर, इंदु जैन, प्रयाग शुक्ल, रामानंद, शकुंत माथुर, प्रभाकर माचवे.

एक यादगार मुशायरा

शायरे आजम फिराक गोरखपुरी को 27 नवंबर, 1970 को जब पुरस्कार दिया गया, उसी अवसर पर गजल-गो शायरों का एक मुशायरा आयोजित किया गया. इन शायरों ने उसमें भाग लिया :

सर्वश्री फिराक गोरखपुरी, जोशमल्सियानी, अर्श मल्सियानी, कलीम अजीज, रिफत सरोश, जज्बी, शमीम फरहानी, ताबां, रविश सिद्धीकी, जगन्नाथ आजाद, शम्स तमकनत, सागर निजामी, जाकिया सुल्तान, मुमताज मिरजा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठा पुरस्कार समारोह 16 नवंबर, 71 को विज्ञान भवन में वरद् मनीषी कवि-सम्राट डा. विश्वनाथ सत्यनारायण को उनके तेलुगु भाषा में लिखित महाकाव्य 'रामायण कल्पवृक्षम्' के अभिनंदनार्थ आयोजित हुआ.

मंच प्रस्तुति के लिये रामायण कल्पवृक्षम् के मारीचिकांड पर आधारित बैले के रूप में वह प्रसंग प्रस्तुत किया गया जहां पंचवटी में कुटिया बनाकर रहते राम-सीता युगल और लक्ष्मण को रावण की युक्ति द्वारा सीता हरण की स्थिति का सामना करना पड़ा था.....रामायण की कथा का यह विशेष मर्म-स्पर्शी स्थल है, जहां मानव स्वभाव की आकांक्षाओं, दुर्बलताओं, और उदात्त वृत्ति के विविध आयाम अपने अपने ढंग से प्रत्यक्ष होते हैं.

चुने हुये अंश का तेलुगु से हिंदी में अनुवाद प्रोफेसर लक्ष्मी रेड्डी द्वारा किया गया था. प्रस्तुति 'दिशांतर' द्वारा श्रीमती शांता गांधी के निर्देशन में आयोजित हुई. ओम शिवपुरी, सुधा शिवपुरी, रामगोपाल बजाज के सहयोग द्वारा आलेखन व व्यवस्था आदि का संयोजन सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा सार्थक हुये.

बांग्ला भाषा के श्रेष्ठतम कवि श्री विष्णु दे के अभिनंदनार्थ ज्ञानपीठ का सातवां पुरस्कार समारोह 10 फरवरी, 1973 को विज्ञान भवन के विशाल हाल में संयोजित हुआ. विष्णु दे टैगोर के बाद बांग्ला के सबसे बड़े कवि हैं. इनका काव्य संग्रह 'स्मृति सत्ता भविष्यत' सर्जनात्मक साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है. 'स्मृति सत्ता भविष्यत' की कविताएं उस चेतना की अभिव्यक्ति हैं, जिसने उपनिवेशयुगीन भारत एवं बंगाल की संस्कार-च्युत संवेदना का अतिक्रमण कर, समग्र मानव के बोध भाव में प्रवेश किया, जहां अतीत की स्मृतियां, वर्तमान का सत्य और भविष्य की खोज तीनों सहजीवी बनी हुई समायी हैं.

शीर्षक कविता 'स्मृति सत्ता भविष्यत्' की पंक्तियां चार सौ से अधिक हैं. उनमें से कुछ को चुनकर एक दृश्य काव्य, पाठ-रूपक की प्रस्तुति की गई. काव्य-पाठ में 22 स्वरों एवं गायन में 14 स्वरों ने भाग लिया. इन पात्रों ने मंच पर एक विशेष नियोजित रचना के अनुसार स्थान ग्रहण किया हुआ था. और प्रत्येक पात्र निर्देशानुसार काव्य-पाठ या गायन अथवा अभिनय द्वारा कविता के परोक्ष भाव को प्रत्यक्ष करता था.प्रकाश नियोजना ने पार्श्व से वाद्य-ध्वनियों की व पिछले परदे पर डाले गये अनुकूल स्लाइडों के सामंजस्य, बैक ग्राउंड में प्रस्तुति को पूर्ण रूप से प्रभावशाली बनाया. **कविता में निहित भाव उपस्थित दर्शकों तक पहुंचा, उनके हृदय व मस्तिष्क को उद्वेदित करने में सफल हुआ.**

कविता की इस विधा को मंच पर प्रस्तुत करने का श्रेय माडर्न स्कूल के श्री वेद व्यास जी को है. उनकी सूझ-बूझ और प्रयास ही सफलता के कारण थे. इसका संगीत निर्देशन किया श्री ज्योतिंद्र मेघा ने, वाद्य-वृंद संगीत की व्यवस्था की श्री वरुण गुप्ता ने, और रंग-सज्जा एवं मंच व्यवस्था का भार शाम तुली एवं लीला मोइया पर था. प्रकाश नियोजन किया श्री धींगरा ने. भारतीय कला केंद्र, माडर्न स्कूल, देहली आर्ट थिएटर और गांधर्व महाविद्यालय सबके सहयोग से यह रूपक सफल हुआ.

आठवां पुरस्कार 1972 में कवि श्री रामधारीसिंह दिनकर को उनके काव्य नाटक 'उर्वशी' के लिये समर्पित हुआ था. पुरस्कार समारोह 2 दिसंबर, 1973 को नयी दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित था. 'उर्वशी' पौराणिक कथा को एक नयी दृष्टि से अंकित करती हुई काव्य रचना है. इसमें दिनकरजी ने अप्सरा उर्वशी की 'भू' पर उतर 'नारीत्व' और 'मातृत्व' की पूर्णता पाने की उद्दाम अभिलाषा और पुरुरवा व उर्वशी के माध्यम से प्रेम भावना के दार्शनिक चिंतन मय स्वरूप को अपनी अनन्य भाषा शैली में अंकित किया है.

'उर्वशी' जैसी नायिका की प्रेम-गाथा और दिनकरजी जैसे सौंदर्य शिल्पी की लेखनी. नाट्य रचना को इस नृत्य रूपक द्वारा मंचित करने की प्रेरणा ही सुलभ रूप से हुई. भारतीय कला केंद्र की अध्यक्षा श्रीमती सुमित्रा चरतराम ने सहर्ष उत्साहपूर्वक उर्वशी का मंचन अपनी संस्था द्वारा विशेष रुचि लेकर तैयार कराया. दिनकरजी का भी पग पग पर सहयोग और सुझाव भारतीय ज्ञानपीठ और भारतीय कला केंद्र को मिलता रहा. श्रीमती कुंथा जैन द्वारा लिखा नृत्य रूपक का आलेख दिनकरजी ने बड़े चाव और ध्यान से पढ़ा. और न केवल उस पर स्वीकृति दी बल्कि उसकी भरपूर प्रशंसा की. समारोह के अवसर पर दिनकरजी ने नृत्य रूपक की प्रस्तुति पर हार्दिक संतोष प्रकट किया. दर्शकों ने काव्य का आनंद और काव्य में निहित विचार भावना का सुंदर रस ग्रहण किया. नृत्य निर्देशन, कोरयोग्राफी, संगीत व साज-सज्जा का उत्तम समन्वय प्रस्तुति को सबके लिये अत्यंत रुचिकर और प्रभावोत्पादक बनाने में समर्थ था.

गायन व कविता पाठ के स्वर थे श्री रामगोपाल बजाज, आशा भादड़ी, करुणा भादड़ी, सुदेश शर्मा के. भारतीय कला केंद्र से जुड़े. अपने-अपने क्षेत्र के विशेष, मोहन उपरेती (कोरियोग्राफर), प्रकाश जैन, वरुण गुप्ता (संगीत निर्देशक), के. शेखरन (नृत्य निर्देशक), राघवन नायर (पुरुरवा की भूमिका में), आरती सरकार (उर्वशी), हरीशचंद्र (आयु), राजकुमार, बी.के. सावंत, नारायण नबूदरी एवं वाद्य संगीतज्ञों के पूर्ण सहयोग ने 'उर्वशी' के मंचन को अपेक्षित मनोहरता दी.

नौवां पुरस्कार डा. दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रे को उनके कन्नड काव्य-संग्रह 'नाकुतंती' के लिये और श्री गोपीनाथ माहांती को उनके उड़िया उपन्यास 'माटी मटाल' के लिये समर्पित किया गया. समारोह 8 नवंबर, 1974 को विज्ञान भवन, नयी दिल्ली में आयोजित था.

'नाकुतंती' अर्थात 'चार-तार' काव्य संग्रह में वर्तमान का व्यंग्यात्मक छवि रूप, सांस्कृतिक अतीत और भविष्य का निष्कर्ष प्रस्तुत है. कवि की अनुभूति आत्मचेतन की है. उन्होंने युग के चेतना बिंदु के साथ तादात्म्य किया है. कवि की कविता उनके अपने जीवन जीने के ढंग से जनमी हुई है.

श्री गिरीश करनाड द्वारा निर्देशित 'कवि के जीवन का एक दिन' चलचित्र उपलब्ध था. उस चलचित्र के प्रदर्शन द्वारा दर्शक कवि बेंद्रे के 'चार-तार' काव्य संग्रह तक सहजता से पहुंच सके. इस चलचित्र में कवि के व्यक्तिगत के चारों पक्ष, मैं, तुम, वह और कल्पनाशील आत्मसत्ता एवं बेंद्रे की सौंदर्य विषयक परिकल्पना के चार पक्ष—इंद्रियगत, कल्पनागत, बुद्धिगत और आदर्श, सबको कवि की दिनचर्या में मुखरित होता दिखाया गया है.

गोपीनाथ महांती का उपन्यास 'माटी मटाल' उड़ीसा के ग्राम्य जीवन का गौरव ग्रंथ है. 10 साल के दीर्घ काल में लिखा गया वह बृहद उपन्यास जिसमें दो प्रमुख चरित्र हैं, 'रवि' और 'छवि' जो उपन्यास में अत्यंत अल्पभाषी हैं. रवि के चरित्र के माध्यम से लेखक ने उड़िया ग्राम्य जीवन का वर्णन उसे एक महाकाव्य का रूप देता है. कथानक तो केवल एक बाह्य रेखा कृति ही है. इस उपन्यास रूपी महाकाव्य को किस प्रकार मंचित किया जाये, इस पर काफी विचार विमर्श हुआ. उड़िया भाषी श्री जीवनपाणि (संगीत कला अकादमी के सुपरिचित विद्वान) और श्री जतीन दास (प्रख्यात चित्रकार) की कलामर्मज्ञी संवेदना ने उड़िया ग्रामों के स्पंदन से कलाकारों को परिचित कराने में सहायता दी. श्री रामगोपाल बजाज के कुशल निर्देशन और संयोजन द्वारा श्रेष्ठतम कलाकारों का सहयोग प्रस्तुति को प्राप्त हुआ. उड़ीसा के प्रसिद्ध 'छाऊ नृत्य' के निर्देशक सोनार चांद ने नृत्य-रचना का भार संभाला. रूपक का आलेखन और प्रसंग चयन स्वयं श्री जीवन पाणि ने किया और उसका हिंदी अनुवाद किया श्रीमती वर्षा दास ने. उपन्यास के नायक 'रवि' की भूमिका में थे, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त चलचित्रों के प्रसिद्ध कलाकार नसीरुद्दीन शाह और छवि की भूमिका में केवल अजीम थीं—कत्थक नृत्य की प्रसिद्ध कलाकार. उपन्यास में प्रसंग आता है कि ग्राम के निवासी बराह की मूर्ति को देवता के रूप में पूजते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

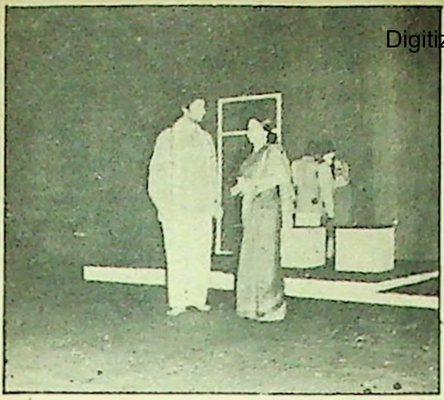

ययाति का एक दृश्य

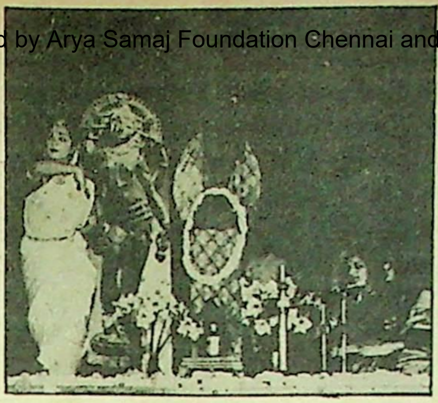

अमृताजी की कविता पर किरन सहगल के थिरकते पांव

यक्षगान का एक दृश्य

श्रद्धा के वशीभूत उन्हें वराह की पत्थर की मूर्ति में प्राणों का स्पंदन प्रतीत होता है जो अनेकानेक रूप धारण कर उनकी मनोकामना की पूर्ति करता है. इस भाव को दर्शाया अपनी नृत्य भंगिमाओं द्वारा छऊ नृत्य के प्रसिद्ध गुरु कृष्ण नायक ने, वराह की भूमिका में, मूर्ति को सजीवता प्रदान कर. ग्राम जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले पंद्रह नृत्य कलाकार थे, जिनमें सोनार चांद, सवा जैदी, चंपक बागला, मदन शर्मा, उमाकांत, शीना जैन, बाबुल, बी.आर. गुप्ता, सितांशु चौधरी, विठ्ठल आचार्य, टेकचंद, श्रीकृष्ण शामिल थे. गायन के स्वर थे शंकरदास गुप्त और सुमित्रा मजूमदार के. ध्वनि आकाशवाणी के श्री दीनानाथ द्वारा, परिधान सबा जैदी ने, प्रस्तुति नियमन सुदेश स्याल के और मंच व्यवस्था अमिताभ दास गुप्त ने संभाली हुई थी.

एक अतीव नवीन योजना विधि द्वारा, उपन्यास के हृदय स्थल को प्रेषित करने वाले श्री राम गोपाल बजाज ने स्वयं सूत्रधार की भूमिका ली.

दसवां पुरस्कार श्री विष्णु सखाराम खांडेकर को उनके मराठी उपन्यास 'ययाति' पर समर्पित किया गया. 26 फरवरी, 1976 को संयोजित यह समारोह एक गहरी उदासी की प्रतिच्छाया में संपन्न हुआ. भारतीय ज्ञानपीठ की अध्यक्षा और प्राण-प्रेरणा श्रीमती रमा जैन के निधन ने समारोह के उल्लास को एक दिव्य दीप्तिमय अवसर का रूप प्रदान किया. यह प्रतीति बनी रही जैसे उनकी साहित्य-सेवा की अखंड ज्योति का पथ आलोकित करती वहां विद्यमान थी. इस समारोह की विशेष अतिथि थीं श्रीमती महादेवी वर्मा. उनकी उपस्थिति से अवसर को विशेष गरिमा प्राप्त हुयी. 'ययाति' की मंच प्रस्तुति का निर्देशन और उपन्यास का संक्षिप्त नाट्य-रूपांतर किया सुप्रसिद्ध निर्देशिका सई परंजपे ने.

सई परंजपे ने 'ययाति' की सुंदर मंच प्रस्तुति की, जिसकी प्रतिक्रिया दर्शकों पर प्रभावोत्पादक रूप से हुयी. पात्रों को चुनने की सई जी की दूरदृष्टि सराहनीय थी. तीन मुख्य पात्रों के निवेदन स्वर देने वाले सुपरिचित नाम थे—कवियित्री इंदु जैन (देवयानी)—रमा पांडेय (शर्मिष्ठा) और कुलभूषण खरबंदा (ययाति). अभिनय करने वाले पात्रों में थे, राज बब्बर (कच), कुसुम हैदर (शर्मिष्ठा), चंपक बागला (देवयानी), सुभाष गुप्ता (ययाति), मंजु जोगलेकर (बालक ययाति), विजया पटवर्धन (महारानी), मोहिनी माथुर (कलिका), रजिया ग्रोवर (मुकुलिका), अनीता राजपाल (अलका), बी.के. सूद (शुक्राचार्य), कीमती आनंद (यति), अविनाश खरे (सेवक), सरला भटनागर व मीनाक्षी नरूला (सखियां), पीयू सयाल (आश्रम कन्या), जिम्मी अहलूवालिया व नीरा कपूर, गणित सयाल, चंद्रावती सुसाय, शारदा यादव (दृश्य परिवर्तचारिकाएं).

प्रस्तुति में नृत्य रचना और नृत्य किया चंपक बागला ने, परिधान श्रीमती लक्ष्मी ने, मंच उपकरण अविनाश खरे द्वारा, वेशभूषा—का भार था के.पी. कुमार का. मंच सज्जा भानु शर्मा द्वारा, आलोक आर.के. ढींगरा और ध्वनि संयोजन बी. सालोमन द्वारा हुआ.

17 दिसंबर, 1977 को ग्यारहवां पुरस्कार समारोह सदैव की भांति विज्ञान भवन में आयोजित हुआ. पुरस्कार विजेता थे, पे.वै. अखिलंदम, जो अखिलन के नाम से सुपरिचित हैं. इनके तमिल उपन्यास 'चित्तिरपावै' (चित्रित प्रतिमा) के संक्षिप्त रूपांतर को नाटक के रूप में आलेखित किया श्री सुरेंद्र वर्मा ने और रूपांतर का निर्देशन भी स्वयं उन्होंने किया.

नाट्य प्रस्तुति का श्रेय जाता है. पात्रों के रूप में : पंकज कपूर, रंजीत कपूर, नादिरा बब्बर, सुषमा सेठ, दीपक केजरीवाल, अनुपम खेर, कविता चौधरी, रमेश मनचंदा, रविकिरण शास्त्री, नीलम शर्मा, तिषा कपूर, हमीना, नीलम, दिनेक को और नेपथ्य में थे : राबिन दास, आर.के. धींगरा, भानु शर्मा, सुदेश स्याल, प्रेम मटियानी, नरेश खरे, नादिरा बब्बर, रंजीत कपूर और सुरेंद्र वर्मा.

12 वां ज्ञानपीठ पुरस्कार गौरवान्वित हुआ प्रथम बार एक महिला लेखक को समर्पित होकर. बंगला भाषा की सुविख्यात लेखिका श्रीमती आशापूर्णा देवी के उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' को सन् 1978 की सर्वश्रेष्ठ सृजनात्मक कृति निर्णीत किया गया.

पुरस्कार समारोह 26 अप्रैल, 1978 को विज्ञान भवन में आयोजित हुआ. यह समारोह भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शांति प्रसाद जैन की वरद छत्रछाया से वंचित रहा. 27 अक्तूबर, 1977 की प्रातः हृदयाघात से उनका अकस्मात निधन ज्ञानपीठ परिवार के लिये एक अत्यंत अभावग्रस्त स्थिति उत्पन्न कर गया. किंतु जोत से जोत जलती है—इसीलिये समारोह आयोजन यद्यपि थोड़े विलंब से आयोजित हुआ, किंतु उसी आभा और शोभा से संपन्न हुआ जो दिवंगत साहू दंपती अपनी विरासत में छोड़ गये थे. बांग्ला उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' की मंचाकन कथाभूमि को(प्रस्तुति में हुआ था) बंगाल के ग्रामीण वातावरण को विज्ञान भवन के मंच पर उतारने का सफल प्रयत्न हुआ. नाट्य रूपक का निर्देशन मंच के निखरे मंजे सुपरिचित निर्देशक राजेंद्रनाथ ने किया. बांग्ला मंच रूपांतर किया देवनारायण गुप्त ने. रूपांतर में संशोधन एवं हिंदी अनुवाद श्रीमती सांत्वना निगम द्वारा किया गया. अभिनय में भाग लेने वाले मंच के प्रसिद्ध नाम थे : सुभाष गुप्त, भूपेंद्रकुमार, कमल वर्मा, अश्विनीकुमार, गिरीश माथुर, मोहिनी माथुर, प्रिया सेठ (छोटी वय), सुषमा सेठ (बड़ी वय), वीणा मेहता, रंजना, हेम नलिनी, प्रमिला ठाकुर.

13 वां ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह डा. शिवराम कारंत के अभिनंदनार्थ बिड़ला मातुश्री सभागार, बंबई में शनिवार 20 जनवरी, 1979 को संपन्न हुआ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली बार पुरस्कार समारोह राजधानी में आयोजित न होकर भारत के एक और महानगर में था, जिससे अंतर्भारतीय उल्लासभरी साहित्यिक चेतना देश के अन्य क्षेत्रों को भी स्पर्श करे. शिवराम कारंत के पुरस्कृत कन्नड़ उपन्यास 'मूकज्जिय कनसुगल' (मूकज्जी) का मंचन भार इस बार वहन किया उस समय के नेशनल स्कूल आफ ड्रामा के निदेशक श्री वी.वी. कारंत ने. 'मूकज्जी' एक अतींद्रिय कथालोक है. मंच पर यथार्थ और अतींद्रिय लोक दोनों को निर्मित करने के उद्देश्य से स्लाइड प्रोजेक्शन, छायांकन और आलोकित मंच पर अभिनय, तीनों विधाओं का समन्वित प्रयोग किया गया. ध्वनि प्रसारण व आलोक प्रपात के विविध स्वर और कोण भी उस वातावरण को बनाने में सहायक थे. इस मंच रूपक का आलेख श्री शिवराम कारंत के सुझावों के साथ श्री वी.वी. कारंत ने स्वयं तैयार किया.

14वां पुरस्कार समारोह 'कला मंदिर', कलकत्ता में बुधवार 28 दिसंबर, 1979 को संयोजित हुआ. कलकत्ता नगर साहित्यिक दुर्ग है. हिंदी के लेखक मूर्धन्य कवि-लेखक श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय के सम्मानार्थ वहां आयोजन होना महत्वपूर्ण घटना थी. ज्ञानपीठ पुरस्कार का अंतर्भाषी मिलन का उद्देश्य इस पग से और अधिक सार्थक हुआ. अज्ञेय जी की पुरस्कृत काव्य-कृति थी 'कितनी नावों में कितनी बार' किंतु इस पुस्तक की ही रचनाओं पर मंच रूपक प्रस्तुति को केंद्रित न कर, वात्स्यायनजी की अनुमति व आदेश से उनकी एक अन्य संकलन से संग्रहीत एक लंबी कविता 'असाध्य वीणा' को रूपक का आधार बनाया. यह अकेली कविता वात्स्यायन जी के कवि रूप के विविध आयामों को समोये हुए उनके रचना शिल्प और शैली का प्रतिनिधित्व करती है. इस कविता के अतिरिक्त पुस्तक की समनामी कविता 'कितनी नावों में कितनी बार' को भी मंचित किया गया.

उपरोक्त दोनों कविताओं को नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया श्री आनंद शंकर और तनुश्री शंकर ने. साहित्यिक कृति को नृत्य अभिनय द्वारा रुपायित करने की कुशल क्षमता इस युगल ने उत्तराधिकार में पाई है.

15वां ज्ञानपीठ साहित्य पुरस्कार असमिया लेखक डा. वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य को उनके उपन्यास 'मृत्युंजय' पर समर्पित हुआ. समारोह आयोजित था राजधानी के विज्ञान भवन में 15 दिसंबर, 1980 की संध्या को.

वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य लिखित इस उपन्यास की घटनाओं का संबंध 1942 के स्वतंत्रता आंदोलन से है, जब सारे देश के साथ कंधा मिलाकर असम-प्रदेश ने ब्रिटिश सरकार की दासता से मुक्ति का अभियान छेड़ा था. अभिनय कलाकार पात्र थे : एस.एम. जहीर, सुभाष गुप्ता, सुरेंद्र दुग्गल, मीरा मिश्रा, गुलशन कुमार, आर.एस.केमु, विजय शर्मा, विनोद वर्मा, चित्रा शाह, शेखर त्यागी, कमल व्यास, निरुपमा वर्मा, इंद्र प्रकाश मित्र, किरण, तिलकराज. नेपथ्य में अशोक सागर भगत, संजीव दीक्षित, आर.एस. कैमु, इंद्र प्रकाश मित्र, हेमंत मिश्र, विनोशा शर्मा, नवारुण वर्मा व कुंथा जैन.

सोलहवां पुरस्कार 28 नवंबर, 1981 को दिल्ली में विज्ञान भवन में मलयालम के बहुचर्चित साहित्यकार श्री शंकर कुट्टी पोट्टेक्काट को उनके उपन्यास 'ओरू देसतिते कथा' (कथा एक प्रांतर की) को समर्पित हुआ. केरल के एक गांव की इस कथा का नायक, श्रीधरन वास्तव में स्वयं पोट्टेक्काट ही हैं. यह उस गांव के पचास वर्षों के बदलते परिवेश का गद्यात्मक महाकाव्य है. इस कृति में अंतर्कथाओं का गुंजन और पात्रों की विविधता का इतना व्यापक फलक है कि आश्चर्य होता है कि किस प्रकार प्रत्येक घटना और प्रत्येक पात्र अपने अलग-अलग रंग रूप में इतना सजीव कैसे बन पाया है.

इस विविधता और व्यापकता को मंच पर प्रस्तुत करने का सहज और सार्थक साधन होता, इसका फिल्मीकरण या फिर कई अंकों का भरा-पूरा नाटक. समय और साधनों की दृष्टि से यह संभव नहीं था. फिल्म इंस्टीट्यूट, पूना के एक तरुण कलाकार श्री नंदन खदियादी ने सैंट्रल एलैक्ट्रोनिक इंजीनियरिंग इंस्टीच्यूट के दिल्ली केंद्र के सहयोग से एक ऐसी टेकनीक की परिकल्पना की जिसमें सजीव चरित्रों के अभिनय की स्लाइड्स बनायी गयीं किंतु उनकी संख्या इस प्रकार सीमित रखी गयी कि छह-छह स्लाइडों को छह प्रोजेक्टरों द्वारा परदे पर प्रकाश और ध्वनि के संयोजन के साथ जब क्रम से उभारते और विषय करते तो चलचित्र का-सा प्रभाव दृष्टिगोचर होता.

वातावरण और चरित्रों की प्रामाणिकता अक्षुण्ण रखने के लिये नंदन खदियादी ने केरल के उसी गांव में जाकर स्लाइड-चित्र बनाये. और वहीं के व्यक्तियों से उनकी वेश-भूषा में अभिनय करवाया जो उपन्यास की पृष्ठभूमि है. उपन्यास का सामयिक स्थानीय संगीत वहीं टेप किया. पात्रों ने कथोपकथन मलयालम में बोले जिन्हें दिल्ली आकर हिंदी में कौशल के साथ 'डब' कर लिया गया था. प्रदर्शित प्रस्तुति का प्रभाव ऐसा ही था जैसे कि यह 'भव्य-दृश्य रूपक हिंदी में बनाया गया है.'

17वां पुरस्कार समर्पित हुआ श्रीमती अमृता प्रीतम को. 16 अप्रैल, 1983 को यह समारोह दिल्ली में इस बार एशियाड सेंटर, एशियाई खेल गांव के विशाल

एशियाड सेंटर एशियाई खेल गांव के विशाल

भवन में आयोजित हुआ. पुरस्कृत कृति 'कागज ते कैनवस' में संग्रहीत कविताओं में एक नया भाव-गांभीर्य और समानांतर आंतरिक विवेकपूर्णता का समावेश है. अमृताजी ने जीवन के विविध धरातल और दिशाओं में व्यापक अंतर के चरम सत्य के छोरों को छूती कविताओं की रचना की है. अमृताजी की चिंतनरत, संवेदनशील भावुकता जो उनके अनेकानेक कविता के शब्दों और छंदों में मुखर हैं, उसे उसकी संपूर्णता में नृत्य और संगीत के रूपक द्वारा प्रेषित करने का उत्तरदायित्व लिया श्रीमती शीला भाटिया ने. पंजाबी और उर्दू की शायरी और मार्मिक कथाओं को ओपेरा अथवा नृत्य-संगीत रूपक की शैली में प्रस्तुत करने में शीलाजी अग्रणीय रही हैं.

समारोह का प्रारंभ अमृताजी की कविता 'आदि संगीत' के पाठ पर विख्यात नृत्यांगना किरन सहगल के अभिनय नृत्य द्वारा हुआ.

'रूपा' की भूमिका में प्रसिद्ध गायिका मदनबाला सिंधु ने अपने प्रभावशाली कंठ और व्यक्तित्व से सारे रूपक को सजीवता प्रदान की. वाचक श्रीमती स्नेहलता सान्याल और सरताज मेहरा, वीरू की भूमिका में ललित नागपाल और अन्य सभी कलाकारों ने अपनी-अपनी भूमिका खूब निबाही.

18वें पुरस्कार को गौरव प्रदान किया, वाग्देवी की मूर्तिमती प्रतिमा महीयसी महादेवी वर्मा ने. 28 नवंबर, 1983 को दिल्ली के 'सीरी फोर्ट' के जगमगाते मंच पर प्रधान अतिथि के रूप में थीं ब्रिटेन की प्रधानमंत्री श्रीमती मार्गरेट थ्रैचर.

महादेवी जी की काव्य साधना के प्रति श्रद्धा अर्पण करने हेतु उनके कविता संग्रह 'यामा' और 'दीपशिखा' में से चुनकर मंचन करने हेतु कुछ कविताओं को छंद ताल और स्वर के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास श्रीमती रीता गांगुली द्वारा संयोजित किया गया. उन्होंने कवियित्री की छायावादी भावना और संवेदना को रूपाकार बनाने में कवियित्री की स्व-वाणी, उनका परिवेश-आंगन और परिसर, उनके शैशव की झांकी, उनके वर्तमान की भव्य-छवियों का प्रतिबिंब, उनके स्वरचित चित्रों का संप्रेषण भी संयोजित किया, कार्यक्रम 'अनुभूति' के अंतर्गत. इस कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में सहयोग दिया अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के फोटोग्राफर अविनाश पसरीचा ने.

महादेवीजी की कविताओं को समवेत गायन के रूप में प्रस्तुत किया भारतीय कला केंद्र के विद्यार्थी और सांग एंड ड्रामा डिविजन के कलाकारों ने. एकल गायन श्रीमती रीता गांगुली ने. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. राजेंद्र प्रसाद
शिखर सम्मान

रचनात्मकता का सम्मान

हर्ष का विषय है कि राजभाषा विभाग, बिहार सरकार की ओर से पहला 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान' हिंदी के वरिष्ठ कथाशिल्पी श्री अमृतलाल नागर को प्रदान किये जाने की घोषणा की गयी है. 17 अगस्त 1916 को गोकुलपुरा (आगरा) में जन्मे नागर जी की साहित्यिक यात्रा का श्रीगणेश सन् 1929 में साइमन कमीशनी के बहिष्कार स्वरूप लिखी गयी कविता के साथ हुआ. इसके बाद तो 'वाटिका', 'अवशेष', 'नवाबी मसनद', 'तुलाराम शास्त्री', 'सेठ बांकेमल', 'आदमी, नहीं!', 'पांचवा दस्ता', 'एक दिल हजार दास्तां', 'एटम बम', 'पिपल की पटी', 'काल दंड की चोरी', 'सात कहानियां', 'भारत पुत्र नौरंगी लाल' सरीखे कहानियों और रेखाचित्रों के संग्रह ही नहीं.... 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'अमृत और विष', 'सात घूंघटवाला मुखड़ा', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस,' 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'खंजन नयन', 'बिखरे तिनके', 'अग्निगर्भा', 'करवट' जैसे बहुचर्चित उपन्यास व 'गदर के फूल', 'ये कोठेवालियां', 'जिनके साथ जिया' सरीखे रिपोर्ताज और साक्षात्कार उनके विराट रचना-संसार में जुड़ते चले-गये. यही नहीं, नाटकों, रेडियो रूपकों, प्रहसनों और बालोपयोगी साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में नागर जी का उल्लेखनीय योगदान रहा है. आज भी वे 'करवट' उपन्यास को आगे बढ़ाते हुए कथा-जगत को समृद्ध कर रहे हैं.

इस संदर्भ में आश्चर्यजनक और बेहद तकलीफदेह स्थिति यह है कि नागर जी जैसे रचनाकार (जो लंबे समय से उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ की धड़कन बने हुए हैं और जिनकी वजह से यह शहर साहित्य प्रेमियों के बीच जाना जाता है) की ओर से वह उत्तर प्रदेश सरकार प्रायः उदासीन रही है जिसे इस दिशा में पहल करते हुए नागर जी को सम्मानित करना चाहिए था. संभवतः उत्तर प्रदेश सरकार यह न भी जानती हो कि अमृतलाल नागर एक ऐसे रचनाकार का नाम है जिसकी अधिकांश रचनाएं प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में ही नहीं विविध विदेशी भाषाओं में भी अनूदित होती रही हैं. यही नहीं, साहित्य अकादमी, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, बटुक प्रसाद पुरस्कार, प्रेमचंद पुरस्कार, वीरसिंह देव आदि पुरस्कारों से तो वे सम्मानित हुए ही हैं....विद्यावारिधि, सुधाकर पदक और पद्मभूषण से से भी अलंकृत हो चुके हैं. दरअसल, ऐसे रचनाकार को सम्मानित करना स्वयं भी सम्मानित होना है!

सारिका परिवार की ओर से आदरणीय नागरजी को बधाई.

शिवानी

लोकप्रियता के शिखर को छू लेने वाली लेखिका की

पूतोंवाली और अतिथि के बाद

दो मर्मस्पर्शी कृतियां

चरैवेति — रूस यात्रा का कथात्मक दस्तावेज 10/-

कस्तूरीमृग — जिंदगी के हादसों की सच्ची तस्वीर 10/-

शिवानी का समूचा रचना संसार

- माणिक
- जालक
- रथ्या
- विवर्त्त
- चल खुसरो घर आपने
- पूतोंवाली
- वातायन
- सुरंगमा
- अपराधिनी
- कैंजा
- गैंडा
- श्मशान चंपा
- भैरवी
- यात्रिक
- स्वयंसिद्धा
- मायापुरी
- आमादेर शान्तिनिकेतन

प्रत्येक का मूल्य 10/-

उपहार

19 पुस्तकों में से चुनिए कोई सी 10 पुस्तकें और पाइए 11 वीं पुस्तक का मुफ्त उपहार! और डाक-खर्च भी हम वहन करेंगे

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कथा-शिल्पी
आर·के·नारायण
१२ कहानियां जो दूरदर्शन पर प्रदर्शित की गईं
मालगुडी डेज़ Malgudi Days
सजिल्द: 30/- ★ पेपर बैक: 12/-

★ अपने आदेश के साथ 10/- अग्रिम भेजें ★
इनके सजिल्द संस्करण सरस्वती विहार द्वारा प्रकाशित
★ सभी स्टालों पर उपलब्ध ★ न मिलने पर हमें लिखें

हिन्द पॉकेट बुक्स (प्रा.) लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्नालाल पटेल की कहानियां

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गुजराती कहानी को इंदुलाल याज्ञिक, के.एम. मुंशी, धनसुख लाल मेहता, अंबालाल साकरलाल, रणजीतराम मेहता जैसे कथाकारों ने जिस मोड़ तक पहुंचाया वह एक तरह से गुजराती कथा-यात्रा का पहला पड़ाव ही था. धूमकेतु जैसे कथाकार ने अपने समय में गुजराती कहानी को एक नयी ही दिशा दी. यह ऐसी दिशा थी जिसने गुजराती कहानी को दमित और शोषित वर्ग के जीवन से जोड़ते हुए भारतीय कहानी की मुख्य धारा तक पहुंचाया. आज यदि पन्नालाल पटेल जैसे बड़े रचनाकार हम गुजराती में देखते हैं... तो यह इस भाषा की कोई अनायास उपलब्धि नहीं है. इसके पीछे धूमकेतु जैसे रचनाकारों के साथ-साथ रामनारायण पाठक, रमणलाल देसाई, जयंत खत्री, उमाशंकर जोशी सरीखे कथाकरों के उल्लेखनीय रचनात्मक संघर्ष भी रहे हैं. पन्नालाल पटेल के साथ गुजराती साहित्य में एक नयी शुरूआत हुई और यह शुरूआत थी— श्रमजीवी का शब्द-सृष्टि से सीधा सरोकार. इनके यहां रचना, किसी बाहरी दबाव से नहीं, आंतरिक अनुभूति से जन्म लेती अधिक दीखती है... किंतु सच यह है कि यह कथाकार जीवन पर पड़ रहे बाहरी दबावों को जितनी सूक्ष्मता से पकड़ने में सक्षम है उतनी ही कुशलता से वह अपने पात्रों के मनोजगत में भी प्रवेश कर जाता है. यही कारण है कि कहानी संकलन 'गूंगे सुर बांसुरी के' पढ़ते समय कहीं यह आभास नहीं होता कि हम किसी दुरूह-जगत से साक्षात कर रहे हैं. विषय वैविध्य के साथ-साथ जीवन को भिन्न-भिन्न कोणों से देखने की कुशल तकनीक का प्रदर्शन करती यह कहानियां बड़े पाठक समुदाय में साहित्य के प्रति आस्था जगाने की दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं.

जिस सामाजिक व्यवस्था में आद आदमी रह रहा है... और बहुत हद तक जिससे बाहर निकल पाना उसके लिये संभव भी नहीं है, वहां सुखी जीवन का एक रास्ता यही बचा रहा जाता है कि हम जीवन के प्रति आस्थावान होकर उसे समूचेपन के साथ जियें. 'गूंगे सुर बांसुरी के' कहानी का पूर्वार्ध यद्यपि यह सत्य स्थापित नहीं करता, वहां हम यह कल्पना कर लेते हैं कि युवती अंततः प्रेमी के साथ भाग ही जाएगी. किंतु अंतः तक आते-आते बहुत सहज रूप में यह स्थापित हो जाता है कि प्रेम में बनावट की कोई जगह दरअसल है नहीं. यही वजह है कि युवती अपने पति से प्रेमी के कहे मुताबिक शुरूआत तो दिखावटी प्यार से करती है.... पर क्रमशः वह दोनों के बीच एक स्थायी भाव, बल्कि जीवन का सच बन जाता है. ऐसे में, युवती के सामने सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुरूप जीवन जीने की सलाह के अतिरिक्त अपने प्रेमी के लिए शेष कुछ भी नहीं रह जाता. परिवार के सुख का आधार पति-पत्नी में परस्पर लगाव और विश्वास ही उसे समझ में आता है. जीवन का यहां जो सीधा-सच्चा रूप है उसमें यह कहीं भी असहज नहीं लगता.

जीवन के प्रति पन्नालालजी में जो अटूट आस्था है वह उन्हें प्रत्येक चरित्र के प्रति इतना सचेत रखती है कि वे उसके लिए एक सहायक तर्क साथ लेकर चलते हैं. और प्रायः यह तर्क जीवन के उतार-चढ़ाव के चलते आदमी में होने वाले बाहरी व भीतरी दबावों के पक्ष में खड़े दीखते हैं. 'कंकू' कहानी में विधवा कंकू सेठ मलकचंद और गला डामोर की पत्नी प्रमुख पात्र हैं. ऊपरी तौर पर, 'आर्थिक तंगी में जीती एक विधवा को उधार देकर सेठ मलक चंद किस तरह अपनी वासना का शिकार बनाता है' कहानी का कथानक है. किंतु गला डामोर की पत्नी का यह आक्रोश कि यदि पहले जान जाती तो वह कंकू की पकी बेर की तरह न झकझोर डालती... कहानी को एक ऐसा स्वर देता है जिसमें शोषक वर्ग के प्रति शोषित की वितृष्णा अपने चरम में झलक उठती है. कहानीकार यहां हमें इन तीनों चरित्रों को अपनी तरह से समझने का पूरा अवसर देता है. किंतु यौन कुंठाओं का जो तर्क वह एक विधुर के लिए अपनी ओर से रखता है... उसे असंगत भी नहीं कहा जा सकता. ठीक इसी तरह 'कंकू' का अंत तक चुप रह जाना... एक तरह से उन आर्थिक एहसानों को ढोना ही है जो बुरे दिनों में सेठ ने उस पर लादे थे. यहां 'कंकू' का नवजात शिशु भी कथाकार की उस आस्था का प्रतीक बन गया है जिसका आधार जीवन है. जीवन, जो तमाम विसंगतियों के बीच भी एक ऐसा सच है जिसे नकारा नहीं जा सकता. यह संग्रह पन्नालालजी की 1940 से 1969 तक की कहानियों में से गुजराती के ही कथाकार डा. रघुवीर चौधरी द्वारा चुनी हुई रचनाओं का है. 1944 में प्रकाशित 'कंकू' कहानी की विधवा कंकू आर्थिक विवशता के चलते यदि दैहिक शोषक के कुचक्र में फंस जाती है तो 1963 में प्रकाशित 'मंगलसूत्र' में आर्थिक मजबूरियां इतनी विकराल हो उठी हैं कि चेतनलाल की पत्नी भी बच्चे की जान बचाने की खातिर कंकू जैसी स्थिति से होकर गुजरती है. किंतु यहां चेतनलाल की पत्नी पति के सम्मुख और चेतनलाल पत्नी के सामने स्वयं को इतना नीचा गिरा महसूस करते हैं कि आत्मघात करने पर मजबूर हो जाते हैं. जीवन की बेचारगी भरी स्थितियां यहां इतने विकराल रूप में सामने आयी हैं कि आत्म हत्या के अतिरिक्त और कोई रास्ता बचा नहीं रहा जाता. आजादी के बाद निरंतर असहनीय होती चली जा रही जीवन स्थितियों के आइने में यदि देखें तो यह बहुत अस्वाभाविक नहीं लगता...

जीवन के व्यापक अनुभव और अपनी जमीन से गहरे में जुड़े होने के कारण पन्नालालजी का कथाकार मूलतः मानववादी है और सहज-सरल प्रवाहमय रूप में जीवन को रेखांकित करना उसका उद्देश्य. यही वजह है कि इनकी रचनाएं जन-भाषा के रस को कुछ इस तरह आत्मसात किये चलती हैं कि कथारस को एक सहज ऊर्जा मिली है. यही ऊर्जा इन रचनाओं को पठनीय भी बनाती है. बावजूद इसके 'वात्रक के किनारे' और 'धर्मसंकट' जैसी कहानियों में जब संयोग और नियति जीवन को संचालित करने वाले प्रमुख कारक के रूप में सामने आते हैं तब सहसा विलक्षण नारी चरित्र को लेकर लिखी गयी कहानी 'भाथी की घरवाली' की ओर ध्यान आकर्षित होता है. ऊपरी तौर पर यह एक नियतिवादी कहानी प्रतीत होता है. किंतु यह एक रूपगर्विता के, पुनः छोड़े हुए पति के घर लौट आने भर की कहानी नहीं है. कथानायक भाथी की पत्नी, जो पहले शहर की जिंदगी के प्रति आकर्षित थी, मोहभंग के बाद हर ओर से निराश होकर जब भाथी के घर लौट आती है.. तब वह बाहर और भीतर, दोनों ओर की लड़ाई का मोर्चा संभालती है. एक ओर उसे गांव के तमाम लोगों को मुंहतोड़ जवाब देना है.... दूसरे अपने आप के सम्मुख इस रूप में प्रायश्चित भी करना है कि उसी पति की शरण स्वीकार करनी है जिसे पहले वह इसलिए छोड़कर चली गयी थी कि वह जिंदगी को सही तरीके से जीना ही नहीं जानता था. उसका कभी न झुकनेवाला अहम् परिस्थितियों के आगे सार्वजनिक रूप से टूट चुका है.

पन्नालालजी की अधिकांश कहानियां औपन्यासिक बनावट लिये हैं और ऐसा होना अस्वाभाविक इसलिए नहीं है कि वे रचना रचना के लिए नहीं करते, जीवन को समझने के लिए, उसे व्याख्यायित करने के लिए करते हैं. संकलन के संपादक रघुवीर चौधरी ने रचनाकार के कथ्य, शिल्प और परिवेश वैविध्य की दृष्टि से जिन रचनाओं का चयन किया है उनसे हिंदी के पाठकों के मन में गुजराती के इस कथाकार के प्रति आकर्षण बढ़ना स्वाभाविक ही है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वेषी कथाकार की कहानियां

अन्य भारतीय भाषाओं की भांति मलयालम की पहली कथा-रचना 'कुंदलता' पर भी पश्चिम का प्रभाव भले ही रहा हो... किंतु बाद के कथाकारों में अपनी जमीन की नव्य भाव-बोध की रचनाएं सामने लाने की प्रवृति अधिक दिखाई देती है. मलयालम के कथा-जगत को इस रूप में समृद्ध करने वाले कथाशिल्पियों में पी. केशवदेव, मोहम्मद बशीर, पोन्कुन्नयवर्कि आदि के साथ जो नाम सर्वाधिक सम्मान के साथ लिया जाता है, वह है— तकषी शिवशंकर पिल्लै.

तकषी को उपन्यासकार के रूप में अधिक चर्चा भले ही मिली हो, उनकी कहानियां अपने शिल्प की कसावट और भाषा की साधना की दृष्टि से मलयालम कथा-जगत की विशेष उपलब्धि हैं. उनके कहानीकार की यह विशेषता है कि वह अपनी कथावस्तु को विविध रूपों में सामने रखता है. कहीं शब्द चित्र आकार लेने लगता है तो कहीं रेखाचित्र. कहीं बेहद सीधे-सरल अंदाज में किस्सागोई चल निकलती है तो कहीं संवाद-कथा. कहीं संस्मरण कहानी कहने लगते हैं तो कहीं विचार कथा-सूत्र बन बैठते हैं. लगभग आठ सौ कहानियों के रचनाकार तकषी शिवशंकर पिल्लै का हिंदी में यह पहला कहानी संग्रह है. संग्रहीत इक्कीस कहानियां के माध्यम से जिंदगी के बारे में तकषी का नजरिया अच्छी तरह से समझा जा सकता है. उनकी अधिकांश कहानियां जिंदगी को विविध रूपों में परिभाषित करती हैं. जिस परिवेश और चरित्र-संसार से मलयालम का कथा जगत बचा रह कर केवल मध्यवर्ग तक सीमित था... तकषी की पीढ़ी के कथाकारों ने उसका सीमातिक्रमण किया. स्वयं तकषी ने भी निम्न वर्ग के जीवन का चित्रांकन अधिक विश्वसनीयता से किया है. इस वर्ग के पात्रों के मनोजगत में वे इस आत्मीयता से प्रवेश कर जाते हैं कि उसका रेशा-रेशा उधड़कर कथारस का निर्माण करता है. यह कथारस पारंपरिक रूप में आल्हादकारी नहीं है. विचारणीय स्थितियों से ऐसा साक्षात कराता है यह कथारस कि हम कहीं प्रारंभ से ही तो कहीं एकाएक झंकृत हो उठते हैं. रिक्त होते जा रहे संवेदना कोषों को फिर से भर दिया गया हो जैसे... और हम अपने समय के आदमी को पहचानते हुए आत्मीय भाव से उसके और करीब होने लगें.

'चुकौती' जैसी कहानी में एक भिखारिन के माध्यम से समूची स्त्री-जाति के होने के प्रयोजन पर विचार करते हुए जब यह कहानीकार पुरुष-जाति पर कटाक्ष करता है तब हम कथाकार की विचारयात्रा के सहयात्री हो जाते हैं और यह सोचने पर विवश हो जाते हैं कि क्यों पुरुष गैर जिम्मेदार होकर चलता बनता है. मां को बहुत कुछ सहना है... तो कुछ मिलना भी तो चाहिए उसे. इस कहानी की नायिका भिखारिन सही, पर वह अपने स्त्री होने को कहीं कलंकित नहीं होने देती... चूंकि वह स्त्री होकर पैदा होती है और अपना कर्तव्य निभाती है, पर इसके पीछे जो अमानवीय स्थितियां हैं... वह स्वतः हमारे समाज की समझ को उस 'सत्य' तक ले जाती हैं जहां ऐसी स्थितियों के न रहने देने का संदेश देता है. ऐसा ही संदेश देता है केशवन नायर भी. 'किसान' कहानी का एक नायक यह संदेश धरती के प्रति इंसान के लगाव का देता है. किसान और खेती के नैतिक फर्ज से साक्षात कराती यह कहानी तकषी की श्रेष्ठ कहानियों में एक है.

सामाजिक विसंगतियों पर कटाक्ष करने में तकषी का जवाब नहीं. वे 'अनाथ की मौत' के माध्यम से उस संपन्न वर्ग को खूब आड़े हाथों लेते हैं जो अपनी छवि बनाने के लिए तो कोष लुटा सकता है पर एक बेसहारे को सहारा नहीं दे सकता. मक्कार की जिंदगी और मौत की यह छोटी-सी कहानी वर्ग विशेष के दिखावटी व्यवहार को तो बेनकाब करती ही है हमारी संवेदनाओं को भी झकझोरती है कि हम अपने आसपास के अनेकों को अपनी आत्मीयता दे सकें. मानवीय लगाव की जरूरत के इस संदेश को तकषी ने कई रचनाओं में विविध रूपों में गहराई से उठाने की सफल कोशिश की है.

'फौजी' कहानी का फौजी युवक एक अनजान वृद्धा से जो प्यार एक ही दिन में पा जाता है... उसका तापमान फौजी के फूट-फूटकर रोते हुए यह कहने में ही मापा जा सकता है— ''मेरा कोई नहीं है, मां.'' और यहीं कथानायक का वृद्धा की बेटी से विवाह हो जाता है. भावुक अंत वाली यह कहानी बेहद सादगी से हमें 'ह्यूमेन कंसर्न' की परिभाषा दे जाती है. यह कथानायक श्रम पर निष्ठा रखने वाला एक अनाथ है जो आगे चलकर अकेला नहीं रह जाता. ठीक इसके विपरीत 'विरासत' कहानी का नायक अंततः एक भिखारी के तौर पर मरता है. यह नायक श्रम में महज इसलिए यकीन नहीं करता कि वह एक श्रेष्ठ जाति में उत्पन्न हुआ था. वह अपने परिवार की अतीत की गौरव गाथाओं के मायाजाल में डूबा रहता है पर वर्तमान के उस यथार्थ से आंख नहीं मिलाना चाहता जहां श्रमहीन आदमी की नियति भूखों मरना ही है.

जिंदगी के प्रचलित अर्थों के विपरीत जब रचनाकार मनुष्य के अंतस में प्रवेश करता है तब उसे समाज के चलन पर टिप्पणी करना जरूरी लगने लगता है. 'एक मामूली फांसी' कहानी में तकषी का कथापात्र कहता है— ''समाज की यह खास आदत है कि उसे नियमों के प्रति आदर और आस्था हो और नियमों का उल्लंघन करनेवालों से घृणा और नफरत नियमों के वचन बहुमत की राय होते हैं.'' और समूची कथा ठीक इसके विपरीत हमें फांसी की सजा पाये एक जीवन पर गंभीरता से सोचने को विवश करती है. तकषी जहां बेहद गंभीर विचारों को कहानी के जरिए सहज बनाकर हमारे भीतर उतार देते हैं वहीं वे जिंदगी के खिलंदड़ेपन की सतह से मनोजगत को समझनेवाले वे सूत्र भी खोजकर लाते हैं, जिन्हें प्रायः अदेखा कर दिये जाने का प्रचलन बना रहा है. 'वाह रे चरित्रवान' और 'ताड़ीखाने में' जैसी कहानियां इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं. यह दोनों कहानियां जितनी सरलता से अपनी विचार यात्रा शुरू करती हैं उतनी ही गहराई और गंभीरता से हमें अपना चेहरा देखने पर विवश भी कर देती हैं.

कथ्य के स्तर पर तो तकषी विविधता भरे कथाजगत के अन्वेषी कथाकार हैं ही भाषा के स्तर पर भी उनकी कला चमत्कृत कर देनी है. एक ही बात, जो ऊपरी तौर पर बेहद सामान्य प्रतीत होती है... एकाएक किसी उस पेंटिंग की तरह अर्थवान हो उठती है जिस पर हम फिजूल की कला समझकर विचार करना छोड़ चुके होते हैं... पर अर्थ ध्वनित होते ही वह हमें अपनी गिरफ्त से बाहर नहीं आने देती. तकषी की कथा-भाषा में पेंटिंग का-सा यह चमत्कार कदम-कदम पर मिलता है.

महेश दर्पण

चर्चित पुस्तकें

तकषी की कहानियां : अनुवाद-संयोजन : डा. वी.डी. कृष्णन नंपियार, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया लोधी रोड, नयी दिल्ली—110003., मूल्य : तीस रुपये

गूंगे सुर बांसुरी के : पन्नालाल पटेल
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ
लोदी रोड, नयी दिल्ली-3,
मूल्य : पैंतालीस रुपये
संपादक : रघुवीर चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञापन-कला की सामाजिक सार्थकता

आज हमारा समाज जिस दौर से गुजर रहा है, वह सभ्यता के विकास का एक ऐसा चरण है जहां हम एक ओर इक्कीसवीं शताब्दी के सुनहरे सपने देखते हुए अंतरिक्ष-विजय को उपलब्ध यथार्थ बनाने में लगे हैं...वहीं दूसरी ओर पिछली चार शताब्दियों में एक साथ जीने का अभ्यस्त हमारा समाज अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए भी जी-तोड़ संघर्ष में लगा है. विभ्रम की यह एक ऐसी स्थिति है जहां पहुंचकर कोई भी समाज अपनी विवेकशीलता खो बैठता है और सही दिशा-निर्देश न मिलने पर क्रमशः पिछड़ता चला जाता है. ऐसे में जन-चेतना युक्त विज्ञापनों के लिए 'अशोक जैन पुरस्कार-योजना' अपने आप में एक उल्लेखनीय पहल है. सामाजिक-चेतना को जगाने और सही दिशा निर्देश की दृष्टि से प्रारंभ यह आयोजन प्रतिवर्ष विज्ञापन के क्षेत्र में सार्थक रचनात्मकता को बढ़ावा देते हुए

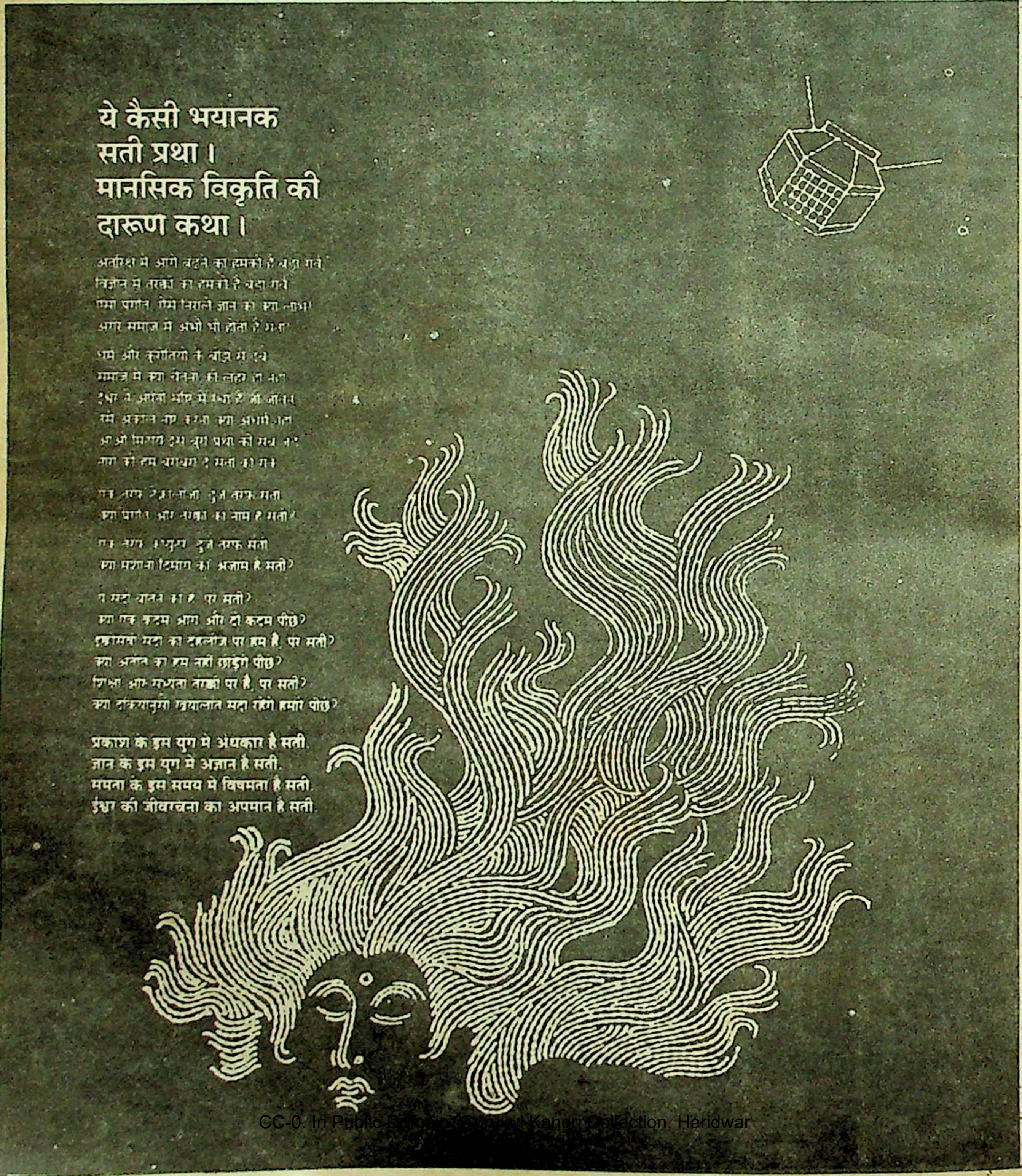

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरस्कृत भी करता है. हिंदी और अंग्रेजी के माध्यम से जागृति-अभियान में सक्रिय भूमिका अदा करने वाले प्रतियोगी विज्ञापनों को युवा गैर पेशेवर (अधिकतम 21 वर्ष) कलाकारों की श्रेष्ठ प्रविष्टि, सुपरिचित विषय की नवीनतम प्रस्तुति, विशेष विषय, साज-सज्जा और कल्पनाशील अभिलेखन आदि श्रेणियों में पुरस्कृत किया जाता है.

प्रति वर्ष की भांति इस बार भी पिछले दिनों दिल्ली के होटल ताज पैलेस का प्रदर्शनी कक्ष इन जन-चेतना युक्त विज्ञापनों के कारण दर्शकों के आकर्षण का केंद्र बना रहा. विज्ञापन-कला की सामाजिक सार्थकता की दिशा में इस बार प्रथम पुरस्कार विजेता विज्ञापन-अभियान रहा—प्रफुल्ल सतनाम एवं बलवंत टंडन का. गुरूनानक पब्लिक स्कूल में अध्ययनरत हरपुनीत विरदी एवं गुरविंदर कौर को अंग्रेजी माध्यम में प्रथम और माउंट कारमेल स्कूल के छात्र हिमानिश दास को द्वितीय स्थान मिला. अव्यावसायिक श्रेणी में अनिता गांधी का अभियान प्रशंसित हुआ. □

● हिंदी में प्रथम पुरस्कृत विज्ञापन-अभियान

● अंग्रेजी में प्रथम पुरस्कृत विज्ञापन-अभियान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पौद

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो नयी पौद की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं.... स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित 300 शब्दों में लिख भेजिए. लिफाफे पर यह कूपन चिपकाना न भूलें.

'नयी पौद' स्तंभ
सारिका
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

अभिलाषा अब भी है
प्रीता झा (मुजफ्फरपुर)

बचपन से ही अच्छा साहित्य पढ़ने एवं लिखने का शौक है. पढ़ने का शौक तो कायम है और रहेगा, किंतु लिखने का शौक गृहस्थी के जंजाल में दुबककर कहीं दूर पीछे छूट गया. बिहार के पिछड़े क्षेत्र मिथिलांचल में जन्मी मैं नन्हे-मासूम सपनों के साथ विख्यात लेखिका बनने के सपने भी देखा करती थी. इन खूबसूरत सपनों को और भी प्रश्रय मिलता जब कक्षाओं में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत होती. सहेलियों ने मेरा नामकरण किया था– 'किताबी-कीड़ा'. मेरे सपने बिखर गए जब अचानक एक्कड़-दुक्कड़ खेलते मेरे पांवों को पहना दी गयीं विवाह की बेड़ियां. मेरा विवाह 15 वर्ष की उम्र में 1977 में हुआ. और उसके साथ ही प्रारंभ हुआ मेरे जीवन का नया अध्याय. पत्नी और माता बनकर मेरा 'मैं' खो चुका है जो कभी रचनाकार बनना चाहता था. लेकिन इन तमाम उधेड़बुनों के बीच अच्छा साहित्य पढ़ने की रुचि ने मन के किसी कोने में उन सपनों को पुनर्जीवित देखने की अभिलाषा को ज्योतित रखा है... जब कभी लिखने का अवसर आएगा–और जरूर आयेगा–तो लिखना चाहूंगी अपने ग्रामीण परिवेश एवं मैथिल ललनाओं की समस्याओं के बारे में. क्योंकि औरतों की बुनियादी समस्याएं तो समान हैं किंतु मिथिला की नारियों का कहना ही क्या? जब राजा जनक की पुत्री एवं राजा दशरथ की पुत्रवधू होकर भी मिथिला-सुकुमारी को अनंत कष्ट झेलने पड़े थे, तो फिर हम नाचीजों की तो बिसात ही क्या? हालांकि शिक्षा का प्रचार हुआ है, फिर भी हालत अभी ऊंट के मुंह में जीरे के फोड़न जैसा ही है. इसलिए लिखना है जरूर, बशर्ते कि एक पांव पर भी टिके रहने की जमीन मिले. □

सफर तय करना है
नीरज 'नीरू' (ग्वालियर)

चिकित्सा जगत में जाने कितनी व्यस्तता है... बस इस व्यस्तता के कारण समयाभाव मेरे लेखन-मार्ग में आने वाला सबसे बड़ा अवरोधक है. इस क्षेत्र में रुचि होने पर भी, जितना वक्त मुझे मिलता है, साहित्य पढ़ने और उससे ज्ञान अर्जित करने की मेरी हमेशा-हमेशा कोशिश रहती है.

जो कुछ भी विचार आते हैं उन्हें अपनी शब्द-निधि द्वारा मूल्यांकन कर अंकित कर लेता हूं. और हर बार उनमें गलतियां ढूंढकर सुधारने की कोशिश करता हूं... परंतु न जाने क्यों फिर भी ऐसा लगता है जैसे कहीं न कहीं कुछ कमी अवश्य है. आत्मसंतुष्टि की प्राप्ति नहीं होती है. यही आत्मसंतुष्टि की भावना हमेशा अतृप्त रहती है. कुछ भी नया लिखना प्रारंभ करो... पिछले लेखन की असंतुष्टि कलम को बांधती-सी लगती है. तब महसूस होता है कि वास्तव में आत्मसंतुष्टि ही, आत्म विश्वास अंकुरित करने के लिये धरा जैसा कार्य करती है.

समाज में व्याप्त अनेक ऐसी घटनाएं, हालात जिनके ऊपर अनेकानेक अलग-अलग विचारधाराओं को एक साथ संकलित करके लिखने में अक्सर धीरज हटता-सा प्रतीत होता है. मन करता है, लिखकर नहीं, बल्कि स्वयं घटनाओं से लड़ने के लिये अपने आपको समाज के हाथों सौंप दूं. अंततः जब उसके उपसंहार पर नजर डालता हूं तो महसूस होता है जैसे अकेला ही खड़ा हूं और वही समाज, जिसके हित में, मैं लड़ना चाहता था, हंस रहा है मेरी बेवकूफी पर. प्राकृतिक नियम है कि अभ्यास ही प्रत्येक निपुणता और सफलता की आधारशिला है. अपने आपको अभी भी इस काबिल नहीं समझता हूं कि जन्म लिये हुये हर विचार को, भावना को, हालात को समुचित, सही और संक्षिप्त रूप में लिख सकूं. ऐसा हासिल करना है तो शायद मुझे तय करना होगा अध्ययन अभ्यास, आत्मविश्वास और मन की एकाग्रता से होकर गुजरने वाला वह सफर.... जिसकी आखिरी मंजिल आत्मसंतुष्टि ही है. □

कुंठा की फसल
रणजीत रेणु (कोटा)

बहुत बड़ा ढेर है कथाओं, कविताओं, नाटकों और संस्मरणों का. शुद्ध आयातित विचार व ठेठ आंचलिक भी. पर कभी-कभी बेकार-सा लगता है यह सब. निर्विवाद रूप से वह कुंठा का कुहासा अंतहीन मेरी रचनात्मक रुचि पर छा जाता है. संपादकों का 'ढाई आखर प्रेम' का जुमला साधुवाद या धन्यवाद नवांकुरों को पथ से अलग करता है. कभी लगता है मानो साहित्यिक सभ्यता में यह नया 'वाद' आया है. किसी रचना की वापसी लेखन की उत्तेजनात्मक मनःस्थिति, प्रस्फुरित उद्दाम भावनाओं का उफान एकाएक थम-सा जाता है और फिर एक रचना से दूसरी के बीच लंबा अंतराल आ जाता है. कभी मन बेकाबू हो जाता है जो विषय, पात्रों में भी झलकने लगता है. उत्साह को केंद्रित करके सिलसिला आगे बढ़ता है. एक-दो रचनाओं की सफलता रोमांचित करती है. नयी आशाएं जागृत होती हैं. मैं ही नहीं हूं उस साहित्यिक अत्याचार का शिकार. अनेकों हैं. जो स्थापित हैं, उनके मुखौटों की चमक नये लेखकों को पीछे धकेल देती हैं. वे गुमनामी के अंधेरे में खो जाते हैं. इसके लिये कुछ पत्रिकाओं को छोड़ दें तो बाकी सब में स्वार्थवाद की कहानी है. निरपेक्ष कुछ नहीं कहा जा सकता. इनके लिये युग सापेक्ष बहुत कुछ सामने है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली : फरवरी 1988 के सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार विजेता

फरवरी : 1988 की कथा पहेली के हजारों प्रतियोगियों में से केवल आठ ही एक-एक अशुद्धि के साथ पुरस्कार विजेता होने का गौरव पा सके हैं. सर्वशुद्ध हल भेज पाने में इस बार भी कोई प्रतियोगी सफल नहीं हो सका. पुरस्कार राशि इन प्रतियोगियों में बराबर-बराबर बांट दी जाएगी. पुरस्कार विजेताओं के नाम इस प्रकार हैं :–

1. प्रेम सिंह सैनी, 522/11, त्रिकट रोहतास ट्यूबवैल, ढाणी बड़वाली, हिसार
2. श्रीमोहन अग्रवाल, वित्तीय परामर्श-दाता, जिला परिषद, हमीरपुर
3. राजेंद्र मधुकर, अशोक नॉवेल हाउस, जलालाबाद रोड, मुक्तसर, जिला फरीदकोट (पंजाब)
4. अवनेश माथुर, गली नं.-12, धोबी तलाई, गंगा शहर रोड, बीकानेर (राज.)
5. प्रबोध दवे, म. नं.-100 एच. आई. जी. (जूनियर), विजय नगर के पास, इंदौर
6. अनंतराम वर्मा, द्वारा स्टेट बैंक ऑफ पटियाला, कृषि विकास शाखा, नालागढ़, जिला : सोलन (हि.प्र.)
7. प्रमोद गुप्त, ग्राम व पत्रालय, शेखूपुर रौरा, जनपद: बुलंदशहर (उ.प्र.)
8. दिग्विजय सिंह, द्वारा श्री नेमीचंद जैन गोंदवाले, न्यू ब्लौक, शिवपुरी (म.प्र.)

यह रहा कथा पहेली का सर्वशुद्ध हल...

1. मुक्ति, 2. अज्ञेय, 3. माइनस सेवन, 4. कृष्णभगवान के यह कहते ही भगदत्त की पोल खुल गयी–

''कहेउ कृष्ण पारथ सुनहु,
प्राण तज्यो गजराज.
राख्यौ है नृप जंघ गहि,
अस्त्र तज्यौ केहि काज?''

5. रमेश चंद्र शाह
6. अधिकांश कहानियां ग्रामीण जीवन से ली गयी हैं.
7. 'पार' कहानी के काशी की मन:स्थिति. मन:स्थिति.
8. 'सिर्फ पैसा', 'गांव की नदी' और 'पार'.
9. 'पार' का चौधरी द्वारा बनाया गया रेखांकन.
10. 'खारिज'

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' मार्च, 1988 अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 अप्रैल, 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा जून 1988 के अंक में की जायेगी.

सारिका कथा पहेली : अप्रैल 1988

1. कालिदास और सूर्यबाला के यक्ष की स्थिति में क्या अंतर है?
   ....
   ....
2. वह रचना, जिसमें एक जाना पहचाना मुहावरा चरितार्थ हुआ है, और मुहावरा खाली स्थान में लिखें.
   ....
3. अंक का सर्वश्रेष्ठ कार्टून पृष्ठ .... पर है.
4. रचनाकार और आलोचक के बीच सार्थक संवाद की दृष्टि से इस अंक में एक जगह उल्लेखनीय विवरण मिलता है. यह आलोचक और रचनाकार हैं क्रमशः .... और ....
5. ये पात्र जिन रचनाओं के हैं उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
   1. गुलाब (..................) 2. वेनकिन (................) 3. रामदीन (....................) 4. हीरा (....................)
6. इस अंक की प्रमुख विशेषता क्या है?
7. .... रचना में रचनाकार की उम्र का संबंध उसकी रचना के आकार से जुड़ा है.
8. 'पानी की समस्या' व्यंग्य में 'पानी' शब्द .... बार आया है?
9. इस अंक में संवादशैली की .... रचनायें हैं.
10. ''प्रजातंत्र और तानाशाही का यही मूल अंतर है. एक में विरोधी और विद्रोह के दौरान चप्पल चलती हैं, दूसरे में गोली-जहां कलम के चलने की आजादी है, वहां चप्पल की नौबत कम ही आती है, लोग एक दूसरे से नाराज हों तो एक दूसरे के खिलाफ संपादक को पत्र लिखते हैं. संसद या विधान सभा में सवाल उठते हैं...''
    यह भाषा व्यंग्यकार .... की है.

नाम .... आयु ....

पता...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेताओं की कृतियां

बसंत के एकांत जिले में	कविता संग्रह	सच्चिदानंद राउतराय		
अंधारुआ	कहानी संग्रह	,,		४५-००
गूंगे सुर बांसुरी के	कहानी संग्रह	पन्नालाल पटेल		४५-००
तकषी की कहानियां	कहानी संग्रह	तकषी शिवशंकर पिल्लै		३०-००
चिक्कवीर राजेंद्र	उपन्यास	मास्तिवेंकटेश अय्यंगार		५५-००
सुब्बण्णा	उपन्यास		पे.ब.	५-००
			ला.सं.	१०-००
परकाय प्रवेश तथा अन्य कहानियां	कहानी संग्रह			३५-००
महादेवी: प्रतिनिधि गद्य रचनाएं				४५-००
महादेवी: प्रतिनिधि कविताएं				४०-००
अमृता रचनावली: अमृता प्रीतम				
अमृता प्रीतम: चुनी हुई कविताएं				४०-००
अमृता प्रीतम: सेलेक्टेड पाइम्स (अंग्रेजी)				३८-००
अमृता प्रीतम: चुने हुए उपन्यास				९८-००
अमृता प्रीतम: चुनी हुई कहानियां, चुने हुए निबंध				६०-००
कोरे कागज	उपन्यास	अमृता प्रीतम		२०-००
कथा एक प्रांतर की	उपन्यास	एस.के. पोट्टेकाट		८५-००
मृत्युंजय	उपन्यास	वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य		४५-००
कितनी नावों में कितनी बार	कविता संग्रह	अज्ञेय		१८-००
मूकज्जी	उपन्यास	शिवराम कारंत		४०-००
सुवर्णलता	उपन्यास	आशापूर्णादेवी		६०-००
वकुलकथा	उपन्यास	,,		६०-००
चार-तार	कविता संग्रह	द.रा. बेंद्रे		२५-००
माटीमटाल	उपन्यास	गोपीनाथ महांती (दो भागों में) प्रत्येक भाग		५५-००
संचयिता	काव्य-संकलन	रामधारीसिंह दिनकर	पे.बैक.	२०-००
			ला.सं.	४०-००
स्मृति सत्ता भविष	काव्य संकलन	विष्णु दे		४८-००
बज़्में ज़िंदगी रंगे शायरी		फिराक गोरखपुरी		५०-००
चिदंबरा संचयन		सुमित्रानंदन पंत		
(कन्नड़, तेलुगु, गुजराती, मराठी, बांग्ला, मलयालम एवं अंग्रेजी)				७-००
निशीथ	काव्य	उमाशंकर जोशी		६०-००
श्रीरामायण-दर्शनम्	काव्य	कु.वे. पुट्टप्पा		
गणदेवता	उपन्यास	ताराशंकर वंद्योपाध्याय		७०-००
ओट्टकुषल	काव्य	जी. शंकर कुरुप		६०-००

भारतीय ज्ञानपीठ

18.इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड

नयी दिल्ली-११० ००३

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

लाखों पाठकों के प्रिय उपन्यासकार

समीर का नया उपन्यास

बंधन

सस्पैंस, थ्रिल एवं इन्वेस्टीगेशन के जादूगर

राहुल का नया सामाजिक थ्रिलर

सोने का जाल

10/-

- अमर और उसके साथी मौत के चंगुल में फंसे जीने के लिये संघर्ष कर रहे
- समुद्री तूफान ने अमर के जहाज को मौत की घाटी की तरफ मोड़ दिया ।
- तोरा नागा चारों ओर से षडयंत्रों से घिरा था ।
- अमर और तोरा नागा की संघर्ष भरी खूनी दास्तान

लोकप्रिय जासूसी उपन्यासकार

वेद प्रकाश काम्बोज

का एक अविस्मरणीय उपन्यास

तोरा नागा

6/-

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

आखिर वह कौन सी मानसिकता है जो औरत को रूपजीवा विषकन्या बनने को बाध्य कर देती है...?

क्या औरत जानवर है और उसका स्थान पिंजरे में हैं?

विश्व साहित्य में विषकन्याएं : दो

- जो भी उससे एक बार बात कर लेता, उसका पुजारी होकर रह जाता...कैसी थी भारत की पहली महिला जासूस?...अनिता जैन द्वारा प्रस्तुत रोमांचक सत्यकथा.
- भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति, कॉल गर्ल, के.जी.बी. का ऐसा एजेंट जिसे कैनेडी की हत्या की पूर्व सूचना थी, चीन के लिए परमाणु शक्ति नगर बनाने वाला उद्योगपति और एक प्रख्यात पत्रकार...कैसे सबके सब अपने-अपने घोटालों के चक्रव्यूह में जा फंसे? और इनकी जिंदगी में लिप्त, इनकी उद्धारक वह अलिप्त नायिका कैसी सुलझी हुई उलझन बनी हैरत अंग्रेज दास्तान पेश कर गयी.
- ग्रीक पुराण कथाओं की विषकन्याएं.
- राजदरबारों की वे नर्तकियां जिन्होंने इतिहास बदल डाला.
- विश्व की सबसे छोटे आकार की विषकन्या : एड्स
- कॉलगर्ल्स की भीतरी दुनिया का सच.
- अंधी गलियों की अंधेरी दास्तान.
- ऐसे तैयार की जाती थीं विषकन्याएं.
- जब स्वयं विष्णु ने विषकन्या की भूमिका अदा की.

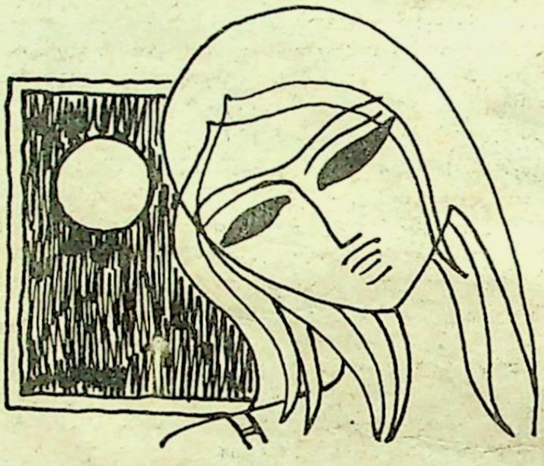

- और इतिहास के पन्नों में दबी रोमांचक दुनिया की अजीबोगरीब दास्तान.
- कला जगत की विषकन्याएं.
- भारतीय और विदेशी भाषाओं की कहानियों के साथ लगभग सात हजार साल से चले आ रहे विषैले सिलसिले को समझने की दूसरी दस्तवेजी कड़ी.

हर उम्र और वर्ग के पाठकों के लिए अजानी दुनिया की समूची तस्वीर

सारिका

अगस्त, 1988

युवा प्रेम-कथा अंक

विस्तृत सूचना आगामी अंक में....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला

पुस्तक महल की 30 पुस्तकों का
एक अनूठा प्रोजेक्ट

मूल्य: 15/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें मगाने पर डाकखर्च माफ

- प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
- प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित
- सरस कथा शैली
- फोटोटाइप सैट
- बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई
- बहुरंगी आवरण
- वाजिब दाम

जून, 1988 तक प्रकाश्य:

- विश्व-प्रसिद्ध जासूसी-कांड
- विश्व-प्रसिद्ध सभ्यताएं

तैयारी में/प्रैस में:

• चिकित्सा-पद्धतियां • स्कैण्डल • बैंक-डकैतियां • राजनैतिक हत्याएं • खोजी-यात्राएं • क्रूर हत्यारे • खजाने।

इस श्रृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय जगत से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करना है।

*कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को पूर्ण रूप से उजागर करने वाला एक सचित्र '**मिनि एनसाइक्लोपीडिया**' है।*

उदाहरणार्थ 'रोमांचक कारनामे' में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो 'खोजें' में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। 'अनसुलझे रहस्य' में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर भूत-प्रेतों तथा रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो 'खेल और खिलाड़ी' व 'वैज्ञानिक' क्रमशः जीवनी प्रधान पुस्तकें हैं। 'विनाश-लीलाएं' में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का चित्रण है तो 'दुर्घटनाएं' में मानवीय भूलों से हुई मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है। 'गुप्तचर संस्थाएं' तथा 'जासूस' में मकड़े के जालों सी फैली जासूसी संस्थाओं तथा उनमें कार्यरत जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं तो 'प्रेरक-प्रसंग' किसी भी जहाज की तरह भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ है।

अब तक प्रकाशित पुस्तकें:

विश्व-प्रसिद्ध.... 1.खोजें 2. अनसुलझे रहस्य 3. रोमांचक कारनामे 4. युद्ध 5. 101 व्यक्तित्व 6. धर्म, मत एवं सम्प्रदाय 7. खेल एवं खिलाड़ी 8. रिकॉर्ड्स (भाग-I) 9. रिकार्ड्स (भाग-II) 10. वैज्ञानिक 11. विनाश-लीलाएं 12. दुर्घटनाएं 13. गुप्तचर संस्थाएं 14. जासूस 15. प्रेरक-प्रसंग।

आमंत्रण:—

प्रोजक्ट में योगदान के लिए विद्वान लेखक तथा अनुवादक संपर्क साधें।

अपने निकट के बुकस्टाल एवं रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुकस्टालों पर मांग करें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मगाने का पता

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006

शो रूम : 10-B नेताजी सुभाष मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली-2.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे आपके नित्य जीवन का अभिन्न अंग

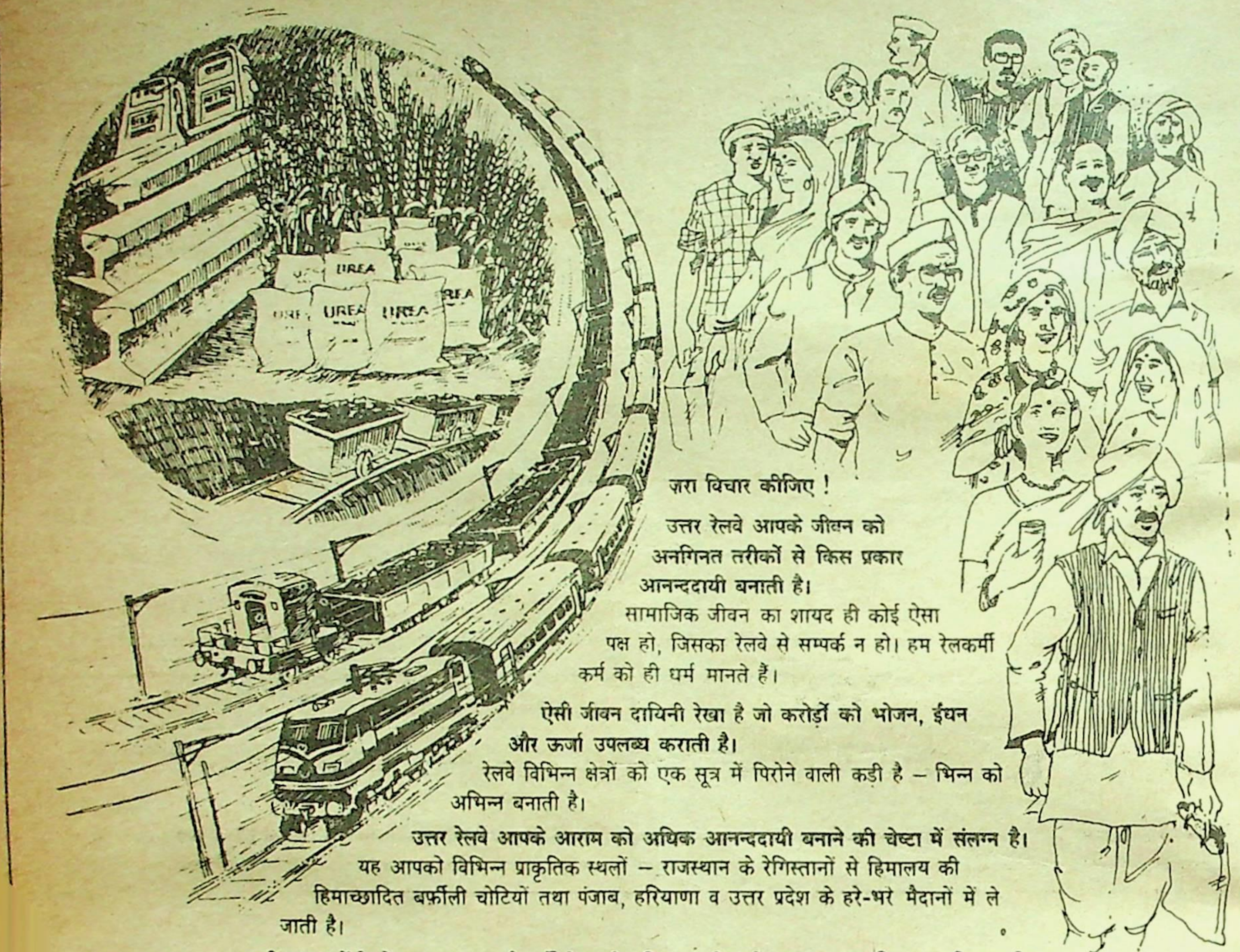

ज़रा विचार कीजिए !

उत्तर रेलवे आपके जीवन को अनगिनत तरीकों से किस प्रकार आनन्ददायी बनाती है।

सामाजिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जिसका रेलवे से सम्पर्क न हो। हम रेलकर्मी कर्म को ही धर्म मानते हैं।

ऐसी जीवन दायिनी रेखा है जो करोड़ों को भोजन, ईंधन और ऊर्जा उपलब्ध कराती है।

रेलवे विभिन्न क्षेत्रों को एक सूत्र में पिरोने वाली कड़ी है – भिन्न को अभिन्न बनाती है।

उत्तर रेलवे आपके आराम को अधिक आनन्ददायी बनाने की चेष्टा में संलग्न है। यह आपको विभिन्न प्राकृतिक स्थलों – राजस्थान के रेगिस्तानों से हिमालय की हिमाच्छादित बर्फीली चोटियों तथा पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के हरे-भरे मैदानों में ले जाती है।

उत्तरी भारत में रेलवे लगभग सवा सौ वर्षों से राष्ट्रीय विकास के प्रत्येक प्रयास – परिवहन, हरित क्रांति, ऊर्जा उत्पादन, तीव्र औद्योगीकरण आदि में सक्रिय योगदान दे रही है।

उत्तर रेलवे प्रतिदिन 900 मेल/एक्सप्रेस एवं सवारी गाड़ियों में 11 लाख यात्रियों का वहन करती है। साथ ही प्रतिदिन 2 लाख टन माल ढोया जाता है।

उत्तर रेलवे की दैनिक गतिविधियों में शामिल हैं –

– 47,000 टन अनाज का उत्तर के उपजाऊ क्षेत्र से देश के विभिन्न भागों को परिवहन.
– 62,000 टन कोयला, उद्योगों के लिए पहुँचाना.
– 15,000 टन पेट्रोलियम पदार्थों का यातायात.
– 17,000 टन खाद ढोना.

ये सब देश में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान की भावना की जागृति लाने में सहायक हैं।

रेल पटरियों का जाल, जीवन दायिनी शिराओं और धमनियों की भांति काम कर रहा है।

उत्तर रेलवे करोड़ों देश वासियों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में सतत प्रयत्नशील है।

उत्तर रेलवे

उत्तरी क्षितिज में स्थिर और निरंतर चमकता हुआ नक्षत्र है – उत्तर रेलवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar